विराट् पुरुष

शिक्षाविद् नानाजी

4
विराट् पुरुष
शिक्षाविद् नानाजी

विराट् पुरुष

शिक्षाविद्

नानाजी

विराट् पुरुष

शिक्षाविद्

नानाजी

दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

ISO 9001:2008 प्रकाशक

प्रकाशक • **प्रभात प्रकाशन**
4/19 आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110002
सर्वाधिकार • सुरक्षित
संस्करण • 2017
मूल्य • दो सौ पचास रुपए
मुद्रक • ग्राफिक वर्ल्ड, नई दिल्ली

VIRAT PURUSH SHIKSHAVID NANAJI ₹ 250.00

Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road,
New Delhi-110002 • e-mail: prabhatbooks@gmail.com
in association with Deendayal Research Institute,
7-E, Swami Ramtirth Nagar, Rani Jhansi Road, New Delhi-55
e-mail: dridelhi1@gmail.com
Vol. 4 ISBN 978-93-5186-079-2
Set of 6 Vols. ISBN 978-93-5186-082-2 • Price: ₹ 2000.00

आमुख

शिक्षा के बारे में नानाजी की कल्पना आम धारणाओं से बहुत भिन्न थी। किताबी शिक्षा को वे व्यावहारिक व मानव-प्रदत्त शिक्षा के सामने गौण मानते थे। उनके लिए शिक्षा व संस्कार एक-दूसरे के पूरक थे। एक-दूसरे के बिना अधूरे। उनका मत था कि शिक्षा व संस्कार की प्रक्रिया गर्भाधान से ही प्रारंभ हो जाती है और जीवनपर्यंत चलती है। नानाजी इस बात पर बल देते रहे कि शिक्षा का मर्म तो देशानुकूल होना चाहिए, लेकिन उसमें गतिशीलता बनी रहनी चाहिए, ताकि विद्यार्थी स्वयं को समय के मुताबिक ढाल सकें। उनका कहना था कि शिक्षा राष्ट्र नवनिर्माण का माध्यम है, इसलिए इसके माध्यम से व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की समुचित व्यवस्था करना समाज का दायित्व है।

नानाजी को इस बात का खेद था कि आज समाज ने अपने दायित्व सरकार पर छोड़ दिए हैं। लेकिन समस्या यह है कि सरकार चलाने वाला नेतृत्व इस बारे में पूरी तरह दिशाहीन है। उसे मैकाले-प्रदत्त शिक्षा व्यवस्था को निभाना सबसे सरल लगता है, लिहाजा वह उसे श्रेष्ठतम बताने के बहाने भी ढूंढ़ता है और उसे चालू रखने के भी। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि वे अन्य मनीषियों के भाव ग्रहण करने में परहेज करते थे। जब उन्हें लगा कि डेनमार्क के शिक्षाविद् ग्रंटविग द्वारा प्रतिपादित शिक्षा व्यवस्था भारत के स्वभाव से मेल खाती है तो उन्हें यह स्वीकार करने में भी संकोच नहीं हुआ कि उसके मुकाबले गांधी और टैगोर की शिक्षा प्रणालियों की कई सीमाएं थीं।

नैतिक शिक्षा नानाजी के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण थी और उनका मानना था कि यह लोक शिक्षा के माध्यम से ही प्राप्त हो सकती है। अगर विद्वत्ता को संयत करने के लिए उसे लोक शिक्षा के धरातल पर नहीं उतारा गया तो विद्वत्ता पथभ्रष्ट हो जाएगी। नानाजी का स्पष्ट मानना था कि लोक शिक्षा ही मनुष्य को नित्य प्रति की समस्याओं से जूझने का मार्ग प्रशस्त करती है। इस खंड में नानाजी बार-बार इस बात पर बल देते, मिलेंगे कि जब तक शिक्षा का हेतु स्पष्ट न हो, शिक्षार्जन का कोई अर्थ नहीं है, और वह राष्ट्रनिर्माण का माध्यम नहीं हो सकती, सिर्फ औपचारिक विभूषण होकर रह जाती है।

विराट् पुरुष
नानाजी देशमुख

जिन दिनों प्रस्तुत वाङ्मय का संकलन व संपादन चल रहा था, उन्हीं दिनों अंग्रेजी की एक उपन्यास शृंखला चर्चा में आई–शिवा ट्रायोलॉजी। एक युवा भारतीय लेखक अमीश ने उसमें भगवान् शिव की एक मनुष्य-रूप में कल्पना कर उनकी स्तुति की है। बहुत खूबसूरत वर्णन है। देवों के देव महादेव का उन्होंने दुष्टता का नाश करनेवाले, प्रचंड प्रेमी, महान् योद्धा, नृत्यकला में निपुण, एक करिश्माई नेतृत्व क्षमता वाले, परम शक्तिशाली लेकिन फिर भी सब प्रकार के दोषों से मुक्त, अद्‍भुत वाक्पटु, पूरे ब्रह्मांड को कंपा देनेवाला गुस्सा, लेकिन विशाल, दया व करुणा से भरपूर हृदय, ऐसे व्यक्तित्व के रूप में चित्रण किया है।

लेखक का संभवतः नानाजी से परिचय नहीं रहा होगा। वरना वे नानाजी को सामने रखकर भी एक जीवंत उपन्यास की रचना कर सकते थे–देवताओं के सभी गुणों से परिपूर्ण, राजनीति में दुष्ट लोगों को साफ-साफ खरी-खोटी सुनानेवाले और उन्हें राजनैतिक तौर पर ही नष्ट करनेवाले, स्वयं ब्रह्मचारी लेकिन गृहस्थ जीवन के कट्टर समर्थक व गृहस्थों को प्रेम का पाठ पढ़ानेवाले, महान् रणनीतिकार, ललित कलाओं के प्रेमी, करिश्माई नेतृत्व क्षमता वाले, अपने समय के सर्वाधिक शक्तिशाली राजनेताओं में से एक, लेकिन महत्त्वाकांक्षाओं व अहंकार से पूर्णतया मुक्त, वाक्पटुता अद्वितीय, आवश्यकता पड़ने पर गजब का गुस्सा, यानी वही सब गुण, जिनको आधार बनाकर वह उपन्यास लिखा गया।

नानाजी के निधन के पश्चात् हम सबने उनका राष्ट्रऋषि के रूप में स्मरण किया। अपने जीवनकाल में मानव कल्याण के लिए उन्होंने जो साधना की, जो तपस्या की, उसे देखते हुए तो उनके जीवित रहते हुए ही उन्हें इस रूप में संबोधित किया जा सकता था। लेकिन नानाजी को यह स्वीकार्य नहीं होता। चित्रकूट में नानाजी से मिलने व उनके काम को देखने के बाद तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम उन्हें एक ऋषि-तुल्य व्यक्ति के रूप में ही संबोधित करते थे।

अपने शास्त्रों में विराट् पुरुष की जो व्याख्या की गई है, नानाजी उसके मूर्त रूप थे। आमजन के लिए तो विराट् पुरुष वह है जो चतुष्पुरुषार्थ–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष–सभी में संतुलन बैठा सकता हो।

विराट् पुरुष

नानाजी का समस्त जीवन, विचार व कर्तृत्व उन्हें विराट् पुरुष के फ्रेम में ही रखते हैं। जिन लोगों के बीच वे काम करते थे, जो वंचित थे, उनके लिए तो नानाजी विराट् पुरुष ही थे। नानाजी के सहयोगी रहे लोग या जिन्होंने नानाजी के साथ कुछ भी समय काम किया, वे भी उनके इस वर्णन से सहमत होंगे।

देश के स्वतंत्रता आंदोलन में अपना योगदान करने से लेकर, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक प्रचारक के रूप में नानाजी ने पहले राष्ट्रीय राजनीति में और बाद में सामाजिक पुनर्रचना के कार्य में अपनी जो छाप छोड़ी, वह अद्वितीय है।

राजनीति में उनके विरोधी भी उनका लोहा मानते हैं। नानाजी ने देश में राजनीति की विभिन्न धाराओं को राष्ट्रहित के लिए एकजुट करने का जो अनोखा काम किया, उनके अलावा कोई अन्य राजनीतिज्ञ वैसा फिर नहीं कर पाया। यहां तक कि जिस कांग्रेस को हराने के लिए वे जीवन भर प्रयासरत् रहे, समय आने पर उन्होंने उसे भी राष्ट्रहित में साथ आने का निमंत्रण देने में संकोच नहीं किया। संघ जीवनपर्यंत उनकी जीवनरेखा रहा। संघ पर जब भी कोई अनर्गल आक्षेप लगा तो नानाजी उसके सामने एक ढाल की तरह खड़े रहे, एक योद्धा के रूप में।

एकात्म मानववाद के प्रणेता पंडित दीनदयाल उपाध्याय उनके सखा व प्रेरणास्रोत थे। लेकिन जब उन्हें लगा कि बदले परिवेश में अन्य विचारों को साथ लेना भी जरूरी हो गया है तो उन्होंने डॉ. राममनोहर लोहिया और आचार्य कृपलानी जैसे लोगों को भी अपने साथ आत्मसात् करने में कोई परहेज नहीं किया। 70-80 के दशकों में ऐसा समय आया जब लोकनायक जयप्रकाश नारायण अपने राजनैतिक कार्यों के लिए पूरी तरह नानाजी पर निर्भर हो गए।

60 बरस की उम्र होने पर सक्रिय राजनीति छोड़कर सामाजिक पुनर्रचना के काम में उन्होंने स्वयं को समर्पित कर देश के राजनीतिज्ञों के लिए एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। इसे देश का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि उनके इस कदम का बाद में किसी ने अनुकरण नहीं किया और अधिकांश राजनेता दलगत व स्वार्थपरक राजनीति में उलझे रहे। हां, उनके कुछ साथी राजनेताओं ने नानाजी के काम को आगे बढ़ाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान अवश्य दिया।

सामाजिक कार्यों में उन्होंने समाज की पहल और उसकी भागीदारी के आधार पर जो मॉडल देश के सामने प्रस्तुत किया, उसकी सराहना देश भर में होती रही है। आज विदेशों से भी कई शोधार्थी और विद्यार्थी उस मॉडल को समझने व उसे अपने यहां दोहराने की दृष्टि से चित्रकूट आते रहते हैं। देश के तत्कालीन राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री स्वयं इस मॉडल को देखकर आने के बाद इसकी प्रशंसा ही नहीं करते रहे बल्कि इसके अनुसरण की अनुशंसा करने में भी उन्होंने कोई संकोच नहीं किया। गोंडा तो प्रारंभ से ही उनकी कर्मभूमि रहा और बाद में बीड़ व नागपुर भी।

नानाजी के बहुआयामी व्यक्तित्व को टुकड़ों में बांटकर नहीं देखा जा सकता। मानव जीवन में जिस समग्रता के वे आग्रही थे, उन्हें भी उसी समग्रता से देखने की आवश्यकता है। उनके जीवन के हर आयाम, हर पहलू को आनेवाली पीढ़ी के समक्ष रखने का प्रकल्प है यह नानाजी वाङ्मय। नानाजी ने अपने सार्वजनिक जीवन के सात से अधिक दशकों में बहुत कुछ बोला और लिखा। राष्ट्रहित में शायद उससे भी ज्यादा उन्होंने अपने सीने में छुपाकर रखा।

नानाजी द्वारा स्थापित दीनदयाल शोध संस्थान ने उनके निधन के पश्चात् जब 'नानाजी समग्र' प्रकाशित करने का निर्णय लिया तो उसकी संपादकीय टीम के सामने एक प्रश्न खड़ा हुआ कि नानाजी के विचारों का संकलन कैसे किया जाए? नानाजी के बहुत से सहयोगी उनसे पहले ही स्वर्गवासी हो गए थे। उनके साथ काम कर चुके या उनसे संपर्क में रहे बहुत से सहयोगियों की स्मृति काफी क्षीण हो चली थी। फिर भी लगभग दो वर्ष तक अलग-अलग स्रोतों से सामग्री जुटाने का प्रयास हुआ। संस्थान के दिल्ली व चित्रकूट कार्यालयों में काफी सामग्री मिली भी; लेकिन इमरजेंसी से पूर्व की सामग्री नहीं मिल पाई।

इस तैयारी के प्रारंभिक दिनों में कल्पना यह थी कि नानाजी ने अपने जीवनकाल में जो भी लिखा व बोला, उसे एकत्र कर कालखंड या विषयवार रूप में प्रकाशित किया जाए, ताकि आनेवाली पीढ़ियां जान सकें कि इस युग में भी एक ऋषि-तुल्य व्यक्ति ने जन्म लिया था। जिसने अपना संपूर्ण जीवन दीन-दुखियों की सेवा, मानव जीवन को सार्थक बनाने, भारतीय मूल्यों के संदर्भ में जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने, व्यक्ति, समाज व राष्ट्र को एकात्म करने, देश की राजनीति को नई दिशा देने, विकास का देशानुकूल, परंतु साथ ही युगानुकूल प्रतिमान खड़ा करने में समर्पित कर दिया।

लगभग पांच हजार पन्नों की सामग्री को संकलित कर उन्हें नए सिरे से कंप्यूटरीकृत किया गया। इस बीच इस बात पर मंथन चलता रहा है कि समग्र को किस रूप में पेश किया जाए–कालखंडानुसार, विषयानुसार अथवा विधानुसार, यानी पत्रों, भाषणों, बौद्धिकों आदि को अलग छापा जाए। यों तो समग्र को कालखंडानुसार प्रकाशित करना सर्वाधिक श्रेयस्कर होता, लेकिन नानाजी के जीवनकाल के एक बहुत बड़े हिस्से का रिकॉर्ड तो बिलकुल ही उपलब्ध नहीं है। यह कालखंड यानी इमरजेंसी (1975) से पहले का काल।

ऐसा नहीं कि नानाजी व उनके सहयोगियों ने इससे पहले के नानाजी के भाषणों, पत्रों आदि का संग्रह नहीं कर रखा था। स्वयं नानाजी इस बारे में बताते रहे कि इमरजेंसी से पहले का उनका बहुत ही समृद्ध अभिलेखागार कहीं सुरक्षित जगह पर छिपाकर रखा गया था। क्योंकि उन परिस्थितियों में वह राजनीतिक दृष्टि से बहुत ही संवेदनशील था। जिन मित्रों के पास नानाजी की बहुत सी सामग्री थी, उनसे बीच-बीच में नानाजी की अनबन की बात समग्र में कहीं न कहीं पढ़ने को मिलेगी। लेकिन यह अनबन उनके अभिलेखागार के न मिल पाने का कारण नहीं रही होगी, ऐसा हमारा विश्वास है। बहरहाल, इस महत्त्वपूर्ण और दीर्घकालीन कालखंड की सामग्री तथा अन्य कुछ सामग्री अंत तक उपलब्ध नहीं हो पाई। दैवयोग से अगर कभी मिली, तो संस्थान उसे प्रकाशित करने में अपना सौभाग्य समझेगा।

बीते तीन बरसों में सभी संभावित और उपलब्ध स्रोतों से जो भी सामग्री एकत्र हो पाई, उसके आधार पर नानाजी समग्र को विषयवार प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। लेकिन नानाजी के कुछ वरिष्ठ सहयोगियों का मानना है कि इसे समग्र नहीं कहा जाए। क्योंकि नानाजी के जीवनकाल का एक बहुत बड़े भाग का लेखा-जोखा, जो उन्होंने स्वयं संजोकर रखा था, उपलब्ध नहीं है और उसके बिना उन्हें समग्रता से नहीं देखा जा सकता। वास्तव में, यह बहुत तकनीकी विषय है। उपलब्ध सामग्री के आधार पर भी नानाजी का व्यक्तित्व समग्रता से देखा जा सकता है। बहुत से साक्षात्कारों व उनके द्वारा बाद में लिखे गए पत्रों आदि में नानाजी ने कई बार अपने उस कालखंड का विस्तार से उल्लेख किया है।

इसलिए उपलब्ध सामग्री के आधार पर ही यह नानाजी वाङ्मय तैयार करने का निर्णय लिया गया।

विराट् पुरुष

नानाजी ने जिन विषयों पर विशेष जोर दिया, उन्हें प्रमुख रूप से निम्न विषयों में विभाजित किया गया। ये हैं–

1. सामाजिक पुनर्रचना
2. स्वावलंबन
3. शिक्षा
4. लोकनीति व राजनीति
5. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

इनमें से प्रथम तीन विषय गोंडा, बीड़ और चित्रकूट प्रकल्पों से संबंधित हैं। इनमें प्रकल्पों की विस्तृत जानकारी (जो नानाजी के स्वयं के शब्दों में ही है), उनके लेख, भाषण, बौद्धिक व पत्रों का संग्रह है। सक्रिय राजनीति से दूर हो जाने के बाद भी नानाजी राजनैतिक मामलों में गहरी दिलचस्पी लिया करते थे, लेकिन दखल नहीं दिया करते थे। वस्तुतः वह राजनीति से अधिक लोकनीति थी। यह एक ऐसा विषय रहा, जिस पर अन्य लोगों की नजर नानाजी के वक्तव्यों व विचारों पर रही। इसलिए कहीं-न-कहीं राजनीति पर उनके विचार संगृहीत होते ही रहे। संघ के मामले में तो वे जीवनपर्यंत स्वयं को स्वयंसेवक ही मानते रहे, और उनका कर्तृत्व भी उसी अनुरूप रहा। संघ के स्वयंसेवकों व अन्य पाठकों के लिए यह विषय भी बहुत रोचक रहेगा।

लेकिन यह समग्र तैयार करने की अंतिम अवस्था में संपादकों को एक नई समस्या से जूझना पड़ा। पुनरावृत्ति टालने के लिए जब Process of Elimination अपनाया गया, तब महसूस हुआ कि किन्हीं खंडों में सामग्री बहुत ही कम हो गई है और किसी में अधिक। इसलिए विभिन्न खंडों में विषयों का जिस प्रकार समावेश प्रस्तावित था, उसे बदलना आवश्यक हो गया।

वैसे भी इस वाङ्मय को अब समग्र न कहकर 'विराट् पुरुष नानाजी के जीवन के विभिन्न आयामों के प्रतिबिंब' के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास है। विराट् पुरुष के चारों पुरुषार्थ–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष–की प्रतिमूर्ति थे नानाजी। उनके विचारों व कर्तृत्व को इन चारों विषयों में अलग-अलग तो विभाजित नहीं किया जा सकता, न ही यह संभव है, न ही वांछित। इसलिए प्रकाशन व पठनीयता की दृष्टि से इन्हें निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है–

1. साक्षात् नानाजी
2. समाजशास्त्री नानाजी
3. अर्थशास्त्री नानाजी
4. शिक्षाविद नानाजी
5. राष्ट्रऋषि नानाजी
6. राजनीतिज्ञ नानाजी

उपलब्ध सामग्री के आधार पर उपर्युक्त छह खंड आपके सम्मुख प्रस्तुत हैं। संपादकीय टीम इनकी

विश्वसनीयता की पूरी जिम्मेदारी लेती है। यों तो प्रकाशन में किसी प्रकार की गलतियां न रह जाएं, इसका भरपूर प्रयास किया गया है, लेकिन फिर भी कोई गलती रह गई है तो उसके लिए संपादकीय टीम क्षमाप्रार्थी है।

इसके साथ ही सुधी पाठकों से निवेदन है कि अगर उन्हें नानाजी से संबंधित सामग्री कहीं भी उपलब्ध होने का भान होता है तो कृपया संस्थान के पते या दूरभाष पर संपादक को सूचित करने का कष्ट करें।

इस वाड्मय के प्रकाशन में अनेकों लोगों का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सहयोग रहा है। संस्थान के संरक्षक व पालक माननीय मदनदासजी इसमें निरंतर रुचि लेते रहे, इसकी प्रगति की जानकारी लेते रहे, मार्गदर्शन व सुझाव देते रहे। प्रधान सचिव डॉ. भरत पाठक ने चित्रकूट में जो सामग्री थी, उसे संपादकीय टीम को उपलब्ध कराने में स्वतःस्फूर्त भूमिका निभाई। उनके नेतृत्व में चित्रकूट की टीम ने बिना किसी हस्तक्षेप के बहुत ही सटीक और व्यावहारिक सुझाव दिए। नानाजी के साथ भरतजी का लंबा अनुभव संपादकीय टीम के लिए बहुत काम आया। नानाजी के प्रति असीम भक्ति-भाव में डूबे संगठन सचिव श्री अभय महाजन को तो इसके प्रकाशन की चिंता निरंतर सताए रहती थी। उसके लिए उन्होंने कभी भी किसी भी प्रकार के संसाधनों की समस्या खड़ी नहीं होने दी। कुछ ऐसी समस्याओं के समाधान में भी उनकी भूमिका उल्लेखनीय रही, जिनका उल्लेख किया जाना वांछनीय नहीं है।

नानाजी के सहयोगी रहे डॉ. देवेंद्र स्वरूपजी और श्री यादवराव देशमुख से भी प्रारंभिक काल में विस्तार से चर्चा हुई। संस्थान के सचिव तथा दीर्घकाल तक नानाजी के सहयोगी रहे डॉ. महेश चंद्र शर्मा पिछले तीन वर्षों में लगातार इसकी तैयारियों में रुचि लेते रहे। वाड्मय का प्रथम प्रारूप उन्हीं के मार्गनिर्देशन में और सहमति से तैयार हुआ तथा उसका वर्तमान स्वरूप भी। हर कदम पर उन्होंने वाड्मय के लिए स्वयं को प्रस्तुत किया।

श्रीमती सुमेधा मिश्रा ने इसके प्रकाशन में सूत्रधार की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बहुत विशाल भंडार था उनके सामने। उसमें से छंटाई करना, पुनरावृत्ति को टालना, संपादन करना, संदर्भ ढूंढ़ना, सामग्री को सिलसिलेवार संजोना, सचमुच भारी-भरकम काम था। इसके लिए लगन, निष्ठा, मेहनत व तन्मयता के साथ-साथ धैर्य की भी आवश्यकता थी। इन सभी गुणों का सुमेधाजी ने खूब परिचय दिया।

संस्थान के हर काम में सहयोगी रहने वाले पत्रकार राकेश शुक्ल ने संपादन में भी एक गुणी सहयोगी की भूमिका निभाई। समय-समय पर अन्य पत्रकार मित्रों ने भी पन्नों को पलटा और अपने बहुमूल्य सुझाव दिए।

संस्थान के दिल्ली कार्यालय में उपमहाप्रबंधक और वरिष्ठ कार्यकर्ता श्री अमिताभ वशिष्ठ ने वाङ्मय के प्रकाशन के लिए सभी आवश्यक सुविधाएं जुटाकर काम को आसान किया। नानाजी के साथ बरसों तक कंधे-से-कंधा मिलाकर काम करनेवाले संस्थान के महाप्रबंधक मेजर टी.आर. वर्मा इस महायज्ञ के लिए सदैव उपस्थित रहे।

बहुआयामी नानाजी के अनन्य सहायक रहे हेमंत पांडे संस्थान के हर काम में बहुपयोगी रहते हैं। नानाजी के साथ उनका लंबा अनुभव बहुत काम आया। इस वाड्मय के प्रकाशन में भी उनकी उपयोगिता

हर कदम पर महसूस हुई और काम आई। ऐसे ही अंशुमान सिंह भी ऑलराउंडर हैं। हर किसी तरह के काम में मुसकराते हुए प्रस्तुत रहे। मुकेश का संस्थान या नानाजी से पहले का कोई परिचय नहीं रहा। लेकिन उन्होंने बहुत जल्दी ही पूरे काम को अच्छे से आत्मसात् कर लिया। श्री गब्बर सिंह रावत ने संस्थान के अभिलेखागार से पुरानी पुस्तकें व अन्य संदर्भ ढूंढ़ने में बहुत मदद की।

सुश्री दीपा सूद लगभग एक दशक से संस्थान के प्रकाशनों हेतु ग्राफिक व लेआउट डिजाइनिंग में जुड़ी हुई हैं। मामूली से संकेतों से ही नानाजी की पसंद, नापसंद को समझ जाती हैं और उसी के अनुरूप आउटपुट देती हैं।

प्रभात प्रकाशन किसी भी राष्ट्रवादी प्रकाशन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेता है। नानाजी के लिए तो प्रभात कुमारजी ने स्वयं को समर्पित कर ही रखा है। उन्होंने इस वाङ्मय के प्रकाशन की जिम्मेदारी स्वेच्छा से ली। उनका हार्दिक साधुवाद।

इस महत्त्वपूर्ण प्रकाशन में सहयोग देने वाले जिन सहयोगियों के नाम यहां उल्लेख होने से रह गए हैं, उनसे करबद्ध क्षमाप्रार्थना।

युगाब्द 5116, कार्तिक शुक्ल चतुर्थी
11 अक्तूबर, 2014, नई दिल्ली

अतुल जैन
संपादक

(प्रस्तुत वाङ्मय में प्रकाशित सामग्री के अतिरिक्त नानाजी ने अपने जीवनकाल में एक पुस्तक 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' शीर्षक से 1979 में लिखी थी, जिसे दीनदयाल शोध संस्थान ने प्रकाशित किया था। उस समय देश भयंकर राजनैतिक झंझावात से गुजर रहा था। संघ के बहाने कुछ राजनैतिक तत्त्वों ने देश को फिर से अस्थिरता के दौर में ढकेल दिया था। इस पुस्तक में राजनैतिक दुर्भावना के शिकार संघ का विचारोत्तेजक अध्ययन अद्वितीय है। अगस्त 2011 में प्रभात प्रकाशन ने इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया।)

विषय-सूची

आमुख **v**
विराट् पुरुषः नानाजी देशमुख **vii**

1.	मूल्यों की पाठशाला : ग्रामोदय विश्वविद्यालय	1
2.	ग्रामोन्मुखी शिक्षा : नवनिर्माण के लिए अपरिहार्य	10
3.	आत्मविश्वास निर्माण : शिक्षा से ही संभव	16
4.	राष्ट्र नवनिर्माण : देशानुकूल शिक्षा ही रास्ता	21
5.	मानवीय शिक्षा पद्धति : सामाजिक संस्कारों का आधार	25
6.	अनुभव परंपरा : शिक्षा व विकास की मार्गदर्शक	29
7.	भारतीय शिक्षा दर्शन : नयी चुनौतियों का समाधान	42
8.	साक्षरता का संकल्प भेदभाव रहित हो	60
9.	स्वाभिमान : स्वावलंबन की शिक्षा से ही संभव	62
10.	शिक्षा का हेतु : सार्थक जीवन का निर्माण	65
11.	सुशिक्षा की परिभाषा : गढ़े चित्रकूट विश्वविद्यालय	71
12.	साक्षरता अभियान : अध्यापकगण इसका बीड़ा उठाएं	73
13.	नैतिकता : शिक्षा का अधिष्ठान हो	75
14.	ज्ञानोपार्जन : विद्यालयों में सहजीवन पनपे	77
15.	राष्ट्र की नवरचना : केंद्रबिंदु बनें विद्यालय	79
16.	पत्र	81
17.	भक्ति की शक्ति : उसके बिना विकास अधूरा है	111
18.	साधारण मानव ही बनता है महामानव	115
19.	हिंदू समाज सौभाग्यशाली है	122
20.	राम का आदर्श जीवन में उतारिए	125
21.	पत्र	127

मूल्यों की पाठशाला
ग्रामोदय विश्वविद्यालय

विश्वविद्यालय की धारणा है कि शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा के समन्वित विकास के लिए योगाभ्यास में अद्वितीय क्षमता, कांतिमय स्वास्थ्य, उच्चतम चेतना तथा आध्यात्मिक शक्ति के लिए योगविधि अनुभूत विद्या है। अतएव ग्रामोदय विश्वविद्यालय के अंतर्गत योगविज्ञान अनुसंधान एवं प्रशिक्षण प्रतिष्ठान की स्थापना की जा रही है।

इस धरती पर प्राणवायु पर निर्भर जीवधारियों की जीवन यात्रा के लिए वनों का अस्तित्व अनिवार्य है। भूमि, वन, जल, वायु, आकाश एवं ऊष्मा संपूर्ण सृष्टि की धारणा के मूलभूत तत्त्व हैं। ये तत्त्व परस्परपूरक हैं। किसी एक की कमी जीवन का संतुलन बिगाड़ने का कारण बनती है। इसकी अनभिज्ञता के कारण वन विनाश हो रहा है। विश्वविद्यालय अपने कार्यक्षेत्र में इस विनाश को रोकते हुए अपने विद्यार्थियों व अध्यापन में संलग्न महिला-पुरुषों द्वारा जनसहयोग से वन संवर्धन एवं वनवृद्धि का कार्य संपन्न करेगा।

नई पीढ़ी के सर्वांगीण विकास के लिए विश्वविद्यालय गुरुकुल की पारिवारिक व्यवस्था की महत्ता अनुभव करता है। आत्मीयतापूर्ण पारिवारिक वातावरण में संतान का चतुर्दिक् विकास संभव होता है। किंतु परिवार की अपनी सीमाएं हैं। अतः गुरुकुल पद्धति विकसित हुई थी, जो मानव की असीम संभावनाओं को मूर्त रूप प्रदान करे।

अतः वर्तमान संदर्भ में गुरुकुल पद्धति के लाभकारी तत्त्व अपनाकर नई पीढ़ी के सर्वांगीण विकास के लिए उसका सामयिक रूप खड़ा करना आवश्यक है।

वैसे भी चित्रकूट स्वयं में छोटी सी आबादी है। इस विश्वविद्यालय की विशेषता के कारण अधिकांश शिक्षार्थियों का दूर-दूर से आना स्वाभाविक है। अतः विश्वविद्यालय प्रमुख रूप से आवासीय होगा।

छात्र-छात्राओं के लिए अलग-अलग गुरुकुल होंगे। प्रत्येक गुरुकुल में कम-से-कम दस या

चित्रकूट में महात्मा गांधी ग्रामोदय विश्वविद्यालय की स्थापना के समय उसकी रूपरेखा। इसे तैयार करने के लिए नानाजी ने चित्रकूट में संघ के अखिल भारतीय अधिकारियों के साथ गांधीवादी व सर्वोदयी चिंतकों की कार्यशाला आयोजित की। मंथन, अप्रैल 1992

अधिक-से-अधिक चौदह छात्रा या छात्राएं होंगी। इनके रहने के लिए दो कक्ष होंगे। हर कक्ष में शौच एवं स्नानादि की स्वतंत्र व्यवस्था होगी। दोनों कक्षों के बीच गुरुगृह होगा, जिसमें प्राध्यापक या प्राध्यापिका रहेगी। वह ही इस गुरुकुल की मुखिया होगी। छात्र व गुरु परिवार के लिए एक सामूहिक कक्ष होगा। सबका जलपान व भोजन एक साथ बनेगा, जिसे बनाने में सभी का सहयोग होगा।

हर एक गुरुकुल का अपना साग-सब्जी व फलों का छोटा सा बगीचा होगा। यह कार्य भी सब मिलकर करेंगे। हर एक गुरुकुल में दूध देनेवाली दो गायें होंगी। अतः गौ सेवा दैनंदिन जीवन का अंग बनेगी। हर एक बालक या बालिका व युवक या युवती पारिवारिक जीवन से अनभिज्ञ नहीं रहेगी।

शिक्षा की प्रारंभिक दिशा

पूर्व प्राथमिक शिक्षा से लेकर स्नातकोत्तर और उससे भी उच्च शिक्षा का एक ही परिसर में प्रबंध इस विश्वविद्यालय की विशेषता है। परिणामस्वरूप शैशवास्था से युवावस्था पूर्ण होने तक विद्यार्जन में संलग्न बालक बालिकाओं व युवक-युवतियों का विकास अखंड रूप से समान वातावरण में संभव होगा। गुरुजनों से इतने लंबे काल तक का सान्निध्य नई पीढ़ी के व्यक्तित्व विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान करेगा।

यहां पढ़ाई की विधि नीचे से ऊपर की ओर एवं ऊपर से नीचे की ओर गतिमान होगी। तदनुसार पूर्व प्राथमिक कक्षाओं से पठन-पाठन प्रारंभ किया गया है। साथ ही बी.एड. एवं एम.एड. की भी पढ़ाई प्रारंभ हो गई है। दोनों के परस्पर संपर्क एवं भावात्मक आदान-प्रदान की पारिवारिक प्रक्रिया का सूत्रपात हुआ है। यह प्रक्रिया कठिन-से-कठिन ज्ञान को सहज में ही आत्मसात् करने में सहायक सिद्ध होती है।

ग्रामीण अंचल में कार्यरत विद्यालयों के पाठ्यक्रम में एवं नई पीढ़ी के विद्यार्थियों के चतुर्दिक् व्यक्तित्व विकास में उपर्युक्त रीति से प्रशिक्षित बी.एड. व एम.एड. की उपाधि प्राप्त युवक-युवतियां विशेष सफल सिद्ध होंगी।

अध्ययनशीलता

वर्तमान काल में मानवोचित साहित्य में रुचि घट रही है। यह विश्वविद्यालय सृजनात्मक साहित्य के अध्ययन की महत्ता को समझता है। साहित्य मानवीय संवेदना की अभिवृद्धि, निर्णय क्षमता में बढ़ोतरी, दार्शनिक दृष्टिकोण की सूक्ष्मता तथा नैतिक जीवन की नींव डालने का माध्यम है। वस्तुतः इसमें उन सभी अपेक्षित गुणों व प्रतिभाओं को असीम सामर्थ्य प्रदान करने की शक्ति है। साहित्य सागर में अवगाहन कर मानव अपने जीवन में शांति एवं संतुलन की स्थायी शक्ति की संपदा जुटा सकता है। विश्वविद्यालय के प्राध्यापक, प्राध्यापिकाएं और छात्र-छात्राएं नूतन समाज में सृजनात्मक साहित्य वाचन में रुचि बढ़ाने में सहायक होंगी।

व्यावहारिक शिक्षा के अंतर्गत मानवशास्त्र व पारिस्थितिकी के सिद्धांतों पर आधारिक पाठ्यक्रम : सीमित परिधि में शिक्षा प्राप्त विशेषज्ञ प्रत्यक्ष कार्यक्षेत्र में कम व्यावहारिक सिद्ध हो रहे हैं। अतः

यह विश्वविद्यालय, छात्र-छात्राओं को स्नातक उपाधि प्रदान करने के पूर्व, बहुआयामी अर्थात् व्यापक शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करेगा।

छात्रों की भागीदारी के साथ विचार-गोष्ठियों का आयोजन : इस विश्वविद्यालय के संकायों में विद्वान् और समर्पित प्राध्यापक होंगे। इनमें से कुछ अवकाश प्राप्त भी हो सकते हैं, जो अवैतनिक होंगे। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय नियमित रूप से देश-विदेश से उच्च कोटि के विद्वानों को बुलाकर विचार-गोष्ठियां आयोजित करेगा। ये गोष्ठियां शिक्षकों व विद्यार्थियों के बीच पढ़ाए जानेवाले विषयों और जीवन के सभी पहलुओं पर विचार विनिमय पर केंद्रित होंगी। इस विश्वविद्यालय को सामान्य विश्वविद्यालयों के अनुपात में कहीं अधिक संख्या में विचार गोष्ठियों, लेखों का पठन और विविध विषयों पर परिचर्चाओं का आयोजन करना होगा। विश्वविद्यालय का प्रयास होगा कि वह सभी विषयों में देश-विदेश के अद्यतन विचारों व विचारकों की जानकारी रखें तथा उनसे आवश्यक लाभ उठाएं।

निम्नलिखित विषयों में शिक्षा दी जाएगी—

- जीवनधारिता पारिस्थितिकी, जीवन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान,
- जलवायु विज्ञान,
- भारतीय पारिस्थितिकी की प्रणालियां,
- भारतीय सभ्यता के आधारभूत तत्त्व,
- भूगोल, विभिन्न विषयों का मिश्रण, विभिन्न संस्कृतियों का एक-दूसरे पर प्रभाव,
- प्राचीन भारत में सामाजिक जीवन के व्यापक तथ्य,
- भारत का सामाजिक व आर्थिक इतिहास,
- वर्तमान आर्थिक व्यवस्था के भारतीय आधारभूत तथ्य,
- भारत की मूलभूत दार्शनिक प्रणालियां,
- परंपरागत स्वास्थ्य व्यवस्थाएं एवं उपचार विधियां,
- भारतीय एवं अन्य संतों के उपदेश,
- राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक चिंतन का इतिहास।

विश्वविद्यालय का विश्वास है कि व्यावहारिक जीवन के लिए इन सभी विषयों का ज्ञान आवश्यक है। विश्वविद्यालय ऐसे आचार्यों का प्रबंध करेगा, जो सरल भाषा में उदाहरण और रूपकों द्वारा विद्यार्थियों की रुचि जाग्रत् करें और उनको कहानी सुनाने जैसा आनंद देते हुए इन विषयों की शिक्षा दें। अंत में प्रत्येक विद्यार्थी अपना मत व्यक्त करते हुए प्रश्नोत्तर द्वारा गहन परिचर्चा में भाग ले, जिससे उन्हें अर्थपूर्ण और जीवनोपयोगी शिक्षा प्राप्त हो सके।

संकाय, संस्थान एवं केंद्र

विश्वविद्यालय का कार्य अभी प्रारंभ ही हुआ है। जैसा पहले कहा जा चुका है कि इस वर्ष पूर्व

प्राथमिक और प्राथमिक कक्षाएं शुरू की गई हैं और दूसरी ओर बी.एड., एम.एड. और ग्रामीण पुनर्रचना प्रबंध तथा सामाजिक कार्य में स्नातकोत्तर कक्षाएं आरंभ की गई हैं। आगामी काल में निम्नांकित संकाय स्थापित किए जाएंगे—

- मानव शास्त्र संकाय,
- शिक्षा संकाय,
- भौतिक और गणित संकाय,
- जीवन विज्ञान संकाय,
- पर्यावरण विज्ञान संकाय,
- यांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी संकाय,
- स्वास्थ्य और आरोग्य शास्त्र संकाय,
- योग और प्राकृतिक उपचार संकाय,
- वाणिज्य संकाय,
- गृह विज्ञान संकाय,
- ललित कला संकाय,
- कृषि एवं पशु विज्ञान संकाय,
- ग्रामीण पुनर्रचना संकाय।

ललित कला संकाय

कलात्मकता मानव प्राणी की अपनी ही विशेषता है। वह हर व्यक्ति में जन्मत: विद्यमान रहती है। कल्पकता का भी उसे वरदान प्राप्त रहता है। इन दो ईश्वर प्रदत्त गुणों का संगम मानव को कलाकार बनाता है। कलाकार अपनी कल्पकता व कला के सहारे कठोरतम पाषाण को भी भगवान का मनोहारी रूप प्रदान करता है। चराचर में भगवान् का दर्शन कराने की क्षमता ललित कलाओं में है।

ललित कलाएं सहज में ही सबके आकर्षण का केंद्र बनती हैं। इस माध्यम को अपनाए बिना ग्रामीण अंचल की महिला–पुरुषों की असीम शक्ति में पुनर्रचना में योगदान कर पाना कठिन है। कला के माध्यम से उपलब्ध तन्मयता मानव की कार्यक्षमता बढ़ाती है, काम में सौंदर्य उंडेलती हैं तथा मानव की सृजनात्मक शक्ति वृद्धिंगत करती है।

कलाहीन मानव जीवन नीरस, रुक्ष एवं भाररूप बनता है। अत: हर बालक–बालिका के लिए उसकी रुचि के अनुसार, ललितकला साधना की सुविधा उपलब्ध कराना शिक्षा केंद्रों का दायित्व है। इसी उद्देश्य से इस विश्वविद्यालय में ललितकला संकाय प्रस्थापित किया जा रहा है।

खेलकूद एवं व्यायाम संकाय : बच्चों में खेलकूद की प्रवृत्ति जन्मजात होती है। दुर्भाग्य से इस प्रशंसनीय वृत्ति को प्रोत्साहन देने के स्थान पर उसकी उपेक्षा हो रही है। विद्यालयों को मान्यता देते समय सरकार भवनों की अव्यावहारिक शर्तें अवश्य लगाती है, किंतु बच्चों के खेलकूद के

लिए मैदान का प्रबंध है या नहीं, यह जानने की भी चिंता नहीं करती। परिणामतः अधिकांश मान्यता प्राप्त विद्यालयों के पास खेलकूद के लिए मैदान उपलब्ध नहीं हैं। माता-पिता एवं गुरुजन भी इस संबंध में पूर्णतः उदासीन हैं। बच्चों को रात-दिन किताबों व कॉपियों के साथ जोड़े रखने भर को अपना दायित्व मानते हैं। फलस्वरूप नई पीढ़ी आत्मविश्वास शून्य, कर्तृत्वविहीन व परावलंबी बनती जा रही है।

यह विश्वविद्यालय प्रचलित दृष्टिकोण में परिवर्तन करने के प्रयास में है। अतः सब प्रकार के खेलों व व्यायामों को अपने परिसर में तथा कार्यक्षेत्र में सब प्रकार से प्रोत्साहन दिया जाएगा। इसी दृष्टि से इस विश्वविद्यालय में खेलकूद एवं व्यायाम संकाय प्रारंभ किया जा रहा है। इस संकाय में आवश्यक सभी प्रकार के उपकरण उपलब्ध किए जा रहे हैं तथा योग्य प्रशिक्षकों की व्यवस्था की जा रही है। इस विश्वविद्यालय की आकांक्षा है कि विश्व खेलकूद एवं व्यायाम प्रतिस्पर्धाओं में भारत के खिलाड़ी एवं व्यायाम निपुण युवक-युवतियां विश्व कीर्तिमान स्थापित करने में सफलता अर्जित करें। यह विश्वविद्यालय इस दिशा में गतिशील रहेगा।

अनुसंधान

ग्रामोदय विश्वविद्यालय अनुसंधान को शैक्षणिक कार्य का अभिन्न अंग मानता है। सभी संकायों के वैज्ञानिक अध्यापन में संलग्न महिला-पुरुष एवं स्नातकोत्तर छात्र-छात्राएं अनुसंधान कार्य में सहभागी होंगे। अनुसंधान के लिए सभी प्रकार की आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध की जाएंगी। विश्वविद्यालय ने इस कार्य के लिए अपने चारों ओर के पचास किलोमीटर की परिधि का विस्तृत सर्वेक्षण प्रारंभ किया है।

अनुसंधान कार्यों में सभी आवश्यक विषय सम्मिलित हैं। तथापि ऐसे विषयों को प्राथमिकता दी जाएगी, जो अभी तक उपेक्षित रहे हैं। उदाहरणार्थ, ग्रामवासियों के जीवन तथा उनके रहन-सहन से संबंधित सामाजिक विज्ञान आदि। ग्राम जीवन से जुड़े विविध पहलुओं का अध्ययन तथा वर्तमान काल के अनुसार पुनर्रचना से संबंधित विषयों का अध्ययन किया जाएगा। इसमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देकर सर्वांगीण-विकास की विधियां विकसित की जाएंगी।

ग्रामीण अंचल में अनुसंधान कार्य व्यापक स्तर पर किया जाएगा तथा इस कार्य में वैज्ञानिकों, अध्यापकों व छात्रों के साथ-साथ प्रसार कार्य में संलग्न महिला-पुरुषों एवं किसानों व विभिन्न कुटीर या ग्रामीण उद्योगों में संलग्न लोगों को भी सहभागी बनाया जाएगा। इस कार्य में जनजातीय महिला-पुरुषों व युवाओं का योगदान महत्त्वपूर्ण होगा। योग तथा आयुर्वेदिक अनुसंधान कार्य तो इनके सहयोग के बिना पूरा नहीं हो सकता।

इसके अतिरिक्त व्यापक स्तर पर प्रयोगों के लिए निम्नलिखित केंद्र व संस्थान भी विश्वविद्यालय के अंतर्गत स्थापित किए जाएंगे। उन्हें शोध के लिए अन्य संस्थानों से सहयोग लेने की अनुमति प्रदान की जाएगी—

- पर्यावरण विज्ञान संस्थान,

- ग्रामीण पुनर्रचना संस्थान,
- ऊर्जा अध्ययन केंद्र,
- लोक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान,
- महिला एवं बाल कल्याण संस्थान,
- विकलांग कल्याण केंद्र,
- संचार संस्थान।

प्रत्येक केंद्र अपने क्षेत्र में सघन शोध करेगा, जिसमें न केवल विश्वविद्यालय संकायों के सदस्य और शोध विद्यार्थी भाग लेंगे, बल्कि अन्य अध्ययन और शोध केंद्रों के ख्याति प्राप्त और विचारवान सदस्यों तथा विकासोन्मुख ग्रामीणों और नागरिकों का भी सहयोग लिया जाएगा।

प्रसार शिक्षा

यह अनुभव सिद्ध है कि हर एक विषय का सूक्ष्मतम ज्ञान तथा गहनतम अध्ययन प्रयोगात्मक शिक्षण विधि के माध्यम से ही संभव होता है। विद्यालयों की संख्या में निरंतर वृद्धि होने पर भी जन साधारण के जीवन स्तर में उन्नति संभव नहीं हो रही है, अपितु शिक्षित वर्ग परजीवी बनता जा रहा है। बड़ी संख्या में इकोलॉजी व पर्यावरण विभाग खुल रहे हैं, किंतु न शहरों के और न ग्रामों के प्रदूषण में कमी या पर्यावरण में सुधार हो रहा है। इन पर जो विशाल धनराशि व्यय हो रही है, वह अनुत्पादक सिद्ध हो रही है। इसका प्रमुख कारण है शिक्षा को व्यावहारिकता से वंचित रखना।

यह विश्वविद्यालय प्रचलित शिक्षा की इस अनुत्पादक पद्धति में परिवर्तन करेगा। विद्यार्थी वर्ग एवं अध्यापक वर्ग मिलाकर ग्रामीण पुनर्रचना के प्रयोगों के द्वारा शिक्षा एवं व्यवहार को एक-दूसरे से जोड़कर व्यावहारिक शिक्षा पद्धति का विकास करेंगे।

ग्रामीण पुनर्रचना में न केवल पशुपालन और कृषि कार्य निहित हैं, अपितु वन संवर्धन, जल संसाधन प्रबंध, ग्रामीण स्वच्छता, कुटीर उद्योग-ग्रामोद्योग, लघु उद्योग, सड़कों व पुलों का निर्माण, लघु विद्युत् स्रोतों का अनुसंधान, अनौपचारिक व औपचारिक शिक्षा, अलाभकर जोतों को लाभकर जोतों में परिवर्तन, नैतिकता तथा सदाचार की दिशा में लोगों की गतिशीलता बढ़ाना, स्वस्थ मनोरंजन एवं सामूहिक निर्णयों की पद्धति विकसित करना आदि कार्य ग्रामवासियों द्वारा करवाने की स्वप्रेरित विधियां विकसित की जाएंगी। विश्वविद्यालय अनुभव करता है कि प्रचलित सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक कार्यशैली समाज में विषमता व विघटन बढ़ा रही है। कुछ लोगों की समृद्धि व अधिकतर लोगों में गरीबी बढ़ रही है। वृद्धिगत विषमता के साथ कलह बढ़ रही है। सर्वमान्य—जिन पर सबको भरोसा है—व्यक्तियों का सभी आबादियों में अभाव हो गया है। ग्रामवासी आपसी मुकदमेबाजी के कारण आर्थिक संकट के शिकार हो रहे हैं। यह समाज एवं देश के विघटन और पतन की दिशा में परिवर्तन कर यह विश्वविद्यालय हर आबादी में सर्वमान्य व्यक्तियों का विकास करने में योगदान देगा।

चित्रकूट के चारों ओर फैले ग्रामीण अंचल की आबादियों में यह विश्वविद्यालय अपने प्राध्यापक वर्ग एवं छात्र-छात्राओं के द्वारा विभिन्न परिवारों में तथा उनमें पलनेवाली संतानों में सामंजस्य एवं परस्पर-पूरकता द्वारा सहयोगात्मक वातावरण निर्माण करते हुए भविष्य के सुखद संकेतों को सत्य सृष्टि में उतारने का कार्य करेगा।

प्रशिक्षण

शिक्षा अनुसंधान एवं प्रसार के साथ-साथ प्रशिक्षण कार्य बहुत आवश्यक है। प्रशिक्षण के बिना शिक्षा, अनुसंधान तथा प्रसार कार्य निष्फल सिद्ध होगा। अभी तक प्रशिक्षण केवल तदर्थ रूप में है, क्योंकि समाज का हर तबका, खासकर ग्रामीण समुदाय औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता, इसलिए उनके प्रशिक्षण का कार्य बहुत महत्त्व रखता है। जन कल्याण के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रसार छोटे-बड़े प्रशिक्षण के रूप में आयोजित करना अति आवश्यक है। इसे विश्वविद्यालय के परिसर में या परिसर के बाहर भी आयोजित किया जाएगा। प्रसार कार्य को परिणामजनक बनाने के लिए प्रशिक्षण द्वारा सामान्य लोगों के लिए ज्ञान एवं कुशलता प्रदान करने की आवश्यकता है।

प्रशिक्षण की महत्ता का केवल गांव एवं प्रसार से संबंध नहीं है, अपितु कार्यरत व्यक्तियों अर्थात् शिक्षक एवं वैज्ञानिकों के लिए भी आवश्यक है। अतः ग्रामोदय विश्वविद्यालय में सभी प्रकार के प्रशिक्षणों के लिए एक प्रशिक्षण निदेशालय की स्थापना की जाएगी।

प्रशिक्षण पाठ्यक्रम व्यावहारिक एवं उपयोगी हो, इसका विशेष ध्यान रखा जाएगा। अधिकांश ग्रामवासी अनपढ़ हैं, इसलिए प्रशिक्षण प्रत्यक्षण के द्वारा प्रशिक्षणार्थियों को ज्ञान एवं कुशलता प्रदान करेंगे। प्रशिक्षणार्थी स्वयं भी इसी प्रकार कार्य निष्पादन करके ज्ञानार्जन करेंगे। प्रशिक्षण के साथ-साथ अनिवार्य संसाधन उपलब्ध कराए जाएंगे। इसके उपरांत यथा समय प्रशिक्षणार्थियों का संस्थाओं से संबंध स्थापित किया जाएगा।

शिक्षा-अनुसंधान-प्रसार-प्रशिक्षण समन्वय: आधुनिक शैक्षणिक वातावरण में शिक्षा, अनुसंधान, प्रसार एवं प्रशिक्षण के बीच तालमेल अति आवश्यक है। परंपरागत विश्वविद्यालयों में इस तरह की प्रणाली नाममात्र है। विश्वविद्यालयों में शिक्षा, अनुसंधान एवं प्रसार में समन्वय औपचारिक रूप में है। प्रशिक्षण विश्वविद्यालयों में भी तदर्थ रूप में ही है। अतः ग्रामोदय विश्वविद्यालय में इन चारों घटकों पर समान बल देने के साथ-साथ इनमें समान रूप से समन्वय की व्यवस्था की जाएगी।

यह विश्वविद्यालय अपने परिसर के बाहर के गांवों से भी निकट संपर्क बनाए रखेगा। ग्रामवासियों एवं वैज्ञानिकों के बीच ताल-मेल एवं परस्पर विचार विनिमय के फलस्वरूप परिसर के कार्यक्रम के साथ-साथ गांवों का भी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक उत्थान का कार्य संपन्न होगा। अन्य विश्वविद्यालयों में अपने परिसर के अंदर ही कार्य करने की परंपरा प्रचलित है। इसके कारण विद्यार्थीगण व्यावहारिक ज्ञान से एवं अनुभवों से वंचित रहते हैं।

विराट् पुरुष

अंतर विश्वविद्यालय सहयोग की दिशा में यह विश्वविद्यालय पहल करेगा। इस विश्वविद्यालय को शिक्षा व्यवस्था के सुधार के प्रयासों में अन्य विश्वविद्यालयों और संस्थानों के सहयोग की नितांत आवश्यकता रहेगी। जीवन की समस्याओं और प्रतिक्रियाओं के संबंध में शिक्षा को एक नया मोड़ देने में अनेक प्रश्न उठेंगे। उनके समाधान के लिए विभिन्न विश्वविद्यालयों और संस्थानों के साथ परस्पर सुसंवाद की प्रक्रिया प्रारंभ करने व उसे निरंतर चालू रखने में यह विश्वविद्यालय विशेष प्रयास करेगा। सौभाग्यवश इस कार्य के लिए चित्रकूट के आस-पास भोपाल, उज्जैन, झांसी, इंदौर, जबलपुर, इलाहाबाद, लखनऊ, वाराणसी, आगरा, सागर, ग्वालियर और रीवा में प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय हैं।

विश्वविद्यालय एक अनोखी संस्था होगी, जिसका प्रभाव देश एवं विदेशों में भी होगा। इस विश्वविद्यालय का संपर्क विश्व के प्रमुख अनुसंधान एवं विकास संस्थाओं से प्रस्थापित होगा, जिससे हम उनके द्वारा विकसित अधुनातन प्रौद्योगिकी का अपने ढंग से लाभ उठा सकेंगे।

प्रशासनिक प्रबंध

संकाय का संचालन एक संकायाध्यक्ष डीन द्वारा किया जाएगा और उसमें विषयवार विभाग होंगे। प्रत्येक संकाय के लिए एक पाठ्य परिषद् (बोर्ड ऑफ स्टडीज) होगी, जो जहां आवश्यक होगा, संकाय की समस्याओं को विद्या-परिषद् (एकेडमिक कौंसिल) को निर्णय के लिए भेजेगा।

संकाय, संस्थान व केंद्रों की सूची सांकेतिक है। आवश्यकताओं के अनुसार विद्या-परिषद् (एकेडमिक कौंसिल) की स्वीकृति से इसमें आवश्यक परिवर्तन तथा परिवर्धन संभव है। अनुसंधान, प्रसार एवं प्रशिक्षण के लिए अलग-अलग परामर्श परिषदों का गठन किया जाएगा।

जीवन के प्रत्येक पहलू को विचार में लेकर, सनातन परंपरा के मनीषियों ने परस्पर विचार विनिमय के माध्यम से, अनेक के प्रयासों द्वारा, काल की कसौटी पर परखकर लोकविज्ञान का विकास किया था। विज्ञान, वास्तु शिल्प, आवागमन विधियां, खगोल शास्त्र, ऋतु निदान आदि उसी के सुपरिणाम हैं।

कला व कल्पना क्षेत्र में भी कम उपलब्धियां नहीं हुई थीं। लोक-संगीत, लोक-नृत्य, लोक-चित्रकला, लोक-चिकित्सा, मूर्तिकला, हस्तशिल्प आदि में आश्चर्यजनक निपुणता अप्रतिम रही है। लोक-साहित्य परंपरा की अनूठी देन आज भी गौरव का विषय बनी हुई है। यह हमारी अनमोल धरोहर है।

मानव विकासशील प्राणी है। गतिमानता उसका स्वभाव है। प्रगति—निरंतर प्रगति उसकी प्रेरणा है। विज्ञान व तकनीकी क्षेत्र में अखंड रूप से हो रहे आविष्कार उसकी इस प्रवृत्ति के परिचायक हैं। परिणामस्वरूप व्यक्तिगत, पारिवारिक, क्षेत्रीय तथा सामाजिक जीवन-रचना में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। तदनुसार युगानुकूल सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक पुनर्रचना करना प्रत्येक युग का धर्म है। उसकी उपेक्षा राष्ट्र जीवन में जटिल समस्याओं का कारण बनती है। अतः लोक विज्ञान व लोक-साहित्य का गहन अध्ययन,

अध्यापन तथा उसका आधुनिक काल के आविष्कारजन्य विज्ञान व तकनीकी प्रगति के साथ सामंजस्य प्रस्थापित करते हुए मानवीय जीवन मूल्यों को कायम रखना वर्तमान काल की महती आवश्यकता है। इसी से राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय जीवन सुव्यवस्थित, शांतिमय, विषमता रहित, समृद्धिशाली व उन्नतिशील बन सकता है। यह विश्वविद्यालय इसी दिशा में कार्यरत रहेगा।

□

ग्रामोन्मुखी शिक्षा
नवनिर्माण के लिए अपरिहार्य

चित्रकूट भारत की हृदय स्थली है। केवल भौगोलिक कारण से ही नहीं अपितु देश भर के नागरिकों के हृदय-पटलों पर चित्रकूट तपस्वी प्रभु राम के विराजमान होने के कारण। सत्तालोलुपता के वर्तमान लज्जास्पद वातावरण में यह एक ऐसा प्रेरणास्रोत है, जहां राम और भरत ने सिद्ध कर दिखाया था कि केवल सत्ता महानता प्रदान नहीं करती। महानता प्राप्त होती है सामाजिक निष्ठा एवं कर्तव्यतत्पर आचरण से। अतः देश का भविष्य बनानेवाली नई पीढ़ी को जीवन के समुचित पाठ पढ़ने के लिए चित्रकूट से अधिक उपयुक्त केंद्र अन्य नहीं हो सकता। इसी विशेषता के कारण 'ग्रामोदय विश्वविद्यालय' मंदाकिनी नदी के पावन तट पर निसर्गरम्य परिसर में 12 फरवरी, 1991 को प्रस्थापित हुआ है।

विश्वविद्यालय का बोध वाक्य है 'विश्वं ग्रामे प्रतिष्ठितम्'। ग्राम विश्व का लघुरूप अर्थात् ब्रह्मांड है। ग्राम में सहज में ही बहुविध वनस्पतियां, पशु-पक्षी एवं जीव-जंतु एक-दूसरे को प्राकृतिक रूप से प्रभावित करते हैं। यहां क्षितिज धरती के मिलन का नित्य दर्शन संभव होता है, जो जीवन की व्यापकता का संदेश देते हुए स्वर्ग का स्पर्श सुख अनुभव कराता है। सूर्य एवं चंद्रमा की गति का पेड़-पौधों पर, कृषि की फसलों पर, जीव-जंतुओं पर तथा मानव जीवन पर पड़नेवाला प्रभाव सहज में ही दृष्टिगोचर होता है। प्रकृति की विचित्र प्रक्रियाओं की गतिविधियों के अखंड चक्र का अध्ययन यहां ही संभव है। इस प्रकार से जीवन की परस्परपूरकता का अनुभव कराने की क्षमता एवं जीवन के समग्र पहलुओं का साक्षात्कार कराते हुए, सरलता से ग्रामीण परिसर सर्वांगपूर्ण अध्ययन का सुअवसर प्रदान करता है।

भारतमाता ग्रामवासिनी मानी जाती है, अतः भारतीय शिक्षा में मौलिक सुधार लाने के लिए सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में गठित प्रथम शिक्षा आयोग 1949 की रिपोर्ट में ग्रामीण विश्वविद्यालय स्थापित करने पर विशेष बल दिया गया था। इस पर कोई व्यावहारिक कदम नहीं उठाया गया। किंतु सन् 1954 और 1959 में ज़ारी दो भारतीय-अमरीकी विशेषज्ञों के दल की सिफारिशों के आधार पर कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना का प्रस्ताव 1960 में लागू किया

मंथन, अप्रैल 1992

गया। आज देश में 27 कृषि विश्वविद्यालय कार्यरत हैं, परंतु ग्रामीण क्षेत्रों के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक सभी पक्षों को ये विश्वविद्यालय अपने कार्यक्रम का क्षेत्र नहीं बना पाए। अतः दीनदयाल शोध संस्थाान ने पर्याप्त चिंतन के पश्चात् 'ग्रामीण विश्वविद्यालय' स्थापित करने का संकल्प लिया है। चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय इस दिशा में पहला संस्थान है।

विकास चाहे ग्रामीण हो या नगरीय, दोनों के चार प्रमुख आयाम हैं—(क) शिक्षा, (ख) अनुसंधान, (ग) विस्तार और (घ) प्रशिक्षण। ग्रामोदय विश्वविद्यालय इन चारों क्रियात्मक क्षेत्रों पर समेकित रूप में बल देगा। विगत काल में इन क्रियात्मक क्षेत्रों को विश्वविद्यालयों में अपनाते समय उनके बीच पूरा समन्वय नहीं रखा जा सका। सर्वांगीण ग्रामीण विकास के लिए इन पक्षों पर पूरा बल देना नितांत आवश्यक है। इस दृष्टि से निम्न बिंदु शिक्षा की आवश्यक दिशा तय कर सकते हैं—

- ग्रामीण जीवन की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक पुनर्रचना करते समय ध्यान रखना आवश्यक है कि शहरों में प्रचलित व्यापारिक अर्थात् केवल धनार्जन के दृष्टिकोण से ग्रामों को मुक्त रखना होगा। उपभोग हर शरीरधारी की मूल प्रवृत्ति है। मानव उससे वंचित नहीं है। किंतु संवेदनशील भी उसकी जन्मजात विशेषता है। यही विशेषता उसे सृष्टि के हर तत्त्व के साथ अभिन्नता की अनुभूति कराती है। यह अनुभूति ही मानव को प्राणिमात्र के हित में अपने उपभोग पर संयम का सामर्थ्य प्रदान करती है। फलस्वरूप मानव सृष्टि के सभी अंगों में संतुलन बनाए रखने की क्षमता पाता है।

  किंतु उसने स्वयं को केवल उपभोग तक ही सीमित रखा तो वह बुद्धिप्रधान होने के कारण सबके लिए खतरनाक बनता है। वर्तमान अशांति का कारण उपभोग प्रवृत्ति का सब पर सवार होना है। फलस्वरूप तकनीकी प्रगति शोषण का कारण बन रही है, प्राकृतिक संसाधन नष्ट करती जा रही है तथा सृष्टि का संतुलन बिगाड़ रही है।
- विश्वव्यापी सुखानंदपूर्ण अवस्था निर्माण करने के लिए जाति-पांति, मजहबों-संप्रदायों, लिंगभेद या राजनीतिक विभिन्नताओं के होते हुए प्राचीन काल में अपने यहां एकता व एकात्मता का आदर्श, अर्थात् 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत।' व्यावहारिक जीवन में चरितार्थ किया जाता रहा है। तदनुसार आचरण विकसित करना आज की आवश्यकता है। विश्वव्यापी मानवीय जीवन एकात्म एवं अविभाज्य है। अतः सर्वव्यापी सुख-शांति के बिना कोई देश, समाज, परिवार या व्यक्ति निश्चिंत व सुखी नहीं हो सकता। हिंदुस्तान का अनंतकाल से आदर्श रहा है विश्वशांति और सौख्य प्राप्ति। वह संपूर्ण सृष्टि के कल्याण की कामना करता है। अतः यह विश्वविद्यालय सभी जातियों, सभी महजबों-संप्रदायों तथा सभी अंचलों की महिला तथा पुरुषों का आह्वान करता है कि वे इस विश्वविद्यालय के विकास में सहभागी बनें। विश्वविद्यालय की बहुआयामी गतिविधियों में सभी के अनुभव, क्षमता एवं कुशलता का स्वागत है।

मूलभूत सिद्धांत एवं स्थायी जीवन-मूल्य

- सादगीपूर्ण जीवन ही विश्वव्यापी सुख-शांति का आधार है। ऐश्वर्य व भुखमरी, मानसिक

तथा शारीरिक अस्वस्थता एवं अन्यायपूर्ण प्रवृत्ति का परिणाम है। प्रकृति के साथ जीवन की समरसता ही उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करती है। निष्काम कर्म ही असीम शक्ति तथा महान् उपलब्धियों का सर्वोत्कृष्ट साधन है। अतः प्रचलित जीवनयापन की शैली में परिवर्तन करना आवश्यक है। उपभोग प्रेरित जीवन तथा समाज से निजी लाभ उठाने की प्रवृत्ति के स्थान पर नागरिकों में अन्यों के प्रति सद्भावना तथा परस्परपूरकता का जीवन विकसित किए बिना सुख-शांति की उपलब्धि संभव नहीं है।

- प्राणिमात्र के लिए सुख, शांति व सुरक्षा उपलब्ध कराना भारत की विशेषता रही है। परा-औद्योगिक सौर सभ्यता के साथ इसी आदर्श का सामंजस्य संभव है। आर्थिक व राजनीतिक विकेंद्रीकरण की सर्वहितकारी सर्वभूत हितेरतः व्यवस्था समाज की सुस्थिति एवं उन्नति के लिए सर्वोपयुक्त माध्यम है।
- विद्यालयों ने अपने प्रत्येक विद्यार्थी के चतुर्दिक् विकास-शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा के विकास पर बल दिया तो सभ्यता अपना परमोच्च स्थान प्राप्त कर देश समृद्धि के शिखर पर पहुंच सकता है। प्रत्येक व्यक्ति अनोखा है। हर एक में कोई-न-कोई विशेष गुण विद्यमान रहता है। अतः किसी व्यक्ति के विकास की संभावना उपेक्षित हुई तो पूरे समाज की हानि होती है।
- स्वप्रेरणा से समाज सेवा में रत व्यक्ति श्रेष्ठतम पाता है। ज्ञान यदि निजहित तक ही सीमित रहा तो वह समाज में विषमता का कारण बनता है। ज्ञान की सृजनात्मक भक्ति तभी प्रकट होती है जब वह जनसामान्य के काम आता है। ज्ञान केवल बौद्धिक गतिविधियों तक ही सीमित नहीं है। भावोत्कर्ष का माध्यम भी वही है। एक पक्षी के करुण-क्रंदन ने वाल्मीकि के हृदय को झकझोरा था। उसी से उनमें अमर काव्य का प्रवाह प्रस्फुटित हुआ था। कालिदास की सौरभमय रचना की सृष्टि का कारण बनी उनकी अंतरतम की भावनाओं पर पहुंची गहरी चोट। भगवान् बुद्ध तथा ईसा मसीह को परमज्ञान की प्राप्ति तब हुई जब उनका हृदय भावुकता से उद्वेलित हो उठा। ज्ञान की सिद्धि, बुद्धि एवं भावनाओं के तीव्र आवेगों के मिलन का सुपरिणाम है। अतः चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय तथा उसके अंतर्गत चलनेवाले विभिन्न संस्थाओं के शिक्षकों व शिक्षार्थियों के जीवन में उपस्थित ऐसे मिलन प्रसंगों को प्रोत्साहित कर नई पीढ़ी की रचनात्मक ज्ञान-सिद्धि का मार्ग प्रशस्त किया जाएगा।
- प्रेम और त्याग मानव जीवन के आधारभूत तत्त्व हैं। इस चेतना का संस्कार परिवार में प्राप्त होता है। त्याग की भावना जीवन में अनोखा आनंद प्रदान करती है। संतान के लिए बड़े-से-बड़ा बलिदान करने में माता-पिता असीम सुखानंद की अनुभूति करते हैं। इस अनुभूति में संस्कार की अद्वितीय क्षमता है। मानव किसी के लिए त्याग करता है तो वह आत्मोन्नति एवं अलौकिक आनंद से आत्मविभोर होता है। उपनिषद् का निर्देश है 'तेन त्यक्तेनभुञ्जीथा' (त्याग द्वारा सुख पावो।) संतों का कहना है कि 'त्यजेत् एकं कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्, ग्रामं जनपदस्यार्थे, आत्मार्थे पृथ्वी त्यजेत्' अर्थात् 'व्यक्ति परिवार के हित में, परिवार ग्राम के हित

में, ग्राम जनपद के हित में त्याग करे' तथा चराचर के हित के लिए सर्वस्व का त्याग करे। भारत की यह स्वानुभूत पुरातन शिक्षा मानवमात्र की उन्नति की अनमोल धरोहर है। इस अनूठे ज्ञानार्जन की विधि से कोई पीड़ा नहीं होती अपितु असीम संतोष व सुख प्राप्त होता है। आज का व्यापार प्रधान व उपभोग प्रेरित संसार इस असीम सुखानंद प्राप्ति के अनुभूत मार्ग का उपहास कर उसे नष्ट करने पर तुला है। चारों ओर निरंतर बढ़ रही अनैतिकता, अराजकता, अपहरण, भ्रष्टाचार, हत्याएं एवं बलात्कार की बाढ़ उसी का दुष्परिणाम है।

अतएव अपनी चिरपुरातन किंतु नित्य नूतन बनी रहने की क्षमता रखनेवाली संस्कृति व शिक्षा के कल्याणकारी तत्त्वों को खोज-खोजकर उनका वर्तमान संदर्भ में व्यावहारिक रूप निखारना समय की मांग है। चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय इस आवश्यकता की पूर्ति करते हुए नूतन पीढ़ी को मां की गोद से लेकर स्नातकोत्तर तथा उससे भी अधिक उच्च अध्ययन का, समुचित प्रबंध करने का अभिलाषी है एवं प्रत्येक विद्यार्थी के व्यक्तित्व का विकास उपर्युक्त दिशा में करने के लिए संकल्पबद्ध है।

गुरुकुल संस्कार शैली

गुरुकुल संस्कार शैली की अवधारणा वर्तमान काल में भी न केवल समयोचित है अपितु मूल्य आधारित शिक्षा के लिए अपरिहार्य है। गुरुदेव कवींद्र रवींद्रनाथ ठाकुर के चिंतन के अनुरूप इस ग्रामोदय विश्वविद्यालय की मान्यता है कि विद्यालय एक ऐसा संसार है, जहां मार्गदर्शन की शैली व्यक्तिशः स्नेह और आत्मीयता में से प्रस्फुटित होती है। शिक्षा का अर्थ होता है— विद्यार्थीगण अध्यापक की अभिलाषाओं के साथ तन्मय होकर जीवन के पाठ पढ़े। श्रेष्ठतम अध्ययन केंद्र वही है, जहां लोग उच्चतम जीवनादर्श को व्यावहारिक जीवन में उतारने के लिए एकत्रित होते हैं। वहां वे मानवीय संस्कार के दैवी वातावरण में विचरण करने का आनंद पाते हुए वृद्ध, बच्चे और पढ़ाने तथा पढ़नेवाले समान रूप से साथ-साथ अन्न ग्रहण करते हुए शाश्वत जीवन की प्रेरणा पाते हैं। इसी कारण इस विश्वविद्यालय ने गुरुकुल की पारिवारिक अवधारणा को वर्तमान काल में व्यावहारिक रूप प्रदान करने का निश्चय किया है।

पुरुषार्थ का मंत्र

सुशिक्षित व्यक्तियों को जिन गुणों से संपन्न होना चाहिए, वे गुण हैं—मानव मात्र के लिए निस्स्वार्थ प्रेम, हृदय की शुद्धता, माता-पिता के प्रति आदर, सच्चाई के प्रति निष्ठा, अहिंसा, अपरिग्रह, स्वतंत्र चिंतन, स्पष्ट अभिव्यक्ति, संवेदनशीलता, निर्भीकवृत्ति, न्यायनिष्ठा, महिलाओं के प्रति सम्मान, नैसर्गिक सृष्टि के साथ सामंजस्य, स्वावलंबन व स्वाभिमान। गुरुदेव रवींद्र के शब्दों में 'संपूर्ण सृजन में अनंत की चेतनानुभूति, निर्धन के प्रति आत्मीयता, उद्दंड भक्ति के सम्मुख कभी न झुकने की क्षमता तथा राष्ट्र को सदैव जाग्रत् रखने की दक्षता', उपर्युक्त गुणों का संवर्धन प्रतिकूल वातावरण में संभव नहीं होता। अतएव बुराइयों का प्रवाह रोकते हुए साहसपूर्ण

पुरुषार्थ जगाना, जो प्रचलित वातावरण को बदलने का सामर्थ्य प्रदान कर सके, इस विश्वविद्यालय का लक्ष्य है।

विशाल भारतवर्ष में प्राचीन काल में बहु प्रजातियों एवं अनेकानेक मजहबों और संप्रदायों की ऐसी अनोखी सांस्कृतिक एकता विकसित हुई थी, जिसे प्राप्त करने की दिशा में पश्चिमवासी और यूरोपवासी अब प्रयास कर रहे हैं। भारत की सांस्कृतिक सार्वभौम एकता के अंतर्गत सैकड़ों उपसंस्कृतियों के विकास का ऐसा सुअवसर उपलब्ध था, जिससे देशवसियों के जीवन में बहुरंगी, सौंदर्यपूर्ण एवं सर्वव्यापी समृद्धि संभव हुई थी। उस गौरवपूर्ण इतिहास को वर्तमान काल में दुहराने के लिए भारत को पुनः अनेकता में एकता की नई उंचाइयों तक पहुंचना होगा। इसी दिशा में यह विश्वविद्यालय गतिमान रहेगा।

अपने देश के समान बहुजातीय, अनेकविध मजहबों, संप्रदायों से युक्त तथा विविध भाषाओं एवं बोलियों से संपन्न शायद ही कोई अन्य देश होगा। इतनी विविधताओं में यदि एकीकरण की शक्तियां इन विभिन्नताओं को संभालने में अक्षम हुई तो बहुत बड़ा संकट खड़ा हो सकता है। चुनौतियों का सफल सामना करने के लिए समुचित संश्लेषण कर समयानुकूल सभ्यता व संस्कृति का प्रासंगिक रूप विकसित करना अनिवार्य है। यह विश्वविद्यालय उसी कार्य में संलग्न हो रहा है।

समयानुकूल शिक्षा

शिक्षा को समयानुकूल सामाजिक पुनर्रचना का माध्यम बनाकर ग्रामोदय विश्वविद्यालय सामाजिक पुनर्रचना का उत्प्रेरक बनने का आकांक्षी है। यह प्रेरणा इस विश्वास से जाग्रत् हुई है कि भारत के पास समन्वयात्मक विरासत विद्यमान है। कुछ ही काल पूर्व गांधीजी तथा रवींद्रनाथ ठाकुर ने उसे पुष्ट किया था। अनंतकाल से प्रतिपादित भारत की जीवन-दृष्टि में एकात्मता के दर्शन की क्षमता, शास्त्र-ग्रंथों में प्रतिपादित ऊर्जा की सूक्ष्मतम अणु से लेकर ब्रह्मांड तक व्याप्त क्रियाशीलता की शिक्षा, गणितीय प्रतिभा तथा समयचक्र की अवधारणा को आधुनिक भौतिक एवं जैविक विज्ञान ने प्रमाणित किया है। नवीनतम परिस्थितियों के निष्कर्ष हमें आमंत्रित कर रहे हैं कि नूतन प्रकाश के रूप में इस काल में हम उस दायित्व को निभाने में सक्षम बने। ग्रामोदय विश्वविद्यालय इस दिशा में समन्वित एवं पूर्ण ज्ञान के प्रसार का पूरा प्रयास करेगा। इस प्रयास में हम देश-विदेश की प्रतिभाओं के सहयोग के अभिलाषी हैं।

यह विश्वविद्यालय उस चेतना को सबके लिए सुलभ बनाना चाहता है, जिसमें रासायनिक व्यवस्था के अंतर्गत ऊर्जा व पदार्थ में निरंतर आदान-प्रदान होता रहता है। यह इस तथ्य की पुष्टि करता है कि विनिमय न केवल जीव-जंतुओं में ही होता है, अपितु चेतन-अचेतन में तथा पर्यावरण में भी होता रहता है। इससे नई पीढ़ी की चेतना में यह धारणा दृढ़मूल हो पाएगी कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा पूर्ण सत्य पर आधारित है। अपने कुटुंबियों से, पड़ोसियों से तथा निकट परिवेश से संबंध अधिक गहरे होने स्वाभाविक हैं। इन्हें शनैः-शनैः अधिकाधिक व्यापक बनाना पारिवारिक इकाइयों तथा शिक्षा केंद्रों का दायित्व है। इसके बिना मानव का सबके लिए पूरक बनना

संभव नहीं होगा। भारत के सर्वांगीण विकास के लिए ग्रामीण अंचल की युगानुकूल पुनर्रचना करना वर्तमान काल की प्राथमिक आवश्यकता है। नालंदा तथा तक्षशिला विश्वविद्यालयों के समान अपने कार्यक्षेत्र के सर्वसाधारण निवासियों में संवेदनशीलता, नैतिकता तथा परस्परपूरकता की भावना अंकुरित व प्रचलित करने की प्रक्रिया में विश्वविद्यालयों की संलग्नता ही शिक्षार्थियों में सामाजिक दायित्व की भावना विकसित करेगी। तभी देश की एकता व अखंडता के लिए खतरा बने हुए, हिंसाचार में जुटे हुए, विघटनकारी तत्त्वों का निर्मूलन संभव होगा।

□

आत्मविश्वास निर्माण
शिक्षा से ही संभव

भारत के सर्वांगीण विकास के लिए ग्रामीण अंचल की युगानुकूल पुनर्रचना करना वर्तमान काल की प्राथमिक आवश्यकता है। नालंदा तथा तक्षशिला विश्वविद्यालयों के समान अपने कार्यक्षेत्र के सर्वसाधारण निवासियों में संवेदनशीलता, नैतिकता तथा परस्परपूरकता की भावना अंकुरित व प्रचलित करने की प्रक्रिया में विश्वविद्यालयों की संलग्नता ही शिक्षार्थियों में सामाजिक दायित्व की भावना विकसित करेगी। तभी देश की एकता व अखंडता के लिए खतरा बने एवं हिंसाचार में जुटे विघटनकारी तत्त्वों का निर्मूलन संभव होगा।

विश्वविद्यालयों का दायित्व है कि वे जनजीवन में व्याप्त विभिन्न समस्याओं के निराकरण के उपाय खोजें। इन खोजों की परिणामजनकता जानने के लिए अपने कार्यक्षेत्र में अपनी खोजों का व्यावहारिक धरातल पर परीक्षण करें और उन्हें सर्वांगपूर्ण बनाएं। शिक्षा एवं शोध के साथ-साथ आधुनिकता, वातावरण के अनुकूल प्रशिक्षण एवं प्रसार पर भी बल देना आवश्यक है। इस प्रक्रिया के माध्यम से ही शिक्षार्थियों को अपने विषयों का अर्थपूर्ण एवं व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होगा, सामान्य लोगों में भविष्य के प्रति आत्मविश्वास जगेगा एवं पुरातन एवं नूतन पीढ़ी में सामंजस्य स्थापित होगा, जिससे स्वावलंबनपूर्ण जीवन का सूत्रपात हो सकेगा। विश्वविद्यालयों द्वारा इस प्रकार विकसित शिक्षा देश-विदेश में लोकप्रिय व अनुकरणीय बनेगी। इस उद्देश्य पूर्ति के लिए निम्न अभिनव कार्यक्रम निश्चित किए गए हैं।

विश्वविद्यालयों का आदर्श

यह सर्वमान्य है कि शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का माध्यम है। शिक्षा-प्राप्ति द्वारा ही शिक्षार्थी अपनी शारीरिक, बौद्धिक, भावात्मक एवं आध्यात्मिक उन्नति करता है। किंतु प्रचलित शिक्षा-पद्धति में इस मान्यता के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। शरीर आत्मा का मंदिर है (शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्)। शरीर का, आंतरिक जीवनदायी प्रेरणा का, विवेक-बुद्धि का, कल्पनाशक्ति का तथा सबके साथ तादात्म्य का विकास ही मानव का विकास है। शिक्षा तभी पूर्ण मानी जानी चाहिए, जब शिक्षार्थी अपने अंदर पावित्र्य, सौंदर्य एवं व्यापक जीवनदृष्टि

मंथन, जुलाई-सितंबर, 1995

का साक्षात्कार करे। इसी में शिक्षा एवं विद्यार्थी-जीवन की सार्थकता है तथा देश एवं मानव मात्र का भविष्य सन्निहित है।

चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय पूर्णरूपेण सचेत है कि शिक्षा अनुदेश तक सीमित नहीं होती। अनुदेश वस्तुतः जानकारी प्रदान करने मात्र का काम करता है। इसी बात पर बल होने के कारण वर्तमान संस्थाएं जानकारी बेचने की दुकानें मात्र बनी हुई हैं और विद्यार्थी वर्ग बना है संवेदनशून्य ग्राहक। इसी कारण वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में व्यक्ति बिना शिक्षित हुए जानकारी का पुलिंदा मात्र बन जाता है।

वस्तुतः शिक्षा रचनात्मक प्रक्रिया है। उसमें निरंतर जिज्ञासा जगती है और जगाई जाती है। शिक्षा में खोजपूर्ण प्रश्न उपस्थित कर उनका समाधान खोजना होता है। स्वनिर्देशित प्रयासों द्वारा ज्ञानार्जन करना पड़ता है। इस प्रक्रिया में अध्यापक मूलतः उत्प्रेरक तथा सहायक की भूमिका निभाता है। स्व-अर्जित ज्ञान अनपेक्षित संकटमय परिस्थितियों में भी सफलता प्राप्त करने की क्षमता बढ़ाता है। अतः यह विश्वविद्यालय तथा इसके अंतर्गत चलनेवाले विभिन्न कार्य शिक्षा प्रदान करने की प्रचलित विधि अपनाने के स्थान पर स्व-अर्जित ज्ञान प्राप्ति की विधियां विकसित करेगा। प्राध्यापकों की भूमिका विशेष रूप से शिक्षार्थियों को प्रोत्साहित करने तथा उनकी अध्ययन में निरंतर रुचि बढ़ाने की रहेगी। यह सामान्य प्रशिक्षण से अधिक श्रमसाध्य कार्य है। ज्ञानार्जन की इस प्रक्रिया से अध्यापकों का प्रत्येक विद्यार्थी से निकटतम संपर्क तथा विद्यार्थियों के साथ अधिक सहकारिता बढ़ेगी, जिसका प्रचलित शिक्षा-पद्धति में अभाव है।

इस विश्वविद्यालय की सुविचारित मान्यता है कि 'हाथ से काम करते हुए सोचना' व 'अपनी सोच को कार्यान्वित करना' निपुणता प्राप्ति का एकमेव मार्ग है। हाथ और मस्तिष्क की सम्मिलित प्रक्रिया ही गहन ज्ञान-प्राप्ति का साधन है। अनेक नए विचार उस समय प्रस्फुटित होते हैं, जब व्यक्ति कार्यरत रहता है। कार्य करते हुए सोचने से बहुत से प्रश्न उपस्थित होते हैं। उनका निराकरण कई बार काम की प्रक्रिया के साथ ही होता है, जो स्थायी रूप से स्मृति-पटल पर अंकित होता है।

कार्य की पूजा

अपना देश किसी काल में इसी रूप में शिक्षा प्रदान करता रहा है। परिणामतः कार्य की पूजा होती थी, किंतु तथाकथित आधुनिकता के प्रभाव में यह विशेषता मिट गई है। परिणामस्वरूप श्रम की प्रतिष्ठा समाप्त हुई है। जीवन निर्वाह श्रम की उत्पादकता पर निर्भर करता है, इस तथ्य को भुला दिया गया है। महात्मा गांधी ने श्रम का सिद्धांत प्रतिपादित किया था कि रोगी एवं अशक्त व्यक्तियों को छोड़कर अन्य सभी लोगों को उचित मात्रा में उत्पादक श्रम करना नितांत आवश्यक है, अन्यथा खानेवालों की संख्या बढ़ती रहेगी व उत्पादक श्रमशील लोगों की संख्या घटती जाएगी, जिससे सामाजिक जीवन में असंतुलन व विषमता बढ़ेगी। यह विश्वविद्यालय उपर्युक्त वस्तुस्थिति को ध्यान में रखकर ज्ञानार्जन एवं श्रमसाधना की एकात्म शिक्षा-पद्धति विकसित करेगा।

- किंतु यह विश्वविद्यालय केवल रोजगारोन्मुखी शिक्षा-पद्धति को उपयुक्त नहीं मानता। ऐसा प्रशिक्षण मानव को केवल अर्थोपार्जन तक सीमित रखता है। केवल किसी एक विशेष प्रकार के कार्य करने के लिए मशीनी कुशलता सिखाने से मस्तिष्क की कल्पनाशक्ति एवं सृजनशीलता अवरुद्ध होती है। यह विश्वविद्यालय अनुभव करता है कि अन्य उपलब्धियों के साथ-साथ सच्ची शिक्षा अनेक प्रकार के जीवनोपयोगी कार्य करने की प्रतिभा विकसित करती है। अतएव विश्वविद्यालय का प्रयास होगा कि प्रत्येक विद्यार्थी में यह चेतना उत्पन्न हो कि पर्याप्त वेतनवाले पदों पर पहुंचने के लिए डिग्री प्राप्त करना मात्र शिक्षा-प्राप्ति का लक्ष्य नहीं है। यह विश्वविद्यालय वेतनभोगी वृत्ति का युवा वर्ग निर्माण करने के लिए डिग्री प्रदान करनेवाले पाठ्यक्रम तक स्वयं को सीमित नहीं रखेगा, अपितु विद्यार्थियों के समग्र व्यक्तित्व-विकास को प्राथमिकता देगा। फलस्वरूप डिग्री प्राप्त युवक या युवती कठिन प्रसंगों में भी अडिग रहकर अपने स्वावलंबन एवं स्वाभिमान के साथ समझौता नहीं करेंगे।

संपन्नता और मानवीयता का संतुलन

वस्तुतः ग्रामीण पुनर्रचना केवल विज्ञान और तकनीकी शिक्षा तक सीमित नहीं है। यद्यपि उत्पादन में वृद्धि करने का जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है, तथापि इतना ही साध्य मानव के लिए पर्याप्त नहीं है। मानव के सर्वांगीण विकास के दो पहलू हैं। गोल्डस्मिथ की प्रसिद्ध उक्ति है—''वह देश विनाश की दिशा में गतिमान होता है, जहां संपन्नता तो बढ़ती है, किंतु मानवीयता का ह्रास होता है।'' यह अर्थपूर्ण चेतावनी इस विश्वविद्यालय को अपनी दिशा का चयन करने में सहायक सिद्ध हुई है।

विश्वविद्यालय इस बात से सतर्क है कि मानव एक विशेष प्रकार का प्राणी है। उसकी जड़ें धरती में अवश्य हैं, किंतु उसमें ऐसी अंतर्निहित क्षमता है, जिससे वह स्वर्ग की ऊंचाई प्राप्त कर सकता है। मानव में ऐसी कमजोरियां भी हैं, जो उसे निम्नतम स्तर तक ले जा सकती हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वर्तमान तकनीकी प्रगति की उपेक्षा हो। तकनीकी प्रगति का मानवीय जीवनमूल्यों के साथ सामंजस्य स्थापित करना ही समय की आवश्यकता है। यह विश्वविद्यालय इस दिशा में गतिशील है।

शिक्षा का उद्देश्य है 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का भाव मानव के व्यावहारिक जीवन में उतारना। उसकी अधोगति की दिशा बदलकर उसे उदात्तता से अलंकृत करना। इसी ध्येय की प्राप्ति के लिए 'चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय' की स्थापना हुई है। विश्वास है कि ग्रामीण परिवेश तथा चित्रकूट का पावन परिसर इस कार्य में हमारा सहायक सिद्ध होगा। इसके अतिरिक्त एक और भी आवश्यकता है। लुईस ममफोर्ड ने कहा था—''मानवीयता के समग्र आयामों से युक्त मानव के निर्माण के लिए संपूर्ण विश्व समाज का सहयोग जरूरी है।'' चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय भारत के सभी अंचलों से तथा विश्व भर की प्रतिभाओं से सक्रिय सहयोग पाने के लिए सदैव कार्यरत रहेगा।

लोक विज्ञान और प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहन

विश्वविद्यालय का विश्वास है कि बिना लोक शिक्षण के समाज के सभी घटकों की प्रगति में

आम नागरिकों का सक्रिय सहयोग संभव नहीं है। ग्रामीण पुनर्रचना का यह कार्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अतएव विश्वविद्यालय प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा को विशेष महत्त्व देता है। लोक शिक्षा का कार्य केवल लिखना, पढ़ना और गणित सिखाने तक सीमित नहीं होगा। सामान्य ज्ञान के साथ-साथ समस्याओं के निराकरण में लोगों को सक्रिय बनाया जाएगा। इसी से सर्वसाधारण लोगों में स्वावलंबन की चेतना जाग्रत् होगी। विश्वविद्यालय परिसर के 50 किलोमीटर के घेरे में बसी हुई आबादियों में इस दिशा में कार्य संपन्न किया जाएगा।

यह अनुभव सिद्ध है कि खाद, फसलचक्र, सिंचाई द्वारा उपजाऊ शक्ति में वद्धि, रोग निरोधक पद्धतियां आदि के हमारे परंपरागत अनुभवों के आधार पर आविष्कार हुए थे, जो आधुनिक पद्धतियों से कहीं अधिक लाभप्रद और स्थायी सिद्ध हो रहे हैं। कारण, वे प्रकृति से सुसंगत, सस्ते और सामान्य जनजीवन से जुड़े हुए हैं। इन पद्धतियों का आधुनिक लाभकर आविष्कारों के साथ मेल बिठाकर उनकी पुनर्स्थापना की आवश्यकता है। रासायनिक खादों के उपयोग, कीटनाशकों के फैलाव एवं बड़े-बड़े बांधों से भयानक दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं। विश्वविद्यालय लोक-विज्ञान और तकनीकी के पुनरुत्थान तथा उसकी उन्नति का प्रयास करेगा। इस दिशा में पिछले कुछ वर्षों में दीनदयाल शोध संस्थान द्वारा किए गए प्रयासों में सामान्य लोगों द्वारा कठिन समस्याओं के सस्ते समाधान ढूंढ़ निकालने की सृजनात्मक क्षमता के सुखद परिणाम देखने को मिले हैं।

आधुनिकता के आवरण में प्रगति के नाम पर अपनाई गई तकनीकी प्रक्रिया में स्थानीय प्रतिभाएं अप्रासंगिक हो गई हैं, क्षेत्रीय असंतुलन बढ़ रहा है, विषमता विकराल रूप धारण कर रही है, परावलंबन अनिवार्य सा हो गया है, बेकारी बेकाबू हो रही है एवं निराशा सर्वव्यापी बनी है। यह विश्वविद्यालय इन दुष्परिणामजनक प्रक्रियाओं में आवश्यक परिवर्तन कर समाज के सभी घटकों में आशा और विश्वास की पुनर्स्थापना करेगा।

इसके लिए निम्न कार्यक्रम अपनाए जाएंगे—

- विकास के लिए क्षेत्रीय इकाई को आधार बनाया जाएगा।
- क्षेत्र विशेष में कृषिजन्य, वनजन्य, भूगर्भजन्य तथा पशुजन्य उपलब्ध कच्चे माल का सर्वेक्षण किया जाएगा।
- चुने हुए क्षेत्र में परंपरागत रीति से जिन कच्चे मालों का उत्पादन हो रहा हो और अन्य प्रकार के कच्चे माल के उत्पादन की संभावना हो सकती हो, उनका उत्पादन बढ़ाने के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया जाएगा। कच्चे माल से अधिकतम एवं अनेक प्रकार का उत्पादन ही आर्थिक समृद्धि का सबल आधार हुआ करता है।
- विभिन्न प्रकार के उपलब्ध कच्चे माल को उत्तम प्रकार के तैयार माल के रूप में रूपांतरित करने की तकनीकी स्थानीय और क्षेत्रीय आधार पर विकसित की जाएगी।
- इसी दृष्टि से क्षेत्रीय युवक-युवतियों को समुचित प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जाएगी,

जिससे क्षेत्रीय प्रतिभाओं का विकास संभव हो।

- उत्पादित तैयार माल द्वारा क्षेत्रीय आबादी की आवश्यकताओं की पूर्ति को प्राथमिकता दी जाएगी। शेष तैयार माल निर्यात किया जाएगा। इसके लिए विपणन के प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था की जाएगी।
- इस उत्पादन के अतिरिक्त क्षेत्रीय आबादी की आवश्यकता–पूर्ति के लिए कौन–कौन सी वस्तुओं का कितनी–कितनी मात्रा में आयात करना आवश्यक है, इसका सर्वेक्षण किया जाएगा।
- इन आयातित वस्तुओं में से कौन–कौन सी वस्तुएं, कच्चा माल बाहर से मंगाकर, श्रेष्ठ स्तर की तथा आयातित माल की प्रतिस्पर्धा में टिक सकनेवाली वस्तुएं स्थानीय एवं क्षेत्रीय आधार पर उत्पादित की जा सकती हैं, इसकी जांच कर उनका उत्पादन स्थानीय आधार पर करने की व्यवस्था की जाएगी। उसके लिए क्षेत्रीय युवक–युवतियों के आवश्यक प्रशिक्षण की व्यवस्था होगी।
- जिन आयातित वस्तुओं का क्षेत्रीय आधार पर लाभकारी उत्पादन करना संभव नहीं है, उनके लिए साल भर में कितनी धनराशि क्षेत्र से बाहर जा रही है, इसका सर्वेक्षण किया जाएगा।
- कम–से–कम कितनी धनराशि बाहर से अर्जित करने के लिए उपयोगी वस्तुओं का क्षेत्रीय आधार पर अधिक मात्रा में उत्पादन तथा निर्यात करने का प्रबंध किया जाएगा। उत्पादित वस्तुओं की गुणवत्ता का विशेष ध्यान रखा जाएगा, जिससे विपणन में सुविधा तथा क्षेत्र के कारीगरों की चारों ओर कीर्ति बढ़ सके।
- इससे क्षेत्र का आर्थिक संतुलन बढ़ेगा। इस गतिविधि के फलस्वरूप क्षेत्रीय प्रतिभाएं विकसित होंगी, सबके लिए रोजगार उपलब्ध होंगे, क्षेत्रीय असंतुलन का निराकरण होगा, आर्थिक समृद्धि भी बढ़ेगी एवं स्वावलंबन का जीवन हर आबादी में खड़ा होगा। ग्रामीण युवक–युवतियों को रोजी–रोटी के लिए अपना गांव छोड़कर अन्यत्र जाने की जरूरत न पड़ेगी। गांव में संपन्नता के केंद्र बनेंगे। गांधीजी के ग्राम स्वावलंबन का यही रूप था।

□

राष्ट्र नवनिर्माण
देशानुकूल शिक्षा ही रास्ता

राष्ट्र नव-निर्माण का केंद्रबिंदु है मानव। वह अन्य जीवजगत् के समान प्रकृति प्रदत्त प्रवृत्तियों के अधीन नहीं है। स्वनिर्णय की उसमें क्षमता है। शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्मा का वह अविभाज्य समुच्चय है। इन चारों एकात्म तत्त्वों की उपलब्धि उसे नव-निर्माण का सामर्थ्य प्रदान करती है। उसकी यह विशेषता विनाशकारी भी बन सकती है और कल्याणकारी भी।

मानव का व्यक्तित्व द्वंद्वात्मक है। सदैव कार्यरत रहना मानव शरीर का गुणधर्म है, किंतु आत्मा अनुभूति प्रेरक है। शरीर भोगप्रवण अर्थात् वासनायुक्त है, किंतु आत्मा संवेदनशील है। वासना व्यक्ति को स्वकेंद्रित बनाती है, किंतु संवेदना, मानव को अन्यों को सुखी बनाने की प्रेरणा देती है। वासना व्यक्ति को भोग में लिप्त रहने के लिए ललचाती है, किंतु संवेदना उसे संयम सिखाती है। इस प्रकार प्रत्येक मानव में भौतिक एवं आध्यात्मिक अंतर्द्वंद्व चलता रहता है। व्यक्ति की सामाजिक प्रतिबद्धता तब तक साकार नहीं हो पाती, जब तक मानव अपने को एकात्म नहीं बना लेता। क्या उचित है और क्या अनुचित है, यह समझ पाने के लिए हर मानव को विवेकशीलता प्राप्त है; किंतु व्यावहारिक जीवन में वह बहुत कम प्रभावी होती है। मानव के मन और बुद्धि का झुकाव भौतिकता की ओर हुआ तो वह अवश्यंभावी विनाश की दिशा में गतिशील होता है, किंतु मन और बुद्धि केवल आध्यात्मिकता में ही लीन हुई तो मानव अव्यावहारिक बन परिवार, व्यवसाय, समाज तथा मानव मात्र के लिए निरुपयोगी बनता है।

शिक्षा की अनिवार्यता

उपभोग शरीर के अस्तित्व का आधार है। समाज का अखंड प्रवाह अर्थात् चिरंतनता उसी पर निर्भर है। आत्मा के 'सर्वभूत हितेरतः' के लक्ष्य सिद्धि का माध्यम भी शरीर ही है। शरीर के बिना आत्मा निष्क्रिय रहती है। अतः भौतिकता या आध्यात्मिकता की अति न व्यक्ति के लिए उपयोगी है, न समाज के लिए हितावह। दोनों में संतुलन अर्थात् परस्पर-पूरकता मानव जीवन की आवश्यकता है। मानव जीवन में सामंजस्य प्रस्थापित करने के लिए संस्कार एवं शिक्षा

परिपूर्ण जीवनदृष्टि के लिए लोक-शिक्षण अभियान का प्रारूप। मंथन, अक्तूबर-दिसंबर, 1995

की अनिवार्यता है। गर्भाधान से ही संस्कार की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। उस प्रसंग पर माता-पिता की मानसिकता का गर्भ पर परिणाम होता है। मां की मनोभावनाएं गर्भ काल में गर्भस्थ शिशु पर प्रभाव डालती रहती हैं। जन्मोपरांत परिवार में उपलब्ध वातावरण के संस्कार शिशु ग्रहण करता है। इस काल में उसकी श्रवण शक्ति तथा दृष्टि बहुत पैनी होती है। अतः उसकी वृत्ति दृष्टिगत दृश्यों और सुनी हुई बातों के अनुसार विकास पाती है। इसकी कल्पना परिवारजनों को देना आवश्यक है। शिशु की अनौपचारिक शिक्षा परिवार में उपलब्ध वातावरण के माध्यम से अपने आप होती रहती है। उसके उपरांत व्यापक जीवनदृष्टि तथा शनैः-शनैः व्यक्तिगत, पारिवारिक, व्यावसायिक एवं सामाजिक प्रगति की प्रक्रिया में सामंजस्य तथा परस्परपूरकता के व्यवहार के पाठ पढ़ने के लिए वह विद्यालय के सामूहिक जीवन में प्रवेश पाता है, अतः शिक्षा के माध्यम से व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की समुचित व्यवस्था करना समाज का दायित्व है। ग्रामीण परिसर में इसकी व्यवस्था करना समाजशिल्पी परिवार का काम है।

शिक्षा की उपेक्षा

स्वतंत्र भारत में शिक्षा ही सर्वाधिक उपेक्षित विषय है। देश के नेतृत्व के दिमाग में शिक्षा का स्पष्ट चित्र दिखाई नहीं देता। दूसरों के मत्थे दोष मढ़कर अपनी कमजोरी छिपाने का काम चल रहा है। शिक्षा से संबंधित हर सभा, सम्मेलन, समारोह में मैकाले को अभी भी कोसा जाता है। लेखन सामग्री में भी वह ही ध्वनि प्रगट होती है। मैकाले अंग्रेजी हुकूमत का अभिन्न अंग था। भारत में अंग्रेजों का प्रभुत्व सदैव बना रहे, ऐसी शिक्षा की रचना करना उसका दायित्व था। उसी दृष्टि से उसने शिक्षा पद्धति की रचना की थी। इससे भिन्न अपेक्षा उससे हम कैसे कर सकते थे? आजादी की अब अर्धशताब्दी पूर्ण हो रही है। इस लंबे काल में हमने शिक्षा के क्षेत्र से मैकाले द्वारा खड़ी की गई शिक्षा पद्धति को क्यों नहीं हटाया? कमीशन नियुक्त किए, कमेटियां बनाईं, प्रस्ताव पारित किए, शिक्षा में आमुल-चूल परिवर्तन की घोषणाएं कीं और लंबे-लंबे भाषण दिए। किंतु व्यावहारिक रूप से प्रचलित शिक्षा पद्धति में परिवर्तन नहीं किया गया।

विद्यालयों में छात्रों को अध्यापक वर्ग पढ़ाता है। उनका छात्रों व अभिभावकों से सदैव संबंध बनता है। वे छात्रों की पृष्ठभूमि एवं मानसिकता समझ सकते हैं। उन्हें अवसर दिया गया तो वे प्रयोगात्मक पद्धति से देश के लिए उपयुक्त शिक्षा पद्धति का आविष्कार कर सकते हैं। इस दिशा में नेतृत्व ने कभी सोचा ही नहीं। अध्यापकों को वेतनभोगी वर्ग मात्र माना जा रहा है। उनकी प्रतिष्ठा की किसी को चिंता नहीं है। अतः उनकी भी मानसिकता वेतनभोगियों की ही बनी है। शिक्षा को राष्ट्र नवनिर्माण का माध्यम मानने के स्थान पर आजीविका का साधन मात्र मानने का यह दुष्परिणाम है। प्रचलित शिक्षा पद्धति देश की नई पीढ़ी को आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्भरता के स्थान पर परजीवी एवं चाकरी-वृत्ति की शिकार बना रही है। कोई देश कभी भी सभी को नौकरी नहीं दे सकता। अतः वर्तमान विद्यालय बेकारी, अशांति एवं दिशाहीनता

बढ़ानेवाले केंद्र बने हैं। समाज शिल्पी परिवारों को अपने-अपने ग्रामसमूह में शिक्षा की भी नवरचना करनी होगी।

लाभार्जन में न लगें विद्यालय

हर एक मानव का जीवन समाज से जुड़ा हुआ है। ग्राम, मोहल्ला, नगर, जिला, प्रदेश एवं देश इसी जुड़ाव के प्रतीक हैं। शिक्षा वह विधि है, जो छात्र-छात्राओं को समाज के प्रति उत्तरदायी बनाती है। अतः समाज के प्रत्येक बालक एवं बालिका को किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना समान शिक्षा उपलब्ध कराने पर ही समाज का भविष्य निर्भर है। दुर्भाग्य है कि स्वतंत्र भारत में इसके विपरीत कार्य हो रहा है।

देश में अनेक प्रकार के विद्यालय चल रहे हैं। कुछ विद्यालयों में प्रति छात्र प्रतिमाह तीन हजार रुपयों से भी अधिक शुल्क लिया जाता है। क्या साधारण नागरिकों के लिए ऐसे विद्यालयों में अपनी संतान को पढ़ाना संभव है? ऐसे विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त लोग समाज के प्रति उत्तरदायी बन सकते हैं? प्रचलित शिक्षा द्वारा बचपन से ही समाज में विभेद का बीजारोपण किया जा रहा है। महंगी शिक्षावाले विद्यालय चलाने की होड़ लगी हुई है। वे उपयुक्त शिक्षा के नहीं, पर्याप्त कमाई के माध्यम बने हैं। छोटे-छोटे नगरों तक ऐसी शैक्षणिक संस्थाओं का जाल फैलता जा रहा है। ऐसे महंगे विद्यालयों में अपनी संतान को पढ़ाना प्रतिष्ठा का विषय बना है। नगरपालिकाओं या जिला परिषदों द्वारा चलाए जा रहे विद्यालय केवल निर्धन लोगों के बच्चों के लिए ही हैं। प्रचलित शिक्षा समाज में विभेद एवं अलगाव बढ़ाने का काम कर रही है। इसी कारण शिक्षित युवक-युवतियां समाज के प्रति अपना उत्तरदायित्व अनुभव नहीं करते। अतः हमें ग्राम-ग्राम में भेद रहित समान शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी।

पढ़ाई के साथ कमाई

राष्ट्र नव-निर्माण में जितना समान शिक्षा का महत्त्व है, उतना ही व्यावसायिक एवं औद्योगिक प्रशिक्षण का भी महत्त्व है। इसका ध्यान न रखा गया तो समाज में विषमता एवं अभाव की विभीषिका राष्ट्र का भविष्य बिगाड़ेगी। व्यावसायिक एवं औद्योगिक प्रशिक्षण के लिए स्वतंत्र प्रशिक्षण केंद्र चलाने आवश्यक हैं, किंतु वे उच्चतम तकनीकी के लिए ही निर्धारित न हों। प्राथमिक प्रशिक्षण की व्यवस्था किशोरावस्था से ही प्रारंभ की जानी चाहिए। कारण, अपने समाज का बहुत बड़ा प्रतिशत अत्यधिक गरीब है। उनके पास न कृषि योग्य जमीन है, न अन्य प्रकार की कोई जायदाद ही है। यदि उनकी जायदाद है तो वह केवल उनकी संतान। उसी के द्वारा वे अपनी आय में वृद्धि कर पाते हैं। वे बिना शुल्क के विद्यालयों में भी अपने दस-ग्यारह साल के बच्चों को पढ़ा नहीं सकते। इस आयु के बच्चे नित्यप्रति कुछ-न-कुछ कमाकर अपने परिवार के लिए सहायक बनते हैं। अतः इन अभावग्रस्त लोगों के बच्चे दस-ग्यारह साल के होते ही पढ़ाई छोड़ देते हैं। इस कारण सबके लिए शिक्षा उपलब्ध करना असंभव हो रहा है।

विराट् पुरुष

समान शिक्षा के साथ-साथ विद्यालय के परिसर में ही पढ़ाई के साथ कमाई के साधन भी जोड़ना आवश्यक है। तभी गरीब-से-गरीब लोगों की संतान समान शिक्षा का लाभ उठा सकेगी। राष्ट्र नव-निर्माण की दिशा में यह नितांत आवश्यक कदम है।

परिवार एवं विद्यालय परस्पर-पूरक

नागरिकों की नूतन संतान विभिन्न विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करती है। शिक्षा पानेवाले नन्हे-नन्हे नागरिक अपने-अपने परिवारों के भावी मुखिया तथा समाज के सक्रिय घटक बननेवाले हैं। अतः अभिभावक, अध्यापक तथा सामाजिक कार्यकर्ता नूतन संतान के सर्वांगीण विकास के लिए समान रूप से जिम्मेदार हैं। इन तीनों की परस्परपूरकता ही नई पीढ़ी को भविष्य की दृष्टि से सुयोग्य नागरिक बना सकती है। फलस्वरूप हरेक विद्यालय तीनों की रुचि का केंद्र बनना चाहिए। अन्यथा छात्र-छात्राएं दिशाहीन तथा समाज गतिशून्य बनता है।

मानव अपने जीवन को अधिक सुखमय बनाने में निरंतर लगा रहता है। परिणामस्वरूप जीवन के लिए अधिकाधिक सुविधाजनक साधन उपलब्ध हो रहे हैं। इन साधनों की खोज कहीं भी हुई हो, वे संसार के सभी समाजों में प्रचलित होते ही हैं। इन नूतन साधनों का असर रहन-सहन, खान-पान, बोल-चाल तथा जीवन दृष्टि पर होता है। यह परिवर्तनशील प्रक्रिया सतत चलती रहती है। इस परिवर्तनशील प्रक्रिया में अपनी अखंड अनुभव परंपरा से प्राप्त चिरंतन जीवन मूल्य, जो मानव मात्र के अस्तित्व एवं सम्यक् उन्नति के लिए आवश्यक है, लुप्त न हो इसके लिए विशेष सावधानी बरतना नितांत आवश्यक है। यह मूलभूत कार्य पारिवारिक एव विद्यालयीन जीवन से ही कार्यान्वित करना जरूरी है। कारण, वहां ही आगामी जीवन के लिए नई पीढ़ी पाठ पढ़ती है।

नई पीढ़ी ही सामाजिक नवरचना की अग्रदूत है। उसे ही भविष्य निर्माण करने की दृष्टि से कर्तृत्ववान बनाना चाहिए। विश्व में हो रही उथल-पुथल की दृष्टि से अध्ययनशील अध्यापक-अध्यापिकाओं से मार्गदर्शन पाकर स्वयं को सक्षम बनाने में जुटी हुई नई पीढ़ी अप्रत्यक्ष रूप से अपने परिवारों में समयानुकूल परिवर्तन का माध्यम बन सकती है। इसमें अध्यापन में संलग्न महिला-पुरुषों का विशेष योगदान अपेक्षित है। स्वभावतः अपनी संतान के विकास में गहरी रुचि होने के कारण अभिभावकगण अपने बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के लिए पारिवारिक जीवन में अनुकूल वातावरण निर्माण कर विद्यालयों के सहकारी बन सकते हैं। इस प्रकार नई पीढ़ी के विकास के साथ-साथ समाज में नवरचना का कार्य सुगमता से हो सकता है। इसी से स्पष्ट है कि सामाजिक नवरचना में अध्यापन में संलग्न महिला-पुरुषों का सर्वाधिक महत्त्व है, किंतु स्वतंत्र भारत में इसकी महत्ता अनुभव ही नहीं की गई। अन्यथा देशव्यापी विद्यालय एवं शिक्षक वर्ग राष्ट्र नव निर्माण के केंद्र सिद्ध होते और देश की पर्याप्त उन्नति हो गई होती। समाजशिल्पी परिवारों को इस दृष्टि से बहुत जिम्मेदारी के साथ कार्य करना होगा।

□

मानवीय शिक्षा पद्धति
सामाजिक संस्कारों का आधार

भारत विश्व का सर्वाधिक पुरातन सभ्यता संपन्न देश है। सभी प्रकार के प्राकृतिक संसाधन एवं विविधता युक्त जनजीवन अपने राष्ट्र की अनोखी धरोहर है। आत्मतत्त्व के आधार पर एक-दूसरे का हित संवर्धन करनेवाली संस्कृति अपनी मातृभूमि की गोद में जनमी और पनपी है। अपना देश विभिन्न प्रकार की जलवायु से युक्त है। तदनुसार सामाजिक जीवन विभिन्न रूपों में विकसित हुआ है। इसके बावजूद उनमें परस्परपूरकता बनी रही। अपनी संस्कृति की यह विशेषता है। विभिन्न मेलों और मंदिरों में वह अनुभव होती है। अपनी सनातन संस्कृति यथास्थितिवादी नहीं रही। उसकी गुणग्राहकता तथा गतिशीलता अनंत-काल से चले आ रहे अखंड प्रवाह का मर्म है।

गतिशीलता में अवरोध

किंतु काल की गति, मानव मन की कमजोरी तथा सदियों तक परायी हुकूमत के अस्तित्व ने अपनी सांस्कृतिक गतिशीलता में अवरोध उत्पन्न किया है। फलस्वरूप सामाजिक जीवन अनेक विकृतियों का शिकार बना है। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की एकात्म जीवन-दृष्टि लुप्त हो गई है। ऊंच-नीच और छूत-अछूत जैसी अमानवीय कुप्रथाएं चल पड़ी हैं। सामाजिक सुव्यवस्था के लिए निर्मित व्यवसायों पर आधारित जाति व्यवस्था को स्वार्थसिद्धि का साधन बनाया गया है। अलगाव की विभीषिका इतनी व्यापक बनी है कि एक-दूसरे के बिना अपूर्ण महिला-पुरुषों में भी भेदभाव पनपा है। मानवीय संस्कारों का केंद्र पारिवारिक जीवन संकुचितता का गढ़ बना है। कौटुंबिक जीवन में भी व्यक्तिगत स्वार्थ ने प्रवेश पाया है। अतः मानव मानवीयता से ही वंचित हो रहा है।

आजादी की लड़ाई लड़ते हुए भी उपर्युक्त अवनति की गति रोकने तथा मानवीय मूल्य पुनर्स्थापित करने के सामाजिक स्तर पर प्रयास होते रहे हैं, किंतु आजादी पाने के बाद

सामाजिक आधार पर जनजीवन के युगानुकूल नवरचना करने के काम की उपेक्षा हो रही है। गैर-राजनीतिक स्तर पर सामाजिक सुधार के कार्यों की परंपरा ही मिट गई है।

शिक्षा की दिशाहीनता

नई पीढ़ी को शैशवकाल से ही सामाजिक जीवन-दृष्टि से संस्कारित करना देश की प्राथमिक आवश्यकता है। इसकी पूर्ति पारिवारिक संस्थाओं द्वारा ही संभव है। अतः पारिवारिक जीवन की तदनुसार नवरचना के कार्य राष्ट्र जीवन के भव्य-भवन की नींव भरते हैं। साथ ही नई पीढ़ी के लिए अधिक व्यापक वातावरण में सामूहिक जीवन के पाठ पढ़ाने के लिए विद्यालयों की भी पुनर्रचना करना आवश्यक है। केवल लिखना, पढ़ना तथा हिसाब करने की कला सिखाना या परीक्षाएं पास कराकर उपाधियां वितरित करना विद्यालयों का लक्ष्य नहीं हो सकता। विभिन्न परिवारों से तथा विविध पृष्ठभूमि से विद्याध्ययन के लिए आए समाज के नवोदित घटकों को आत्मीयता के साथ परस्परपूरकता का अभ्यास कराने का भी दायित्व निभाना विद्यालयों का ही कर्तव्य है। सामाजिक जीवन की उपर्युक्त दोनों आधारभूत इकाइयां (परिवार एवं विद्यालय) मिलकर जीवन के प्रारंभिक काल से ही नई पीढ़ी में सामाजिक कर्तव्य पूर्ति की वृत्ति विकसित नहीं करेंगी तो न सामाजिक जीवन स्वस्थ हो पाएगा, न शासन सुशासन बन सकेगा और न ही राष्ट्र की उन्नति संभव होगी। आजादी की बीती अर्ध-शताब्दी इसी तथ्य को सिद्ध कर रही है। गलत दिशा में चली इस शिक्षा व्यवस्था को सुधारना आसान नहीं है, किंतु इसके बिना भारत के उज्ज्वल भविष्य की संभावना भी नहीं है।

स्वावलंबन के आधार पर आजीविका के तीन मार्ग उपलब्ध हैं—कृषि, उद्योग एवं व्यापार। इनमें स्वरोजगार उपलब्ध कराने की असीम क्षमता है। उपयुक्त प्रक्रिया से नई पीढ़ी में स्वरोजगार की रुचि बढ़ेगी। उस रुचि को बढ़ाने तथा अपनाने की प्रेरणा देने का काम अध्यापक-अध्यापिकाएं करेंगी। इनमें सक्रिय भाग लेनेवाली छात्र-छात्राओं को काम के अनुसार पारिश्रमिक भी मिले, पढ़ाने के साथ कमाई का भी क्रम व्यावहारिक धरातल पर साकार हो, तभी नौकरी के स्थान पर स्वरोजगार की वृत्ति पनपेगी। निम्न बिंदुओं पर विचार आवश्यक है—

विचारणीय विषय

- पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापक-अध्यापिकाओं के वेतनमान के संबंध में विशेष विचार करना अति आवश्यक है। कारण, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी अपनी सरकारों ने (केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों ने) इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं समझी, यह दुर्भाग्य का विषय है।
- पूर्व प्राथमिक तथा प्राथमिक कक्षाओं की पढ़ाई नई-पीढ़ी के भावी-जीवन की आधारशिला है। शिशु एवं बालक-बालिकाएं विभिन्न परिवारों के अलग-अलग वातावरण से पाठशाला पहुंचते हैं। वे सामाजिक वातावरण से पूर्णतः अनभिज्ञ रहते हैं। वे अपने पारिवारिक वातावरण

से ही अभ्यस्त रहते हैं। विशेष रूप से बड़ों से प्यार की अपेक्षा करना उनका स्वभाव होता है।

- इन बच्चों को, अपने पारिवारिक वातावरण से कटकर एकदम नए वातावरण में पहुंचे हैं, ऐसी अनुभूति न होने देने की कठिन कार्य की जिम्मेदारी अध्यापन में संलग्न महिला-पुरुषों को निभानी होती है। इन कोमल कलियों को सहजता से पाठशाला के वातावरण में रममाण करना आत्मीयतापूर्ण कुशलता का काम है। यह कार्य कक्षा में उपस्थित प्रत्येक शिशु व बालक-बालिकाओं की ओर व्यक्तिगत ध्यान दिए बिना संभव नहीं होता।
- पढ़े-लिखों को पढ़ाने के मुकाबले पढ़ाई से पूर्णतः अनभिज्ञ बच्चों को क ख ग से पढ़ाना प्रारंभ करना अत्यधिक कठिन कार्य है और पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक कक्षाओं में यह भी काम करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त बच्चों की गलत आदतों को सुधारना व अच्छी आदतों को अपनाने के लिए उन्हें तैयार करना भी कम कठिन काम नहीं है। इस काम को भी उन्हें ही करना पड़ता है।
- इसके अतिरिक्त एक और अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य शिक्षा-पद्धति में जोड़ना होगा, जिसकी ओर स्वतंत्र भारत की शिक्षा-पद्धति ने आज तक ध्यान नहीं दिया है। अपने देश के मूलगामी विचारक स्व. बिनोवा भावे ने इसी ओर ध्यान दिलाया है। उनका कहना है, ''विचारों का प्रत्यक्ष जीवन से नाता टूट जाने से विचार निर्जीव हो जाते हैं और जीवन विचार-शून्य बन जाता है। मनुष्य घर में जीता है और मदरसे में विचार सीखता है, इसलिए जीवन और विचार का मेल नहीं बैठता। इसका उपाय यह है कि एक ओर से घर में मदरसे का प्रवेश होना चाहिए और दूसरी ओर से मदरसे में घर घुसना चाहिए। समाजशास्त्र को चाहिए कि शालीन कुटुंब निर्माण करे और शिक्षण शास्त्र को चाहिए कि कौटुंबिक पाठशाला स्थापित करे।'' ये दोनों महत्त्वपूर्ण कार्य करने का दायित्व आ पड़ता है पूर्व प्राथमिक व प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापक-अध्यापिकाओं के कंधों पर।
- इन्हीं विचारों को हम और एक पहलू से देखें तो यह विषय अधिक स्पष्ट होगा। शिशु व नन्हे-नन्हे बालक-बालिकाओं को आप क्या पढ़ा रहे हैं, इस पर विशेष ध्यान दें, यह उनकी क्षमता के परे होता है। कारण, वे पढ़ाई जानेवाली बातों का अर्थ समझने की अवस्था में नहीं होते। यद्यपि वे पढ़ाई गई बहुत सी बातों को कंठस्थ कर लेते हैं। उनका विशेष ध्यान रहता है कि घर व पास-पड़ोस के बड़े लोग तथा पाठशाला में पढ़ानेवाले शिक्षक व शिक्षिकाएं कैसे बोलते हैं, कैसे चलते हैं, कैसे पेश आते हैं, आदि बातों की ओर! वे बड़ों की नकल करने में रुचि लेते हैं, यह सब देखने को मिलता है। बच्चों को अपने जूते पहनने के स्थान पर बड़ों के जूते पहनने में अधिक मजा आता है। उनके व्यक्तित्व विकास में नकल करने की वृत्ति का अधिक योगदान होता है। अतः बच्चों की इस आयु में हो रही विकास प्रक्रिया में माता-पिता अनभिज्ञता के कारण आचरण करते समय आवश्यक सावधानी नहीं बरतते। समाज के प्रतिष्ठा प्राप्त लोग भी इस बात को नहीं समझते। इस कारण समाज की पुनर्रचना के लिए आवश्यक कदम के नाते पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक कक्षाओं को पढ़ानेवालों को ही बच्चों के माता-पिताओं

का भी मार्गदर्शन करना पड़ता है। बच्चों के परिवारों में चल रही गतिविधियों को उचित दिशा प्रदान करने का भी दायित्व निभाना होता है। पाठशाला एवं बच्चों के परिवारों में सम-समान चिंतन व आचरण की प्रक्रिया प्रचलित हो, इसकी कुशलता के साथ व्यवस्था करना भी उन्हीं का काम है।

- यह कार्य साधारण नहीं, बहुत कष्टसाध्य है। समाज की समयानुकूल पुनर्रचना करनी है तो प्राथमिक पाठशालाओं के अध्यापक एवं अध्यापिकाओं के बिना यह काम अन्य किसी के लिए संभव नहीं है। अतः उसका अधिकांश समय इसी कार्य में बीतेगा। इस कारण इनका वेतनमान कहिए या मानधन कहिए—वह मानसिक समाधान देनेवाला तथा परिवार की साधारण आवश्यकताएं पूर्ण करनेवाला हो, इसका ध्यान रखना नितांत आवश्यक है।
- किंतु शिक्षा-पद्धति के इस अति महत्त्वपूर्ण पहलू की ओर ध्यान देने के लिए किसी भी नीति-निर्धारक को अभी तक फुरसत नहीं मिली। अर्थात् सामाजिक जीवन की नींव मजबूत बनानेवालों की उपेक्षा कर राष्ट्र की हानि की जा रही है।

पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक कक्षाओं को पढ़ानेवालों को समाज में भी विशेष मान व महत्त्व नहीं मिलता। कक्षा में सतत परिश्रम करनेवालों व बच्चों के परिवारों से भी संपर्क रखनेवालों को वेतनमान निम्नतम रखा हुआ है। किंतु प्रवक्ता के नामाभिधन से विभूषित, केवल पढ़ाई के दिन दो-तीन घंटे भाषण देने मात्र की औपचारिकता निभानेवालों के लिए दो, तीन, पांच और दस हजार तक मासिक वेतनमान निर्धारित हैं। समाज में संपन्नता ही प्रतिष्ठा की परिचायक बनी है। अतः यह प्रवक्ता वर्ग प्रतिष्ठितों व बुद्धिमानों की श्रेणी में माना जाता है। प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ानेवाले आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से निम्न श्रेणी में गिने जा रहे हैं।

यदि हमें शिक्षा को व्यक्तिगत जीवन, पारिवारिक जीवन तथा राष्ट्रीय जीवन में परस्परपूरक निर्माण अथवा राष्ट्र नव-निर्माण का माध्यम बनाना है तो उपर्युक्त संदर्भ में गंभीर विचार कर शिक्षा-नीति का पुनर्निर्धारण करने का साहसपूर्ण कदम उठाना होगा।

□

अनुभव परंपरा
शिक्षा व विकास की मार्गदर्शक

हमारी अनुभव परंपरा सर्वाधिक पुरानी है। इस कारण नवस्वतंत्र भारत के भविष्य निर्माण की दृष्टि से हमारी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मार्गदर्शक हो सकती थी। सैकड़ों साल गुलामी में रहने के बाद स्वतंत्र भारत के विकास में इस धरोहर का विशेष उपयोग होता, किंतु स्वतंत्र भारत के नेतृत्व ने इसका ध्यान नहीं रखा। आधुनिक काल के नवोदित देशों की जगमगाहट से हमारा नेतृत्व अधिक प्रभावित हुआ। उनकी जीवन-रचना का अध्ययन किए बिना, उनकी तकनीकी प्रगति के मूल में छिपी आकांक्षाओं को समझे बिना, उनके अनुकरण से होनेवाले दूरगामी परिणामों का अनुमान लगाए बिना, उन्हीं की राह पर हम चल पड़े। पचास साल बाद निष्पक्ष विचारकों को अनुभव हो रहा है कि हम न घर के रहे, न घाट के।

इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि हमें दूसरों की अच्छी बातें अपनानी नहीं चाहिए। मानव-जीवन में आदान-प्रदान की प्रक्रिया अनंत काल से चली आ रही है। वह चलती ही रहेगी और चलनी भी चाहिए। किंतु दूसरों से क्या अपनाना है और क्या नहीं अपनाना, इसका निर्णय हमें अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की कसौटी पर कसते हुए ही करना चाहिए था। उसी को हमने अपनी नजर से ओझल कर रखा है।

यह सत्य है कि पश्चिमी देशों में हुए वैज्ञानिक एवं तकनीकी के विस्मयकारी आविष्कारों ने विशाल विश्व को एक परिवार के रूप में समेट दिया है। दुनिया का कोई भाग न एक-दूसरे से दूर रहा है और न अछूता। इसके बावजूद मानव-मानव में दूरी बढ़ती ही जा रही है। आर्थिक समृद्धि ही मानव विकास का मापदंड बनी है। फलस्वरूप मानव मानवीयता से वंचित हो रहा है।

इतिहास पूर्व की बात नहीं है। सातवीं शताब्दी की घटना है। उन दिनों राजतंत्र होते हुए भी देश में समाज खुशहाल था। चीनी यात्री ह्वेनत्सांग उन दिनों भारत के प्रवास पर था। यहां का प्रचलित जनजीवन देखकर वह आश्चर्यचकित हुआ। आबादियों में उसे आम लोगों का भी जीवन सुखानंदपूर्ण दिखाई दिया। उसे कहीं भी दीन-हीन व्यक्ति नहीं मिला। आबादियों के निवासियों में परस्पर-पूरकता का आत्मीयतापूर्ण आचरण पाकर वह बहुत प्रभावित हुआ। घरों में ताले लगाने की प्रथा उसे नजर नहीं आई। परस्पर विश्वास के जीवन को देखकर वह विस्मित

शैक्षणिक अनुसंधान एवं विकास केंद्र चित्रकूट प्रकल्प की रूपरेखा। डीआरआई दस्तावेज, 2001

हुआ। अपनी डायरी में उसने इन सब बातों का उल्लेख किया है।

वर्तमानकालीन वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के शिखर पर पहुंचे देशों में भी उपर्युक्त सुख समाधान के जनजीवन का दर्शन दुर्लभ है। ऐसी स्थिति में हमें कौन सा नमूना सम्मुख रखकर प्रगति की दिशा में गतिमान होना चाहिए? विज्ञान एवं तकनीकी की उपलब्धियों का हमें लाभ अवश्य उठाना चाहिए, किंतु अपनी मानवीय पृष्ठभूमि खोकर नहीं।

भारत में अंग्रेजों का राज काफी लंबे काल तक रहा। वे अव्वल दर्जे के स्वार्थी व चालाक शासक थे। अपने देश इंग्लैंड को समृद्ध बनाने के लिए वे भारत की संपदा का अपहरण करने में लगे थे। इन सब बातों के लिए ही उन्होंने भारत की प्रशासनिक व्यवस्था का निर्माण किया था। नई पीढ़ी की ऊर्जा का अपनी सत्ता के लिए पूरा लाभ उठाने हेतु उन्होंने विशेष रूप से शिक्षा पद्धति की रचना की थी।

नवस्वतंत्र भारत के भविष्य निर्माण में अंग्रेजों द्वारा निर्मित शासन प्रणाली न तो उपयुक्त हो सकती थी और न ही शिक्षा-पद्धति। इस वस्तुस्थिति की ओर न प्रारंभिक नेतृत्व ने ध्यान दिया और न तदनंतर शासकों ने। स्वतंत्र भारत का पचास साल का काल बीत गया। फिर भी प्रशासनिक तंत्र तथा शिक्षा-पद्धति वही चलाई जा रही है, जिसके निर्माता विदेशी शासक अंग्रेज थे। वही प्रशासनिक ढांचा स्वतंत्र भारत का शासन चला रहा है या देशी शासक? यह खोज का विषय है।

मानव ही निरंकुश

दिन-प्रतिदिन पर्यावरण बिगड़ने से, प्रदूषण के निरंतर बढ़ रहे प्रकोप से तथा ओजोन की परत क्षतिग्रस्त होने से सभी जागरूक नागरिक चिंताग्रस्त हैं। इन समस्याओं से छुटकारा पाने का उपाय किसी को सूझता दिखाई नहीं देता। अतः उपर्युक्त समस्याएं मानव मात्र के अस्तित्व के लिए खतरा बन रही हैं। आश्चर्य इस बात का है कि इन खतरों का निर्माता स्वयं मानव ही है।

अपने इस विशाल विश्व में मानव अन्य असंख्य प्राणियों के साथ अनंत काल से रहता आ रहा है। इतने लंबे काल में उपर्युक्त विनाशकारी परिस्थिति कभी उत्पन्न नहीं हुई। वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के इसी युग में यह प्रलयंकारी अवस्था क्यों आ पहुंची? मानव सहित सभी प्राणियों को प्रकृति ने शरीर उपलब्ध कराया है। शरीर का अस्तित्व सर्वथा उपभोग पर निर्भर है। उपभोग सामग्री का स्रोत है प्रकृति। मानव को छोड़कर अन्य सभी प्राणियों की उपभोग क्षमता प्रकृति द्वारा नियंत्रित है। उसका अतिक्रमण करने की उन प्राणियों में न चाह होती है और न क्षमता। अतः अन्य प्राणी अपने उपभोग के लिए न पर्यावरण बिगाड़ पाते हैं, न प्रदूषण फैला सकते हैं और न ही प्राकृतिक संसाधनों का दुरुपयोग कर सकते हैं।

मानव ही एक ऐसा प्राणी है, जिसकी उपभोग लालसा की कोई सीमा नहीं है। उस पर किसी का नियंत्रण भी नहीं है। इसी कारण उसमें लालचवश पर्यावरण बिगाड़ने, प्रदूषण फैलाने तथा प्राकृतिक संसाधनों का दुरुपयोग करने का दुस्साहस होता है। इन खतरनाक बातों पर नियंत्रण करने तथा परोपकारी बनने की क्षमता भी उसी में है। मानव एक अजब प्राणी है। वह भयानक

भस्मासुर भी बन सकता है और करुणा की प्रतिमूर्ति भगवान बुद्ध भी। मानव की इस परस्पर विरोधी क्षमता को समझे बिना उपर्युक्त समस्याओं का न निराकरण होगा और न मानव को मानवीयता से विभूषित करना संभव होगा।

मानव की विशेषता

दुनिया भर के प्राणियों से मानव प्राणी शरीर छोड़कर सर्वथा भिन्न है। शारीरिक गुणधर्मानुसार मानव भी उपभोग प्रवण है। इसके अतिरिक्त उसे कल्पनाशक्ति-संपन्न मन, योजकता प्रेरक बुद्धि, असंख्य घटनाओं की संग्राहक स्मृति तथा संवेदनशील आत्मा प्राप्त है। इन अद्वितीय गुण-संपदाओं का पुंज ही है मानव का एकात्म-व्यक्तित्व।

मानव की अंतर्निहित शक्ति

गुण संपदा का धनी होते हुए भी मानव का नवजात बच्चा अन्य प्राणियों के नवजात बच्चों की तुलना में सर्वथा असहाय एवं पूर्णत: परनिर्भर होता है। माता या परिवारजनों द्वारा पालन-पोषण के अभाव में वह जी भी नहीं सकता, किंतु उसमें अंतर्निहित क्षमता इतनी अधिक होती है कि अनुकूल वातावरण पाकर वह बड़े से बड़ा शूरवीर, उच्चतम कोटि का कलाकार या विस्मयकारी आविष्कारक बन सकता है। आवश्यकता होती है प्रारंभ से ही मानव संतान को मानवीय वातावरण उपलब्ध कराने की। अन्यथा वह अंतर्द्वंद्व के वशीभूत होकर मानवीयता के मार्ग से भटक सकता है। उसकी क्षमताओं का अनिष्ट कामों में अपव्यय होने की संभावना होती है।

मानव का अंतर्द्वंद्व

मानव व्यक्तित्व में दो परस्पर विरोधी प्रेरणाएं कार्यरत हैं। शरीर उपभोग प्रवण है। फलस्वरूप उसमें लालच की ललक होती है। उपभोग की असीम सामग्री का संग्रह करना लालच का स्वभाव है। दूसरों के पास दिखी आकर्षक वस्तु झपटने तक का लालच व्यक्ति को प्रवृत्त करती है।

किंतु उसका दूसरा अभिन्न अंग आत्मा का स्वभाव सर्वथा भिन्न है। वह संवेदनशील है। परपीड़ा से द्रवित होती है। अन्यों को पीड़ामुक्त करने हेतु वह सबकुछ न्योछावर करने के लिए तत्पर हो जाती है। किंतु लालच उसमें बाधक बनता है। मानव इसी द्वंद्व के भंवर में उलझता है। मन और बुद्धि लालच की ओर झुकी तो मानव दानव बनता है और मन एवं बुद्धि आत्मा से प्रेरित हुई तो मानव परोपकारी बनता है। अच्छी या बुरी क्रिया होती है शरीर द्वारा ही। शरीर को प्रेरणा प्रदान करनेवाले मन-मस्तिष्क पर मानव का सदाचारी या दुराचारी बनना निर्भर करता है।

मानव ध्येयवादी

अन्य प्राणियों के सम्मुख जीवन का कोई उद्देश्य नहीं होता। खाना-पीना तथा संतानोत्पत्ति

करना मात्र उनके जीवन की सीमा है। मानव का जीवन उपर्युक्त तीनों प्रक्रियाओं तक सीमित नहीं है। मानव को मन, बुद्धि तथा आत्मा ने सृजनशील एवं कर्तृत्ववान बनाया है। मानव की अंतर्निहित संवेदनशीलता उसे दुर्बलों तथा दीन-दु:खियों की व्यथा निवारण करने के लिए प्रेरित करती है। अत: मानव अपनी क्षमताएं 'सर्वभूत हितेरत:' के काम में लगा सकता है। इसी में मानव अपने जीवन की सार्थकता अनुभव करता है। इसके लिए आवश्यक है, मानव व्यक्तित्व के चारों तत्त्वों में सामंजस्य का होना।

मानव को शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा में सामंजस्य अपने आप प्राप्त नहीं होता अपितु विशेष प्रयासों की आवश्यकता होती है। इन प्रयासों को ही 'शिक्षा' नाम से संबोधित किया गया है।

शैशवावस्था से ही शिक्षा

मानवीय शिक्षा की नवरचना का विचार करने के पूर्व हमें मानव जीवन के अन्य पहलुओं पर भी विचार करना होगा। मानव का नवजात बच्चा यद्यपि सर्वथा असहाय दिखाई देता है तथापि उसकी आकलन शक्ति काम किया करती है। गर्भावस्था के अंतिम ढाई-तीन महीने से गर्भस्थ शिशु बाहर की बातें सुनकर स्वभावत: ज्ञानार्जन किया करता है। वस्तुत: मानव का विकास उसी अवस्था से प्रारंभ होता है। मनोवैज्ञानिकों ने अनेक परीक्षणों के बाद इस तथ्य को सही पाया है। अत: यह महाभारतकालीन काल्पनिक बात नहीं रही। इस बात का उल्लेख इस कारण करना आवश्यक हुआ कि अबोध दिखनेवाला शिशु अपनी नजर में आनेवाली व कान पर पड़नेवाली बातों से अपनी धारणाएं बनाता रहता है। इसकी जानकारी माता-पिता को होना जरूरी है। अन्यथा, बच्चों के समुचित विकास की आवश्यक व्यवस्था नहीं की जा सकती। आप नन्हे-नन्हे बच्चों को सिखाएं या न सिखाएं, केवल देख-देखकर व सुन-सुनकर उनकी जीवन-दृष्टि दृढ़मूल होती है। मानव संतान का यह स्वभावधर्म है। संतान को जन्म देनेवाले माता-पिताओं, विद्यालयों के गुरुजनों तथा देश के नेताओं को बच्चों की इस जन्मजात क्षमता का ध्यान रखकर ही शिक्षा का समुचित प्रबंध करना चाहिए। राष्ट्र-नवरचना की यह मूलभूत आवश्यकता है।

बच्चों को बोलना सिखाना नहीं पड़ता। वे सुनकर ही बिना गलती किए शुद्ध भाषा बोलने लगते हैं। उन्हें व्याकरण सिखाने की जरूरत नहीं होती। दक्षिण भारतीय लोग दिल्ली में आकर रहते हैं। उनके बच्चे अपने माता-पिता की भाषा के साथ चारों ओर के वातावरण के कारण अपने आप हिंदी भी बोलने लगते हैं। जो बच्चा जन्म से ही बधिर है, वह सिखाने से भी बोल नहीं सकता। इन बातों का उल्लेख करना इस कारण आवश्यक हुआ कि नई पीढ़ी देखने व सुनने की जन्मजात क्षमता के कारण अपना व्यक्तित्व स्वयं बनाती है। उसके व्यक्तित्व का यह पहलू जन्म देनेवाले माता-पिता तथा शिक्षा नीति के निर्धारकों की नजर से ओझल हो रहा है। अत: शैशवावस्था से ही बच्चों की नजर में व कानों में सुसंस्कारक्षम बातें ही पड़ें, इसका ध्यान रखना शिक्षा-पद्धति की मौलिकता है।

सामूहिकता मानव की अनिवार्यता

शिक्षा की दृष्टि से ही मानव जीवन का एक और पहलू महत्त्वपूर्ण है। मानव प्राणी अकेला नहीं रहता। मां की गोद से जन्म पाकर वह मां, बाप व परिजनों के सान्निध्य में पलता व बड़ा होता है। उसका परिवार भी अकेला नहीं रह सकता। अकेला परिवार अपना जीवन निर्वाह नहीं कर सकता। अतः अनेक परिवार मिलकर आबादी व मोहल्ले के रूप में जीवन निर्वाह करते हैं। इसी से समझना चाहिए कि मानव परस्पर-पूरक बनकर ही सुखमय जीवन जी सकता है। परस्पर-पूरकता मानव की अनिवार्यता है। अन्यथा अन्य प्राणियों से भिन्न विवाह प्रथा मानव समाज में प्रचलित न हुई होती।

प्रगति का आधार परस्पर-पूरकता

वस्तुतः व्यक्ति, कुटुंब व आबादियां राष्ट्र जीवन के आधारभूत अंग हैं। उनमें परस्पर-पूरकता ही राष्ट्र जीवन की प्रगति का आधार है। इस जीवन दृष्टि का विकास ही शिक्षा का मूल मंत्र है। इस मूलभूत दृष्टि के अभाव के कारण ही संसार के समाजों में विभिन्न समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। एक ओर सुख-सुविधाओं के साधनों की बाढ़ आई है और दूसरी ओर अराजकता का तांडव हो रहा है। इसकी जड़ में है मानवीय शिक्षा का अभाव।

स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम दो कदम उठाना अति आवश्यक था—

- सैकड़ों साल विदेशी हुकूमत में रहे देश के निवासियों को सामाजिक दायित्व-बोध से अवगत कराना।
- नई पीढ़ी में सामूहिक जीवन का अभ्यास करानेवाली प्राथमिक शिक्षा की नवरचना करना।

स्वातंत्र्य प्राप्ति का लक्ष्य

स्वातंत्र्य प्राप्ति का भीषण संग्राम राजसत्ता भोगने के लिए नहीं लड़ा गया था। ऐसे तुच्छ लक्ष्य के लिए असंख्य युवाओं ने अपनी उभरती जवानियों की आहुतियां न दी होतीं।

स्वातंत्र्य प्राप्ति का लक्ष्य स्पष्ट था। गांधीजी सहित स्वातंत्र्य संग्राम के अनेक मनीषियों ने घोषणा की थी कि हमारा लक्ष्य केवल राजनीतिक नहीं है। हमें मानव मात्र के लिए 'सर्वभूत हितेरतः' के सांस्कृतिक जीवन का युगानुकूल एवं अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए ही स्वराज्य चाहिए।

किंतु दुर्भाग्य से नवस्वतंत्र भारत का जीवन प्रारंभ हुआ राजसत्ता पाने केआपसी संघर्ष से, 1952 से लगातार उसी का नग्न तांडव होता आ रहा है। अवसरवादिता, गुटबाजी, शासकीय अक्षमता तथा अस्थिरता उसी के दुष्परिणाम हैं। इसके बावजूद सामाजिक व राजनीतिक नेताओं की आंखें खुल नहीं रही हैं। इस दिशा में कोई प्रयास नहीं हो रहे हैं।

सामाजिक प्रयास की आवश्यकता

ऐसी अवस्था में प्रचलित शासन की ओर से उपयुक्त शिक्षा की अपेक्षा करना मृगमरीचिका के पीछे दौड़ना मात्र है। समुचित शिक्षा के विकास का प्रयास सामाजिक स्तर पर ही करना होगा। महात्मा गांधी के नाम का राजनीतिक लाभ सभी उठा रहे हैं, किंतु गांधीजी की शिक्षा नीति का हमदर्द कोई नेता दिखाई नहीं देता।

शिक्षा की दुर्दशा

स्वतंत्र भारत में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति अत्यधिक शोचनीय है। इसका अर्थ यह नहीं कि उच्च शिक्षा की दिशा ठीक है। गरीब माता-पिता मजबूरी के कारण ही अपने बच्चों को सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ाते हैं। किसी भी स्तर के नेता व संपन्न माता-पिता अपने बच्चों को सरकारी विद्यालयों में नहीं पढ़ाते। उन्हें वे विशेष विद्यालयों में पढ़ाते हैं। ऐसे एक से एक महंगे विद्यालयों को चलाना कमाई का अच्छा धंधा बना है। इस कारण, विशेष विद्यालयों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। इन विद्यालयों में पढ़कर बच्चे पूर्णतः स्वकेंद्रित बनते हैं। अपने ही अभावग्रस्त भाई-बहनों के प्रति सहानुभूति के स्थान पर इन बच्चों में उनके प्रति हीन भावना पनपती है। क्या ऐसी अमानवीय शिक्षा राष्ट्रोन्नति का मार्ग प्रशस्त करेगी? यह दिशा समाज को विघटित ही नहीं करती अपितु कलह एवं अराजकता का कारण बन रही है। शासक व प्रशासक स्वयं भी उसमें सहभागी हैं।

नई दिशा

दीनदयाल शोध संस्थान एक छोटी सी संस्था है। उसके पास साधनों का अभाव है। फिर भी सीमित क्षेत्र में नमूने के रूप में अनुकरणीय शिक्षा-पद्धति प्रस्तुत करने की उसमें आकांक्षा है। अतः उसने शैक्षणिक अनुसंधान एवं विकास के प्रयोग प्रारंभ किए हैं।

चित्रकूट के चारों ओर के ग्रामीण अंचल में चल रहे सौ प्राथमिक विद्यालयों का चयन किया गया है। उनके नियमित कार्यों में हस्तक्षेप किए बिना उन विद्यालयों को आबादियों के निवासियों द्वारा यथासंभव सहायता दिलवाने का प्रयास प्रारंभ किया है। इससे स्थानीय नागरिकों व अध्यापकों में सहयोग का वातावरण पनप रहा है।

ग्रामीण आबादियों में अध्यापन में संलग्न महिला-पुरुष सर्वसाधारण ग्रामीणों से अधिक पढ़े लिखे होते हैं। विद्यालयों में पढ़ाने के अतिरिक्त उनकी शिक्षा का ग्रामवासियों के लिए कोई उपयोग नहीं होता। प्रयास करने पर वे ग्रामीण समाज के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। हमारे प्रयास के कारण गांव के लोग विद्यालयों के लिए सहायक बनने में अधिक सक्रिय हो रहे हैं। इस कारण पढ़नेवाले बच्चों पर अच्छे संस्कार होने लगे हैं। व्यक्ति, कुटुंब, विद्यालय तथा आबादी में परस्परपूरकता ही नूतन संतान के विकास का आधार है। इसमें अध्यापक वर्ग का योगदान सर्वोपरि हो सकता है। इससे पढ़नेवाले बच्चों में अपने आप

सामाजिक दायित्व-बोध पनपता है। उनके आपसी व्यवहार में आत्मीयतापूर्ण सहयोग बढ़ता है। नई पीढ़ी के घटकों के व्यक्तित्व विकास में इस वातावरण से सहायता मिलती है। शोध संस्थान इसी दिशा में कार्य कर रहा है, जिसका परिणाम उत्साहवर्धक है। उपर्युक्त प्रयोग शिक्षा-पद्धति के विकास की नींव है।

मानव समाज का स्वास्थ्य एवं विकास सर्वथा परस्पर-पूरकता आधारित है। इसकी विस्मृति सामाजिक पतन का कारण है। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है। व्यक्ति, कुटुंब, आबादी व देश में परस्पर-पूरकता बनी रही तो उस देश के नागरिकों का जीवन निरंतर प्रगति करता रहेगा। इसमें विद्यालयों में पढ़ानेवालों का योगदान सर्वाधिक होगा।

नूतन संतान का मानवीय विकास

नूतन संतान के लिए जन्म से ही परस्परपूरकता का वातावरण उपलब्ध कराना, माता-पिता, गुरुजन तथा आबादियों के प्रतिष्ठा संपन्न लोगों का दायित्व है। उपर्युक्त तीनों जनों का आचरण नूतन संतान के व्यक्तित्व विकास का आधार है। अतः इन तीनों तत्त्वों द्वारा नूतन संतान के उपयुक्त विकास के लिए परस्परपूरकता का वातावरण उपलब्ध कराने में अध्यापक वर्ग का योगदान प्राप्त करने का प्रयास हो रहा है।

गुरु की महत्ता

भारतीय परंपरा में गुरु का स्थान शासकों से भी ऊंचा रहा है। गुरु का अर्थ आध्यात्मिक मार्गदर्शक मात्र नहीं रहा। विद्या प्रदाता को गुरु कहा जाता था। गुरु की प्रतिष्ठा ब्रह्मा के बराबर मानी जाती थी। उसे निर्माता की प्रतिमूर्ति समझा जाता था। कारण, वह नूतन संतान के जीवन का निर्माता होता था। वही परस्परपूरकता के वातावरण का जनक भी था।

गुरु को चाकर बनाया गया

किंतु गुलामी के काल में विशेषतः अंग्रेजी हुकूमत में गुरु का दर्जा शिक्षा क्षेत्र के वेतनभोगी चाकर का बना दिया गया था। आजादी के 53 साल बाद भी वह बेचारा चाकर ही बना हुआ है। फलस्वरूप उसकी नजर वेतन पर केंद्रित होना स्वाभाविक है, छात्र-छात्राओं के मानवीय विकास पर नहीं। अतः शिक्षा क्षेत्र की प्रथम आवश्यकता है अध्यापक एवं अध्यापिकाओं की मानसिकता से चाकरी का भाव मिटाने की।

गुरु ही राष्ट्र का नव रचनाकार

वस्तुतः अध्यापन में संलग्न वर्ग ही राष्ट्र का नवनिर्माता है। वही नूतन संतान के जीवन का रचनाकार है। सैकड़ों साल गुलामी में रहे देश के निवासियों की मानसिकता में भी परिवर्तन वही ला सकता है। अपने बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के लिए माता-पिता की तत्परता स्वभावतः ही

होती है। अध्यापक वर्ग नूतन संतान के सर्वांगीण विकास में मन लगाएगा तो माता-पिता खुशी से इस कार्य में अध्यापकों के सहयोगी बनेंगे। इसी से माता-पिताओं की मानसिकता में परस्पर-पूरकता पनपेगी, जो राष्ट्रोन्नति की अनिवार्यता है।

गुरुकुल संकुल

भारतीय मनीषियों ने मानव की असीम क्षमताओं का आकलन किया था। उसकी जड़ और चेतन के साथ तादात्म्य हो पाने की अंतर्निहित शक्ति को पहचाना था। केवल मानव ही कठोरतम पाषाण में से करुणामय मूर्ति का संस्कारक्षम रूप निखार सकता है, यह उन्होंने जान लिया था। इन सृजनशील क्षमताओं के विकास के लिए मानव को उसके गर्भकाल से ही सुसंस्कारक्षम वातावरण की आवश्यकता अनुभव की थी। उसी की पूर्ति के लिए उन्होंने कौटुंबिक जीवन की रचना की थी। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का मानवीय लक्ष्य उसी में से विकसित हुआ था। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना के विकास का यह मूलभूत रूप था।

काल के प्रवाह में मानवीय विकास की आधारशिला अर्थात् कौटुंबिक व्यवस्था अपना लक्ष्य खोती गई। उपभोग लालसा मानवीय संवेदना पर हावी हुई। मानव धनदेवता की आराधना में लग गया। तकनीकी आविष्कारों के फलस्वरूप कौटुंबिक जीवन बिखरने लगा।

कौटुंबिक जीवन में सामूहिक संस्कारों की गुंजाइश समाप्त हुई। कुटुंबों ने माता-पिता तथा एक या दो बच्चों का रूप लेना प्रारंभ किया है। मानव स्वकेंद्रित हो गया। अतः मानव जीवन की परस्परपूरकता का वातावरण न परिवार में रहा है, न विद्यालयों में और न ही आबादियों में। इस कारण मानव मानवीयता से वंचित हो रहा है। आबादियों में रहते हुए भी वह अकेलेपन की भावना से ग्रसित है। समय की आवश्यकता है परिवारों में कौटुंबिक भावना को पुनर्प्रतिष्ठित करने की तथा उसमें सामाजिक दायित्व- बोध के पुनर्जागरण की। गुरुकुल संकुल द्वारा उसी का व्यावहारिक नमूना प्रस्तुत किया जा रहा है।

दस गुरुकुलों की छोटी सी आबादी साकार हो रही है। इसमें 80 बालिकाओं के लिए 4 गुरुकुल और 120 बालकों के लिए 6 गुरुकुल होंगे। हर एक गुरुकुल में अवकाश प्राप्त शिक्षाविद् गुरु के रूप में अपनी पत्नी के साथ रहेंगे। एक आवास सहायक तथा एक कृषि सहायक भी गुरुकुल के अभिन्न अंग के रूप में रहेंगे। इस प्रकार हर एक गुरुकुल में 24 सदस्य एक कुटुंब के रूप में रहा करेंगे। यह गुरुकुल एक विशाल कुटुंब का रूप लेगा। प्रत्येक गुरुकुल का आवास अलग एवं स्वतंत्र होगा। उसके चारों ओर कृषि भूमि होगी। उसमें गुरुकुल के सभी घटक साग-सब्जी तथा फल-फूल की खेती करेंगे। उन्हें दैनंदिन के लिए आवश्यक साग-सब्जी बाजार से खरीदनी नहीं पड़ेगी। प्रत्येक गुरुकुल में दूध देनेवाली एक गाय भी होगी। अतः गौ पालन का सबको अभ्यास होगा। हर एक गुरुकुल का अपना छोटा सा गैस यूनिट भी रहेगा। गुरुकुल के आवास की छत पर सोलर हीटर भी लगा रहेगा।

आवास व्यवस्था

गुरुकुल आवास में छात्र-छात्राओं के लिए 4-4 कक्ष रहेंगे। प्रत्येक कक्ष में 5-5 छात्र या छात्राएं रहेंगी। इसी आवास में एक स्वतंत्र कक्ष में गुरुजी एवं उनकी पत्नी रहेंगी। सबका मिलकर एक सामान्य कक्ष रहेगा। इस प्रकार विभिन्न पृष्ठभूमि से आए छात्र-छात्राओं का एक अनोखा कौटुंबिक जीवन विकसित होगा। सभी कार्य सब लोग मिलकर करेंगे। अतः परस्परपूरकता के व्यवहार का सबको अभ्यास होगा। सहज ही कौटुंबिक आत्मीयता तथा परस्पर सहयोग सबके जीवन का अभिन्न अंग बनेगा। गुरुकुल आवास में ही रसोई घर तथा भोजनालय का कक्ष रहेगा। शौच, स्नान आदि की व्यवस्था आवास के निकट किंतु अलग रहेगी।

ऐसे 10 गुरुकुलों की आबादी में भी परस्पर सहयोग के कार्यक्रम आयोजित होते रहेंगे। इन नवोदित नागरिकों को सब प्रकार के काम करने का अभ्यास होगा। संपूर्ण आबादी को साफ-सुथरी, स्वास्थ्यवर्धक एवं मनोरम बनाने में सबका योगदान होगा। पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन का इन गुरुकुलों के माध्यम से अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत होगा।

गुरुकुलों में रहनेवाले छात्र-छात्राएं पड़ोस के विद्यालयों में पढ़ाई करेंगे तथा खाली समय में विद्यालयों के पुस्तकालयों में पढ़ने का काम, मैदान में खेलने का आनंद तथा उद्यमिता विद्यापीठ में हस्तकला सीखने का अवसर पाते रहेंगे। पांचवीं कक्षा उत्तीर्ण छात्र-छात्राओं को ही गुरुकुलों में प्रवेश प्राप्त होगा।

गुरुकुल संकुल प्रचलित छात्रावासों की प्रतिकृति नहीं है। गुरुकुल संकुल के गुरुजनों का छात्र-छात्राओं से संबंध केवल गुरुकुल जीवन तक ही सीमित नहीं रहेगा। वे सभी छात्र-छात्राओं से पत्राचार के माध्यम से वैसे ही आजीवन जुड़े रहेंगे, जैसे माता-पिता जुड़े रहते हैं।

गुरुकुल संकुल के गुरुजनों का प्रयास होगा कि अपने गुरुकुल में रहे छात्र या छात्राएं किसी की चाकरी पाने की किसी से भी याचना न करें। कारण, यह स्वाभिमान हीनता का लक्षण है, आत्मविश्वास का नहीं। स्वरोजगार का जीवन अपनाकर सुखी व संपन्न बनें। गुरुकुल के सात साल के काल में छात्र-छात्राओं की मानसिकता व क्षमता इसी दिशा में विकसित हो, गुरुकुलों में ऐसा ही वातावरण रहेगा।

गुरुकुल संकुल के गुरुजन छात्र-छात्राओं के सुखद, उन्नत व उदात्त वैवाहिक जीवन-रचना में भी रुचि लेंगे। इसी से सामाजिक जीवन की अपेक्षित पुनर्रचना संभव होगी।

शैक्षणिक अनुसंधान परिसर

शैक्षणिक अनुसंधान एवं विकास केंद्र के परिसर में ही सुरेंद्रपाल ग्रामोदय विद्यालय तथा उद्यमिता विद्यापीठ चलाया गया है। सुरेंद्रपाल ग्रामोदय विद्यालय में पूर्व प्राथमिक शिक्षा से लेकर बारहवीं तक शिक्षा की व्यवस्था है। इसमें वाणिज्य एवं विज्ञान के विषय भी पढ़ाए जाते हैं। इन विषयों के लिए सुसज्जित प्रयोगशाला उपलब्ध कराई गई है। प्रबंध तकनीकी की भी जानकारी देने की व्यवस्था है।

ग्रामीण अंचल में उपलब्ध कच्चे माल को आंशिक तथा पूर्ण तैयार माल के रूप में रूपांतरित

करने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण की व्यवस्था उद्यमिता विद्यापीठ में की है। गांधीजी इसी पर विशेष बल दिया करते थे। इसी के माध्यम से छात्र-छात्राएं पढ़ाई के साथ कमाई करने की सुविधा प्राप्त कर सकते हैं।

अभावग्रस्तों का विकास

चित्रकूट क्षेत्र में अनुसूचित जनजाति तथा अनुसूचित जाति के नागरिकों की संख्या काफी है। इनके लिए संविधान द्वारा आरक्षण का प्रबंध पचास साल से चला आ रहा है, किंतु उनकी आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक अवस्था पहले से भी अधिक दयनीय हुई है। इन्हें आरक्षण से किसी भी प्रकार का लाभ तो पहुंचता नहीं अपितु इन्हें आरक्षित मानकर स्थानीय नागरिकों से मिलनेवाला सहयोग घटा है।

अनुसूचित जनजातियों एवं अनुसूचित जातियों के पास आजीविका के साधन नहीं के बराबर हैं। स्वयं मजदूरी करने के अतिरिक्त अपनी संतान को काम-धंधे में लगाना उनकी मजबूरी है।

दीनदयाल शोध संस्थान ने चित्रकूट के क्षेत्र में इन अनुसूचित जनजातियों तथा अनुसूचित जातियों की संतान का भविष्य बनाने की दिशा में अपनी सीमित शक्ति के अनुसार कदम बढ़ाए हैं।

रामनाथ आश्रमशाला

चित्रकूट में अनुसूचित जनजाति के सौ बालक एवं सौ बालिकाओं के शिक्षण के लिए आवासीय आश्रमशाला चलाई है, उसी प्रकार सतना जिले के मझगवां आदिवासी क्षेत्र में पचास वनवासी बालिकाओं के शिक्षण के लिए आवासीय विद्यालय चलाया है। वनवासी बालक-बालिकाओं से जन्मजात प्रतिभा की कमी नहीं है। वनवासी बालिकाओं में से इस वर्ष मझगवां आवासीय विद्यालय की पंद्रह बालिकाएं पांचवीं कक्षा की परीक्षा में बैठी थीं। ये सभी बालिकाएं प्रथम श्रेणी में उच्चस्तर प्राप्त कर उत्तीर्ण हुई हैं।

इन आश्रमशालाओं में पारिवारिक वातावरण इन्हें अनेक दृष्टियों से प्रेरित कर रहा है। बालक-बालिकाओं की माताओं को विभिन्न प्रकार का प्रशिक्षण देने का प्रयास किया जा रहा है। अनेक माताओं ने प्रशिक्षण पाकर कमाई भी प्रारंभ की है। औद्योगिक प्रशिक्षण के साथ इन आश्रमशालाओं के माध्यम से साक्षरता का भी कार्यक्रम चलाया जाता है। उसे देखकर आश्रमशाला में पढ़नेवाली बालिकाएं छुट्टियों में घर जाकर अपने मन से ही अपनी मां व पिता को लिखना-पढ़ना सिखा रही हैं। ऐसे आवासीय विद्यालयों के अधिक विस्तार की आवश्यकता है।

परमानंद आवासीय हरिजन विद्यालय

सतना जिले के मझगवां केंद्र के समान ही दीनदयाल शोध संस्थान का चित्रकूट जिले में गनीवां दूसरा केंद्र है। इस केंद्र के चारों ओर के इलाके में हरिजन आबादी काफी है। इन हरिजनों की आर्थिक एवं शैक्षणिक अवस्था मझगवां के वनवासियों के समान ही है। इन हरिजन बालक-

बालिकाओं के शैक्षणिक विकास की दृष्टि से शोध संस्थान 360 हरिजन बालक-बालिकाओं के लिए शैक्षणिक व्यवस्था कर रहा है। यह विद्यालय भी आवासीय ही है। जुलाई 2000 से केवल 100 बालक-बालिकाओं से आवासीय विद्यालय प्रारंभ किया जा रहा है। इसमें उत्तर प्रदेश सरकार और केंद्रीय सरकार का योगदान प्राप्त हुआ है। इस आवासीय विद्यालय के माध्यम से केवल बालक-बालिकाओं की पढ़ाई का ही कार्य नहीं होगा, अपितु इन बालक-बालिकाओं के माता-पिताओं को कुटीर उद्योगों का प्रशिक्षण देने का कार्य भी किया जाएगा। तभी ये बालक-बालिकाएं बीच में ही पढ़ाई छोड़कर कमाने के चक्कर में नहीं फंसेंगे। इस वस्तुस्थिति को समझे बिना वनवासियों तथा हरिजनों की नूतन संतान अपनी पढ़ाई पूरी नहीं कर पाती। इसलिए दीनदयाल शोध संस्थान ने इन आश्रमशालाओं में पढ़नेवाले बालक-बालिकाओं के माता-पिता को कुटीर उद्योगों का प्रशिक्षण देने का कार्य नूतन संतान की शिक्षा के साथ जोड़ा है।

गुरुकुल व्यवस्था

देश में अनेकता में एकता की परंपरा की चर्चा की जाती है। देश में और देश की प्रत्येक आबादी में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, जातिगत आदि अनेकताएं बनी हुई हैं। अनेकता में एकता का आवश्यक कार्य व्यावहारिक धरातल पर नई पीढ़ी ही संपन्न कर सकती है। यह कार्य न किया गया तो अपनी अद्वितीय संस्कृति की विशेषता बनी नहीं रह पाएगी और न खंडित भारत की अखंडता ही टिक सकेगी।

उपर्युक्त कार्य के लिए ही सुरेंद्रपाल ग्रामोदय विद्यालय में बीस गुरुकुलों की व्यवस्था खड़ी की जा रही है। इनमें कुल छात्र एवं छात्राओं की संख्या दो सौ रहेगी। प्रत्येक गुरुकुल में सुरेंद्रपाल ग्रामोदय विद्यालय में या रामनाथ आश्रमशाला में पढ़नेवाले छात्र-छात्राओं को प्रवेश मिलेगा। बाहर गुरुकुल बालकों के लिए तथा आठ गुरुकुल बालिकाओं के लिए बन रहे हैं।

सुरेंद्रपाल ग्रामोदय विद्यालय में पढ़ानेवालों में से अध्यापक या अध्यापिका एक-एक गुरुकुल का दायित्व संभालेगी। उनके परिवार के अभिन्न अंग के रूप में दस बालक या दस बालिकाएं उनके साथ उनके परिवार के सदस्यों के रूप में रहेंगे। सबका रहना, खाना, पीना एक साथ होगा। तदनुसार ही गुरुकुलों के भवनों का निर्माण हो रहा है। प्रत्येक भवन के साथ साग-सब्जी एवं फल-फूल उगाने के लिए कृषिभूमि जुड़ी हुई है। उसी में दूध देनेवाली एक सवत्स धेनु भी रहेगी। अतः गुरुकुल के सदस्यों को गो सेवा के साथ-साथ प्रतिदिन ताजा गो दुग्ध मिलता रहेगा। पढ़ाई के साथ-साथ पारिवारिक दायित्व निभाना और समाज के विभिन्न घटकों के साथ परस्परपूरकता का अभ्यास करना देश के नवोदित नागरिकों के लिए संभव होगा।

अनेकता में एकता

गुरुकुलों में बालक-बालिकाओं की अधिकतम संख्या दो सौ रहेगी। इन दो सौ छात्र-छात्राओं में कम-से-कम पच्चीस प्रतिशत शिक्षार्थी समाज के उपेक्षित वर्गों में से होंगे। परिणामस्वरूप बाल्यकाल से ही सभी स्तर के लोगों के साथ आत्मीयता के साथ रहने का उन्हें अभ्यास होगा।

नई पीढ़ी में परस्परपूरकता का व्यवहार विकसित करने का यही उपयुक्त एवं सुगम मार्ग है। इसी से अनेकता में एकता का व्यावहारिक रूप विकसित होगा।

बीस गुरुकुल परिवारों की नन्ही सी आबादी साकार होगी। बालक-बालिकाओं को पारिवारिक जीवन के साथ-साथ आबादी के सभी परिवारों में परस्परपूरकता की महत्ता अनुभव करने को मिलेगी। उनके जीवन में प्रतिस्पर्धा की नहीं, सहयोग की भावना पनपेगी।

प्रति चार माह एक बार सभी बच्चों के माता-पिता का गुरुकुल परिसर में ही एक दिन का शिविर लगा करेगा। सबका जलपान, भोजन तथा शेष कार्यक्रम सामूहिक रूप से संपन्न होंगे। फलस्वरूप अनेकता में एकता का संदेश बच्चों के माता-पिता के माध्यम से समाज में पहुंचेगा। अनेकता में एकता जनजीवन का अंग बन सकती है, ये गुरुकल इस वस्तुस्थिति का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

स्वावलंबन

स्वावलंबन स्वाभिमान की जननी है। स्वावलंबन एवं स्वाभिमान विहीन जीवन मानव के लिए अशोभनीय है। जिस देश के नागरिकों के जीवन में उपर्युक्त गुण नहीं होते, उस देश की आजादी सार्थक नहीं हो पाती। स्वावलंबन एवं स्वाभिमान शून्य व्यक्ति अथवा राष्ट्र पग-पग पर अपमानित होता है। वह अपनी प्रतिभा भी खो बैठता है।

प्रचलित शिक्षा पद्धति नई पीढ़ी में स्वावलंबन आधारित आजीविका चलाने की प्रेरणा अंकुरित नहीं करती। वह चाकरी की मानसिकता पैदा करती है। इसके दो दुष्परिणाम भुगतने पड़ रहे हैं। नई पीढ़ी में आत्मविश्वासहीनता तथा जिम्मेदारी वहन करने की अनिच्छा बढ़ रही है। इससे भी अधिक घातक बात है कि नौकरी में लगे लोगों में एक ही हेतु काम करता है कि प्रतिमाह अपना वेतन मिलता रहे तथा लगातार उसमें वृद्धि होती रहे। जहां नौकरी की जाती है, उस प्रतिष्ठान में लाभ हो रहा है या हानि, इसकी उन्हें परवाह नहीं होती। फलस्वरूप उत्पादकता पर विपरीत परिणाम होता है। इससे राष्ट्र की, और अंततोगत्वा नौकरी करनेवालों की भी हानि होती है।

स्वरोजगार केंद्र की योजना

स्वावलंबन के आधार पर आजीविका के तीन मार्ग उपलब्ध हैं—कृषि, उद्योग एवं व्यापार। इनमें स्वरोजगार उपलब्ध कराने की असीम क्षमता है। शैक्षणिक अनुसंधान केंद्र ने सुरेंद्रपाल ग्रामोदय विद्यालय के परिसर में ही कृषि, उद्योग एवं व्यापार के प्रशिक्षण की व्यवस्था की है। ग्रामीण अंचल के युवक-युवतियों को इन तीनों व्यवसायों में प्रशिक्षण देने के लिए 'उद्यमिता विद्यापीठ' की प्रस्थापना की है। सुरेंद्रपाल विद्यालय में पढ़नेवाले तथा गुरुकुलों में रहनेवाले छात्र-छात्राओं को सहज में ही इनका अवलोकन करने को मिलता है। उनमें से जो भी छात्र या छात्रा किसी काम में रुचि लेती हैं, उन्हें काम सीखने का अवसर उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है। इसी प्रक्रिया से नई पीढ़ी में स्वरोजगार की रुचि बढ़ेगी। रुचि बढ़ाने तथा अपनाने की

प्रेरणा भी देने का काम अध्यापक-अध्यापिकाएं करती हैं। इनमें सक्रिय भाग लेनेवाले छात्र-छात्राओं को उनके परिश्रम के अनुसार पारिश्रमिक भी मिलेगा। पढ़ाई के साथ कमाई का भी क्रम व्यावहारिक धरातल पर साकार होगा। फलस्वरूप नौकरी के स्थान पर स्वरोजगार की वृत्ति पनपेगी।

दीनदयाल शोध संस्थान सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अनुसंधान के कार्यों में संलग्न इकाई है। प्रसार कार्य उसका क्षेत्र नहीं है। अपने शोध कार्यों की तथा उनके निष्कर्षों की जानकारी संबंधित क्षेत्रों में कार्यरत संस्थाओं तथा महानुभावों को देना, उनके साथ संपर्क प्रस्थापित कर परामर्श करना तथा उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करना शोध संस्थान का कार्य है। इससे अनुसंधान कार्य लाभान्वित हो रहा है। शैक्षणिक अनुसंधान केंद्र उपर्युक्त सत्प्रयासों के साथ इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करने जा रहा हैं।

□

भारतीय शिक्षा दर्शन
नयी चुनौतियों का समाधान

चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय के निर्माण के मूल उद्देश्य उसमें अपनाई जानेवाली शिक्षा पद्धति एवं शिक्षा दर्शन और इस महान् कार्य के लिए चित्रकूट की पवित्र भूमि को चुनने के कारणों की रूपरेखा हम पूर्व में दे चुके हैं। इस पत्र का प्रयोजन यह है कि इस विश्वविद्यालय के उद्देश्यों और शिक्षा पद्धति एवं दर्शन का तनिक अधिक विस्तार से विवेचन किया जाए और कुछ प्रश्नों पर गंभीर चर्चा करके अधिक स्पष्ट परिप्रेक्ष्य ग्रहण किया जाए।

डॉ. राधाकृष्णन आयोग ने सिफारिश की थी कि ग्रामीण विश्वविद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए। इस धारणा को तीन विचारधाराओं से बल मिला था—

- रवींद्रनाथ टैगोर ने प्रकृति के साथ रसामंजस्य द्वारा शिक्षा प्रदान करने का प्रयत्न किया था और इस तरह बालक की जिज्ञासा को अधिकाधिक जाग्रत् करके उनकी सृजनशील एवं आनंदमयी प्रवृत्तियों को स्वत:स्फूर्त और कार्यशील होने का अवसर प्रदान किया था।
- काम के माध्यम से शिक्षा ग्रहण और सामाजिक जीवन के साथ तादात्म्य का आदर्श।
- डेनिश ग्रामीण स्कूलों और जनता कॉलेजों के प्रभावी परिणाम।

आयोग ने यह बताया कि जिन परिस्थितियों में डेनिश स्कूल और कॉलेज स्थापित किए गए थे। वे आश्चर्यजनक रूप में भारत में विद्यमान परिस्थितियों से मिलती–जुलती थी। डेनमार्क की जनता अपना सांस्कृतिक आधार खो बैठी थी। उनके जीवन के हर क्षेत्र में विदेशीपन के प्रति प्रथम आग्रह और आकर्षण पैदा हो गया था। डेनमार्क की भाषा का स्थान उस राष्ट्र की भाषा ने ले लिया था, जिसने डेनमार्क को हराकर वहां अपना प्रभुत्व जमा लिया था। शिक्षित डेनिश पूर्णतया विदेशी विद्वानों से प्रभावित थे। डेनिश लोग ऐसी निराशाजनक उदासीनता में डूब गए थे कि उन्हें विश्वास हो गया था कि उनका राष्ट्र विनाश के कगार पर है। वहां से उभरकर डेनमार्क प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से यूरोप में दूसरे दर्जे पर पहुंच गया, यद्यपि यूरोप के किसी भी राष्ट्र के प्राकृतिक संसाधन डेनमार्क से कम नहीं थे। देहात का किसान वर्ग देश की अग्रगण्य शक्ति बन गया। यह क्रांतिकारी परिवर्तन लाने में जनता कॉलेज आंदोलन का सर्वाधिक प्रभाव रहा।

चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय के दिशा–दर्शन पर पृष्ठभूमि पत्र। डीआरआई दस्तावेज, 1991

टैगोर और गांधी के शिक्षा संबंधी आदर्शों को हम मोटे तौर पर जानते ही हैं। अतः हमें पहले डेनिश प्रयोगों पर ध्यान देना चाहिए, जिनके बारे में लोगों का विचार है कि राष्ट्र की समस्त जनता को शिक्षित करने में यही विश्व का सबसे महान् सफल प्रयोग है। आगे चलकर हम इस बात पर भी विचार करेंगे कि किन कारणों से टैगोर और गांधी की शिक्षा-पद्धति और शिक्षा-दृष्टि उनके अपने ही देश में विफल अथवा उपेक्षित हो गई, और यह भी विचार करेंगे कि क्या उनकी धारणाओं में कुछ गलतियां और भ्रांतियां विद्यमान थीं।

ग्रामीण जनता की शिक्षा में डेनमार्क की सफलता के कारण

ग्रंटविग डेनिश ग्रामीण स्कूलों और जनता कॉलेजों के जन्मदाता थे। उनका मत था—

छात्रों और अध्यापकों को इकट्ठा रहना चाहिए, ताकि जीवन में उतारे गए सराहनीय आदर्श निरंतर प्रेरित और अनुप्रेरित करते रहें।

तत्कालीन शिक्षा नवयुवकों को विदेशी संस्कृति से प्रभावित कर रही थी और अपनी संस्कृति से दूर ले जा रही थी। उन्होंने कहा कि वर्तमान उच्च शिक्षा ऐसी शिक्षा पद्धति पर आधारित है, जिसे छात्र केवल इसलिए ग्रहण करते हैं कि उससे नौकरियां प्राप्त कर जीविकोपार्जन सुनिश्चित कर लें। केवल संस्कृति के नाते उसके प्रति प्रेम नाममात्र को भी नहीं, इसके परिणामस्वरूप शिक्षितों का एक वर्ग पैदा हो गया। देश की अधिकांश जनता अशिक्षित बनी रही, ताकि वह शिक्षितों की दास बनी रहे।

इस प्रकार की शिक्षा न तो समाज के लिए और न ही शिक्षा प्राप्त करनेवालों के लिए उपयोगी हैं। निरंतर पुस्तकों पर दृष्टि गड़ाए रखनेवाले किताबी कीड़ा बन जाते हैं। ग्रैमर स्कूल, जहां शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा थी, बालक को चेतना-शून्य बना देते थे और वे मूर्खता प्रदान करनेवाली संस्थाएं बन गए थे। वे डेनिश बालकों के जीवन को विषाक्त कर रहे हैं। उन्हें यह चिंता थी कि डेनिश लोगों को संस्कृति विहीन बनाने की प्रक्रिया रोकी जाए। उनका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कथन था कि विदेशी संस्कृति के प्रबल प्रहार से देश की संस्कृति की रक्षा हो सके। उसी तरह आज हमारा सर्वप्रथम उद्देश्य होना चाहिए कि पाश्चात्य संस्कृति के विनाशकारी दुष्प्रभावों से भारत की रक्षा की जाए।

ग्रंटविग ने लिखा—''बालक को जीवन-पथ के लिए तैयार करने हेतु सबसे अच्छा स्कूल एक योग्य और परिश्रमी व्यक्ति का घर-परिवार है, जिसमें बालक ऐसा काम सीख सकता है और उससे आनंद लाभ प्राप्त कर सकता है, जिसे उसको अपने भावी जीवन में अपनाना है। उसे किताबी ज्ञान प्रदान करने हेतु चारदीवारी में बंद कर देने से वह इस हद तक बिगड़ जाता है कि परिश्रमोन्मुखी सामान्य जीवन के योग्य नहीं रहता।'' उन्हें यह विश्वास हो गया था कि ''जनसाधारण को आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करने से ही राष्ट्रीय जन-जागरण आरंभ होना चाहिए। मातृभाषा सर्वतोमुखी साधन होनी चाहिए और पितृभूमि को ऐसा चेतन और प्राणवान केंद्र बनाना चाहिए, जिसकी ओर सबके हृदय आकर्षित हों।'' उन्हें यह अनुभव हुआ कि उन्होंने जो अनेक वर्ष पुस्तक लेखन में

व्यतीत किए थे, वे सब व्यर्थ गंवा दिये गए थे। अतः उन्होंने अनुप्राणित शब्दों अर्थात् अध्यापक द्वारा उच्चारित शब्दों का आह्वान किया और यह प्रतिपादित किया कि वास्तव में छात्रों के लिए गुरु की अभिव्यक्ति प्राणवान आदर्श प्रस्तुत करती है। यह धारणा कि छात्रों और अध्यापकों को इकट्ठा रहना चाहिए, ताकि जीवन में उतारे गए सराहनीय आदर्श निरंतर शिक्षक और शिक्षार्थी को प्रेरित व अनुप्रेरित करते रहें, शिक्षा पद्धति का महत्त्वपूर्ण तत्त्व बन गई।

डेनिश ग्रामीण स्कूलों का यह आदर्श भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति से आश्चर्यजनक रूप में समानता रखता है। उनके शिक्षक शिक्षार्थी संबंध भारत की गुरु-शिष्य परिपाटी के सर्वथा अनुरूप हैं।

ग्रंटविग के दृष्टिकोण में इस बात के कारण प्रखरता आ गई कि उन्होंने स्पष्ट रूप से यह अनुभव कर लिया था कि नगर और ग्राम प्रदेश एक दूसरे से सर्वथा कटे हुए तथा भिन्न जगत् हैं। नगरों के विद्वानों के हृदय में किसानों के प्रति सिवाय घृणा के और कोई भाव नहीं होता। परिणामस्वरूप अन्य नगरवासियों में भी यह प्रदूषण फैल गया, जो देश की जनता को विशाल जनसंख्या मात्र समझते थे। उन्होंने यह भी देखा कि समाज में बहुत अधिक वर्ग भेदों और वर्ग के स्वरूप और ढांचे को सुदृढ़ और शाश्वत बना रही थी, इसलिए ग्रंटविग ने दो दिशाओं से प्रहार प्रारंभ किया। एक ओर तो उन्होंने नए प्रकार के स्कूल और कॉलेज प्रारंभ किए, ताकि ग्रामीण लोगों को अधिक अच्छी सूझ-बूझ और व्यावहारिक ज्ञान दिया जा सके और जन-जागरण पैदा करने के लिए उन्होंने डेनमार्क के सारे ग्रामीण प्रदेश की यात्रा की।

उन्होंने अनुभव किया कि चूंकि जीवनोन्मुखी लोक-शिक्षा में जनता की स्वतंत्रता की संभावनाए विद्यमान हैं, अतः निहित स्वार्थवाले लोग इसका विरोध करेंगे और इस विरोध पर काबू पाने के लिए आवश्यक है कि जनसंग्रह और ऐसे रचनात्मक कार्यक्रम से शिक्षा को बल प्राप्त हो, जिसमें जन-सामान्य भाग ले सके। इस प्रकार के कार्य के लिए आवश्यक है कि संकीर्ण दायरों में घिरी, सत्ता की लोलुपता में सनी राजनीति को त्यागकर सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से जनाभिमुख दृष्टिकोण अपनाया जाए। ऐसे प्राणवान परिप्रेक्ष्य एवं सामूहिक गतिविधि के कार्यक्रमों को अपनाए बिना जनता में बड़े पैमाने पर उद्यमशीलता और शिक्षा के लिए प्रेरित करना कदापि संभव नहीं हैं। भारत की बात शुरू करने से पहले हमें ग्रंटविग की उस बात पर बल देना चाहिए, जिसके लिए उन्होंने विशेष अनुरोध किया था अर्थात् कोई परीक्षाएं नहीं होनी चाहिए और न ही परीक्षाओं पर आजीविका आधारित होनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के लिए विकास और ज्ञानोपलब्धि ही शिक्षा से प्राप्त होनेवाले पुरस्कार हैं। ग्रामीण स्कूल और जनता कॉलेजों को केवल उन्हीं विषयों की शिक्षा देनी चाहिए, जो सभी लोगों के लिए सामान्य रुचि के हो सकते हैं। ग्रंटविग ने यह भी कहा कि सुसंस्कृत व्यक्ति में यही अंतर है कि सुसंस्कृत व्यक्ति अतीत के बौद्धिक जीवन के साथ अपनत्व अनुभव करता है, जबकि असंस्कृत व्यक्ति इस अनुभूति से सर्वथा शून्य होता है। ग्रंटविग ने कहीं भी इन स्कूलों और कॉलेजों के आदर्श के रूप में शिक्षा शब्द का प्रयोग नहीं किया। उन्होंने सदा जनसाधारण को उनकी स्थिति से उभरने के लिए

ज्ञानोपलब्धि शब्द का प्रयोग किया। जिस पीढ़ी ने उनसे प्रेरणा ग्रहण की, वे यह नहीं मानते थे कि विद्वान् लोग निश्चय ही शिक्षित होते हैं। उन्होंने इस धारणा का विरोध किया कि उदार एवं शिक्षित व्यक्ति निर्माण करने के लिए उच्च विद्यालयों और कॉलेजों में परंपरागत संस्कृति संबंधी विषयों का कई वर्ष तक अध्ययन करना आवश्यक है।

विकास और ज्ञानार्जन ही शिक्षा से प्राप्त होनेवाले पुरस्कार हैं।

ग्रंटविग ने विद्वत्ता और लोकशिक्षा के संबंधों के बारे में एक दिलचस्प बात कही, यदि लोक शिक्षा ने विद्वत्ता को संयत करने के लिए उसे लोकशिक्षा के धरातल पर नहीं उतारा तो विद्वत्ता मार्गभ्रष्ट हो जाएगी, क्योंकि लोकशिक्षा ही उसे नित्य प्रति की समस्याओं से जूझने के लिए बाध्य करती है और लोकशिक्षा कृत्रिम लीपापोती बनकर रह जाएगी, यदि विद्वत्ता ने इसे जीवन की ओजस्विता प्रदान न की।

टैगोर और गांधी के दृष्टिकोणों की सीमाएं

भारत में टैगोर की शिक्षा पद्धति द्वारा शिक्षा की व्यावहारिक गतिविधियों, जैसे खेती-बाड़ी, दस्तकारी आदि के साथ संबंध स्थापित किया गया था, ताकि अध्यापक और छात्र जीवनोन्मुख प्रक्रियाओं के विज्ञान और प्रौद्योगिकी को अधिक अच्छी तरह समझ सकें। परंतु इसके साथ विद्यालयों और महाविद्यालयों की शृंखला स्थापित नहीं की गई और न ही जन-सामान्य ने रचनात्मक कार्यों में भागीदार बनकर ज्ञानार्जन के लिए व्यापक आंदोलन को ही बल दिया। ऐसा आंदोलन खुलेआम व्यावहारिक राजनीति में परिणत हो जाता, भले ही उसका स्वरूप रचनात्मक होता।

टैगोर तो केवल यह चाहते थे कि आदर्श शिक्षा संस्था स्थापित की जाए, जिसके कई प्रतिरूप बाद में स्थापित किए जा सकते हैं। परंतु आस-पड़ोस के जिलों में काफी बड़े पैमाने पर जनता को तैयार किए बिना बाद के वर्षों में विरोध संस्कृति के अत्यधिक प्रभाव के कारण उक्त आदर्श संस्था का ह्रास हो जाएगा, उसकी पूर्ण संभावना थी, जिस बात की ओर टैगोर ने ध्यान नहीं दिया। प्रकृतिवाद पर बल देना हितकारी था, परंतु स्वयं इसमें प्रसार की क्षमता नहीं थी। अतः प्रकृतिवाद उच्च वर्ग तक ही सीमित रह सका। टैगोर के विद्यालय ने जो विद्यार्थी पैदा किए, उन्होंने स्वस्थ उदार शिक्षा प्राप्त की। परंतु वे टैगोर के तत्कालीन दृष्टिकोण में इस तरह सीमित हो गए कि वे आम लोगों के जीवन में पैदा होनेवाली कई चुनौतियों को नहीं समझ सके और न ही विज्ञान, तकनीक और मानवीय ज्ञान की कई एकात्मता पैदा कर उन चुनौतियों का सामना करने में समर्थ हुए।

'काम के द्वारा सीखने' के गांधीजी के संदेश को दूर-दूर तक फैली जनता की गतिविधियों के कार्यक्रम से बल मिला। शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा और महत्ता को उचित रीति से पर्याप्त बल दिया गया। राधाकृष्णन आयोग के शब्दों में, ''इस समस्त अवधारणा में मानव व्यक्तित्व को पूर्णता की ओर ले जाने और उसके परिष्कार के बीज विद्यमान थे। उसकी बुद्धिमत्ता और सर्वश्रेष्ठता आगामी वर्षों में और अधिक प्रखर होगी तथा समय की कसौटी पर भी ठीक उतरेगी।'' परंतु यह कहना आवश्यक है कि कुछ कमजोरियों ने इसकी अपील को बहुत अधिक निर्बल बना दिया

था। इसे इस रूप में पेश नहीं किया गया कि यह विज्ञान को अधिक कुशलतापूर्वक समझने और जनसाधारण द्वारा प्रयोग में लाए जानेवाली तकनोलॉजी में प्रवीणता प्राप्त करने का उपाय है। चरखे पर एकांगी बल देने के कारण लोगों की दृष्टि, ज्ञान-विज्ञान और बहुविध सांस्कृतिक गतिविधियों की प्रौद्योगिकी, यथा कई प्रकार की खेतीबाड़ी और वनारोपण आदि के महत्त्व से हट गई। 'पढ़ाई के साथ कमाई' पर बल देने के कारण उच्च वर्ग में यह धारणा पैदा हो गई कि यह शिक्षा ऐसी है, जो जनता के उन वर्गों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है, जिनके पास धन-संपत्ति नहीं है। इसके साथ ही इस शिक्षा पद्धति ने गरीबों में भी उत्साह पैदा नहीं किया, क्योंकि ऐसे कार्यक्रम में कमाई की क्षमता इस योग्य नहीं कि उसे महत्त्व दिया जा सकता। इसके अतिरिक्त जो गांधीवादी शेष रह गए थे, वे गांधीजी द्वारा अपने जीवनकाल में अपनाए गए दृष्टिकोण से बंधे रहे, परंतु उसके दर्शन की भावना के अनुरूप अपना विकास नहीं कर सके।''

टैगोर और गांधी के युग के बाद पश्चिमी विज्ञान और तकनोलॉजी की चकाचौंध अर्थात् पाश्चात्य शिक्षा पद्धति ने इस राष्ट्र के नेताओं की दृष्टि को चौंधिया दिया। टैगोर और गांधी की शिक्षा-पद्धतियों को चमत्कारिक सफलता न मिलने के कारण वे राष्ट्रीय शक्तियां कमजोर हो गईं, जो पाश्चात्य विश्वविद्यालयों को उच्च वर्गोन्मुख बौद्धिकता प्रधान शिक्षा का प्रतिरोध कर सकती थीं। टैगोर और गांधीजी द्वारा प्रतिपादित सभ्यता का कल्पना चित्र और उनका शिक्षा दर्शन, आधुनिकतावादी जीवन-पद्धति और आधुनिकतावादी (अर्थात् पाश्चात्य) शिक्षा पद्धति के प्रति आकर्षण की तूफानी लहर में सर्वथा बह गए। केवल दिखाने के तौर पर टैगोर और गांधीजी की प्रशंसा की जाती रही, जबकि उनके मूलभूत उपदेश की उपेक्षा कर दी गई। भारत के वास्तविक जीवन में उनकी इस तरह अवहेलना करने में यह दिखावा बहुत प्रभावी सिद्ध हुआ।

जब देश के नेता राजनीतिक स्वतंत्रता की आकांक्षा करें और साथ ही उद्योग, कृषि, आवास, यातायात ऊर्जा के प्रयोग अर्थात् वास्तव में समस्त जीवन-पद्धति में ही अपने पुराने शासकों की रीति नीति को अपनाएं तो देश की शिक्षित जनता मानसिक गुलामी की अधिकाधिक शिकार हो जाती हैं और जन-सामान्य की सांस्कृतिक जीवन-पद्धति से सर्वथा अलग-अलग हो जाती हैं। यह स्थिति किसी भी देश के लिए घातक हैं। किंतु यह और भी अधिक घातक हो जाती हैं, यदि कोई देश ऊष्ण कटिबंध में स्थित हो, जिसकी जलवायु गरम हो और इस कारण जिसके जंगल मिट्टी, वायु प्रवाह, वर्षाक्रम, परागण आदि की पद्धति और लोगों की सांस्कृतिक जीवन-पद्धति उत्तरी भूमध्य के समशीतोष्ण जलवायु के प्रदेशों की पद्धति से सर्वथा भिन्न हो।

राधाकृष्णन आयोग को विश्वविद्यालयी शिक्षा के बारे में अध्ययन का काम सौंपा गया था। जिसमें बताया गया कि उच्च शिक्षा की वर्तमान पद्धति विश्व के सबसे नवीन एवं सबसे अधिक जनसंख्यावाले इस लोकतंत्र के किनारे को भी अभी तक नहीं छू पाई। इसका नकारात्मक प्रभाव यह हुआ है कि जो नौजवान गांवों से विश्वविद्यालय में पढ़ने गए थे, उन्होंने सदा-सर्वदा के लिए ग्रामीण जीवन से अपना संबंध विच्छेद कर लिया है। चूंकि विश्वविद्यालय की शिक्षा का विकास प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में से ही हो सकता है, अतः आयोग ने पहली कक्षा से पांचवीं

कक्षा तक की बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा के कार्यक्रम पर भी तनिक दृष्टि डाली और कुछ सुधारों का सुझाव दिया। आयोग ने बताया कि (हिंदुस्तानी तालीमी शिक्षा संघ द्वारा प्रस्तुत शिक्षा के कार्यक्रम में) बुनियादी शिक्षा के बाद के विद्यालयों के शिक्षा कार्यक्रम को पूरी तरह तैयार नहीं किया गया, जबकि उच्च शिक्षा का कार्यक्रम तो स्पष्ट रूप में बनाया ही नहीं गया।

ग्रामीण विश्वविद्यालयों का वैशिष्ट्य

ग्रामीण विश्वविद्यालय, कृषि विश्वविद्यालय नही हैं और न व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करनेवाला कोई उच्च स्तरीय प्रशिक्षण केंद्र (पोलिटेक्निक) हैं और न ही ग्रामीण अंचल में स्थित कोई सामान्य किस्म का विश्वविद्यालय। अतः यह आवश्यक है कि उन लक्षणों की स्पष्ट व्याख्या की जाए, जो सभी ग्रामीण विश्वविद्यालयों की सामान्यतया एवं विशेष रूप से ग्रामोदय विश्वविद्यालय की विशेष रूप से विशेषताएं कहीं जा सकती हैं। परंतु उनकी व्याख्या करने से पूर्व यह आवश्यक है कि निम्नलिखित पहलुओं पर संक्षिप्त विचार किया जाए—

- राधाष्कृणनन आयोग के समय से अब तक हुए परिवर्तन।
- प्राचीन भारत में शिक्षा का स्वरूप, जो हमारी परंपरा का आधार है और आज भी लोगों के मन-मस्तिष्क को बहुत अधिक प्रभावित करता है।
- भारत और अन्य देशों के महापुरुषों द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के प्रयोजन।
- पश्चिमी विज्ञान और तकनोलॉजी की चकाचौंध का राष्ट्र के नेताओं की दृष्टि पर प्रभाव।
- शिक्षा के सोपान पर जो जितना ऊपर पहुंच जाता है, उसकी अन्य विषयों की समझ।

राधाकृष्णन आयोग के बाद जो परिवर्तन आए, वे इस प्रकार हैं—

- विश्व स्तर और अखिल भारतीय स्तर पर जीवन के मूल आधार का पूरा विनाश ऊष्ण कटिबंध के देशों में (जिनमें भारत सम्मिलित है) जीवन धात्री व्यवस्था का विनाश सम शीतोष्ण प्रदेशों की तुलना में कहीं अधिक हुआ है। जंगल नष्ट हो गए, बाढ़ के बाद सूखे और सूखे के बाद बाढ़ का निरंतर प्रकोप रहा, भूमि क्षरण हुआ, भूमि तल के और भूगर्भ जल का अत्यधिक प्रदूषण हुआ, जिसके परिणामस्वरूप गांववालों को बहुत अधिक भुगतान पड़ा। ऊष्ण-कटिबंधीय चक्रवातों का बार-बार आना, कुछ क्षेत्रों में भयंकर गरमी की लहरें, अन्य कुछ प्रदेशों में बार-बार भयानक सूखे की स्थिति। इन सबका कृषि पर तात्कालिक दुष्प्रभाव हुआ है और सामान्य जीवन के लिए खतरा पैदा हुआ है।
- नकद फसलों के उत्पादन और वितरण पद्धति द्वारा लोगों की भरण पोषण संबंधी आर्थिक व्यवस्था पर दुष्प्रभाव पड़ा है।
- आधुनिक विकास की रीति प्रद्धति के प्रभाव के परिणामस्वरूप गांवों की बाहरी माध्यमों पर अधिकाधिक निर्भरता बढ़ी है। विकास की इस रूपरेखा के अंतर्गत खेती, बीज एवं चारे जैसी मूलभूत चीजों की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा स्थानीय लोगों की आवश्यकताओं की उपेक्षा करके भी उत्पादनों के विक्रय के लिए बाहरी माध्यम पर निर्भर रहना पड़ता है।

- गांवों में अधिकाधिक ध्रुवीकरण हुआ है। गांवों की परंपरागत अर्थव्यवस्था नष्ट हो जाने के कारण देहात के कुछेक धनी लोगों के हाथों में धन का संग्रह हो गया, जिसके परिणामस्वरूप गरीब ग्रामवासी को बहुत हानि उठानी पड़ रही है।

ज्ञान की एकात्मता का लोप

ज्ञान के अधिकाधिक सीमित विषयों और उपविषयों के विशेषीकरण के नाम पर ज्ञान की एकात्मता का अधिकाधिक विघटन हो गया है। आज की शिक्षा पद्धति में यह बात उभरकर सामने आई है कि शिक्षा के सोपान पर जो जितना अधिक ऊपर पहुंच जाता है, वह अपने सीमित उपविषयों को छोड़कर अन्य सभी विषयों के बारे में जानकारी की दृष्टि से अधिक अज्ञानी बन जाता है। विश्वविद्यालय में और शिक्षा के सभी स्तरों पर सत्य की खोज को सर्वथा तिलांजलि दे दी गई है।

- प्रकृति पर विजय पानेवाले विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विषयों ने पर्यावरण को नष्ट करनेवाले तरीकों को विकसित और प्रसारित किया है।
- स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करनेवाले युवक के जीवन और प्रायः सारे समाज के प्रति वे और भी अधिक विमुख हो गए हैं।

  शिक्षार्थियों को शारीरिक श्रम में तो बिलकुल ही रुचि नहीं रही। अधिकांश विद्यार्थियों के लिए अध्ययन प्रक्रिया जीवन की कठिनाइयों से बचने का बहाना मात्र है, एक रस्म मात्र है, जिसका समापन परीक्षा के समय विषय को रट लेने से हो जाता है।
- अधिकांशतः विद्यार्थी निम्नलिखित की मानसिक गुलामी में ग्रस्त हो गए हैं—

टीवी संस्कृति (नगरों में एक कदम आगे अर्थात् वीडियो संस्कृति), जिसमें कल्पना लोक के सुखद दृश्य, कामुकता और हिंसा दर्शाई जाती है, मधुर और सुगम संगीत के स्थान पर शोर शराबेवाला पॉप संगीत। 'कोकाकोला' संस्कृति और भोगवादी और विलासितावादी संस्कृति।

संक्षेप में, युवकों की क्षमता और सामर्थ्य का ह्रास अपनी सीमा पर पहुंच गया है। राष्ट्र की संस्कृति को पतन के गर्त में ढकेल दिया गया है। शिक्षा सुधारकों के काम पर इन सब बातों का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। देहात की शिक्षा की ओर भी अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, क्योंकि शिक्षा में सुधार का आरंभ वहां से ही हो सकता है, जहां प्राथमिक उत्पादन होता है और जहां संस्कृति बहुत कम प्रदूषित हुई है।

भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति का एक पृष्ठ

चूंकि राष्ट्रीय जागृति प्राचीन संस्कृति के उन मूल्यों को आत्मसात् करने से ही हो सकती है, जिनकी अजस्र धारा लोगों के गहरे अवचेतन मन में बह रही है। यह आवश्यक हो जाता है कि प्राचीन शिक्षा नीति और पद्धति का पुनः स्मरण किया जाए।

- प्राचीन भारत में शिक्षा की सर्वप्रमुख विशेषता गुरुकुलवास है। राजा के पुत्र को भी राजमहल

छोड़कर गरीब की वेशभूषा में सब धन-दौलत त्यागकर हाथ में ईंधन की लकड़ी लिये जंगल में गुरु के घर में निवास के लिए जाना पड़ता था। उसमें और उसके सहपाठियों में पूर्ण समानता होती थी। उन्हें अपने नए घर के लिए ईंधन एकत्र करना, पशुओं को चराना, अनाज पीसना, जुताई योग्य खेतों में बांध लगाना, ताकि उसकी आर्द्रता बनी रहे और इसके अतिरिक्त अध्यापक और अपने छात्र बंधुओं की सेवा में सभी प्रकार के कार्य करना आदि सभी कार्य, छात्र की शिक्षा का अंग थे, जिससे उनमें आत्मस्वावलंबन और श्रम प्रतिष्ठा के भाव उत्पन्न होते थे। छात्रों के लिए ये सभी कार्य उतने की महत्त्वपूर्ण थे, जितने अध्यापक द्वारा प्रेम, सहानुभूति, न्याय और सत्य पर दिए भाषण।

- रविंद्रनाथ टैगोर कहते थे, ''भारत में एक आश्चर्यपूर्ण बात यह है कि नगर के बजाय जंगल को सभ्यता की गंगोत्तरी माना जाता है। गुरुगृह तपोवन में हुआ करता था। नगरों और देहात की बस्तियों से परे यह अरण्य स्थल इस प्रकार प्रकाश का प्रसारण करता था जैसे सूर्य अपने उपग्रहों को प्रकाश देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत के ऋषियों ने इस बात को पूरी तरह समझ लिया था कि जंगल ही, मिट्‌टी, जल और वातावरण का एक साथ विनियमन करते हैं। भारत को पुनः वन के इस महत्त्व को पहचानना होगा, ताकि वह अपनी और विश्व की सभ्यता की रक्षा कर सके।''
- अध्यापक का आदर्श जीवन शिक्षा में प्रमुख भूमिका अदा करता था। स्वामी विवेकानंद ने इस बात को इन शब्दों में व्यक्त किया है, ''अध्यापक के व्यक्तिगत जीवन के बिना शिक्षा संभव नहीं। बालक को बचपन से ही ऐसे व्यक्ति के पास रहना चाहिए, जिसका चरित्र धधकती हुई अग्नि के समान हो और उसे उच्चतम ज्ञान के जीवित उदाहरण के रूप में उसे अपनी दृष्टि के सामने रखना चाहिए। हमारे देश में शिक्षण प्रदान करने का कार्य सदा उन लोगों ने किया है, जो त्याग का जीवन व्यतीत करते थे। आज भी ज्ञान प्रदान का दायित्व त्यागी विद्वानों के कंधों पर आना चाहिए।''
- प्राचीन भारत में छात्र का नित्य-प्रति का यह कर्तव्य होता था कि वह घर-घर जाकर भिक्षा मांगे। यह सामान्य भिक्षा वृत्ति से सर्वथा भिन्न थी। वे घर-घर जाकर एक सार्वजनिक कार्य के लिए लोगों से अंशदान मांगते थे, क्योंकि इस प्रकार वे स्कूल की सहायता करते थे। रोज भिक्षा मांगने का यह लाभ होता था कि छात्र में अहं भाव का ह्रास हो जाता था और विनम्रता, मानवीयता तथा त्याग की भावना पैदा होती थी। स्वावलंबन और आत्मविश्वास का भाव उत्पन्न होता था। राधाकुमुद मुखर्जी के शब्दों में, ''सांसारिकता से विमुक्त इन युवकों का सांसारिक लोगों के साथ यह संपर्क, आश्रम में छात्रों के ध्यान-धारण के जीवन के अतिरेक में सुधार की दृष्टि से बहुत मूल्यवान था। उनका समाज से अलग रहना और साथ ही समाज व जीवन में अधिक समन्वय स्थापित करना, मानो इससे पुरुष और प्रकृति अथवा जीव और जगत् में समरसता उत्पन्न होती थी।''

उपनिषद् में शिक्षा के तीन चरण बताए गए थे—प्रथम, श्रवण अर्थात् ग्रंथों और अध्यापक द्वारा

कहे गए शब्दों का श्रवण करना, दूसरा चरण था—मनन अर्थात् पढ़ाए गए विषय का चिंतन करना, क्योंकि मनन एवं चिंतन से विद्यार्थी को पढ़ाए गए विषय की जो उपलब्धि प्राप्त होती है, वह बौद्धिक अनुभूति से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। परंतु यह पर्याप्त नहीं थी। तीसरे चरण में छात्र को ध्यानावस्था का अभ्यास करना होता था, क्योंकि मात्र ध्यान से ही जीवन सत्य की उपलब्धि हो सकती थी। ऋषियों ने वह स्पष्ट कर दिया था कि केवल वेदों के अध्ययन से, ग्रन्थों के अत्यधिक ज्ञान से अथवा बौद्धिक अभ्यास से आत्म-साक्षात्कार नहीं हो सकता। निरे बौद्धिक ज्ञान की सीमाओं को छंदोग्य उपनिषद् में एक विशेष उदाहरण के द्वारा स्पष्ट किया गया है। नारद ने चारों वेद, इतिहास पुराण, जीव विज्ञान, गणित, राजनीति, तर्कशास्त्र, धर्मशास्त्र, ध्वनिशास्त्र, सैन्यशास्त्र, नक्षत्रविज्ञान, सर्प दंशोपचार विज्ञान, नृत्य, संगीत एवं वाद्य संगीत तथा आयुर्वेद आदि अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त किया था और यद्यपि वह वेद, शास्त्रों, विज्ञान और कला का ज्ञाता था, परंतु उन्हें दु:ख पर विजय प्राप्त नहीं हुई। इसलिए उसने सनतकुमार से प्रार्थना की। इस पर सनतकुमार ने कहा कि नारद ने अब तक जो ज्ञान प्राप्त किया है, वह सर्वथा निरर्थक है। इस तरह प्राचीन भारत में इस बात पर बल दिया गया कि आत्मानुभूति प्राप्त करनी चाहिए और आंतरिक सत्य के प्रकाश को आत्मसात् करना चाहिए।

इस तरह प्राचीन भारत में इस बात पर बल दिया गया कि आत्मानुभूति प्राप्त करनी चाहिए और आंतरिक सत्य के प्रकाश को आत्मसात् करना चाहिए।

चित्रकूट वनांचल पर्यावरण से घिरा हुआ है। विश्वविद्यालय में आदर्श गुरु होंगे। छात्रों को पठन-पाठन में रुचि लेनेवाले विद्यार्थियों के रूप में परिवर्तित किया जाएगा। प्राचीन काल में गुरुओं को राजाओं से सहायता प्राप्त होती थी। विश्वविद्यालय को यह आशा होगी कि आधुनिक शासक और शासक-निर्माता अर्थात् राजनैतिक उच्च वर्ग और समस्त भारतीय शासन पद्धति इसे अधिकतम सहायता देगी और उसे आदर्श ग्रामीण विश्वविद्यालय के रूप में विकसित होने के लिए पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करेगी। विश्वविद्यालय की यह महत्त्वाकांक्षा है कि उसे नालंदा और तक्षशिला की परंपरा में स्थान प्राप्त हों।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था व संस्कृति की एकात्मता के बारे में दृष्टि का अभाव

ऐसे युग में जब सामान्य विश्वविद्यालयों और भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान(आई.आई.टी.) में प्रदान की जानेवाली शिक्षा नागरिक जीवन पर आधारित वाणिज्यक सभ्यता की आवश्यकताओं की पूर्ति में लगी हुई है, देहात के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन से संबंधित ज्ञान का अभाव होता जा रहा है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के उत्तरोतर पतन और ग्रामीण संस्कृति के विघटन का ही परिणाम है कि स्वदेशी ज्ञान की परंपरा सर्वथा नष्ट हो जाने का खतरा पैदा हो गया है। इसी कारण स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रारंभिक काल में राधाकृष्णन आयोग ने ग्रामीण विश्वविद्यालयों की आवश्यकता को अनुभव किया, ताकि वे देहात की सेवा कर सकें और जीवन

के सभी क्षेत्रों में ग्रामीण समस्याओं का समाधान कर सकें। आयोग ने मोटे तौर पर यह समझ लिया था कि कृषि, वनारोपण, पशुपालन, देहात की सफाई, जल प्रबंध, आवास यातायात और देहाती परिस्थितियों में अनेक प्रकार से ऊर्जा के अनवाणिज्यिक उत्पादन आदि से संबंधित विविध समस्याओं का हल समग्रता में समन्वित ढंग से एवं ग्रामीण सांस्कृतिक परंपराओं के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खोजना होगा।

यह बात उल्लेखनीय है कि सरकार ने पिछले 40 वर्षों में राधाकृष्णन आयोग की ग्रामीण विश्वविद्यालयों से संबंधित सिफारिशों को लागू करने की दिशा में कुछ नहीं किया। संभवतः सरकार की यह धारणा रही कि कृषि विश्वविद्यालय और पशु चिकित्सा, भेड़ पालन, मत्स्य पालन आदि विषयों में शोध करनेवाले अनेक निकायों के विद्यमान होने से ग्रामीण विश्वविद्यालयों की कोई आवश्यकता नहीं रही। स्पष्टतः इस अभाव का मुख्य कारण यह है कि सरकार इस अनुभूति से सर्वथा शून्य थी कि देहात की एकीकृत संस्कृति की अपनी निजी विशेषता है।

विशेष रूप से भारत में ग्रामों के पतन की स्थिति उत्पन्न होने का अमरीकी प्रशासक एवं शिक्षाविद् आर्थर अरनेस्ट मॉरगन इस प्रकार से उल्लेख करते हैं—

सत्तारूढ़ लोगों का यह स्वभाव है कि वे देहात को लूटते हैं और नष्ट करते हैं। सरकार और शेष समाज ने कराधान और ब्याज वसूली द्वारा देहात का घोर शोषण किया है। ग्रामवासी जो राष्ट्र को अन्न और वस्त्र देते हैं, स्वयं उनके पास छप्पर की झोंपड़ी, फटे वस्त्रों और सोने के लिए चटाई तथा काम करने के लिए साधारण औजारों के सिवा कुछ नहीं होता है और वे दीन-हीन की सी स्थिति में जीवनयापन करते हैं। ऐसा शोषण राष्ट्र की धन-संपत्ति और सभ्यता-संस्कृति का आधार बन गया है। मॉरगन ने भूमि के स्वामित्व, कर और भूमि से संबंधित कानूनों में मूलभूत परिवर्तनों की आवश्यकता पर बल दिया है। भूमि पर करों को अधिकाशंतः समाप्त कर देना चाहिए या उससे प्राप्त आय को ग्रामवसियों को लौटा देना चाहिए अथवा उनके हित लाभ के लिए उसका व्यय होना चाहिए। उन्होंने देहात में विद्यमान 'जातियों के कटघरों' का भी उल्लेख किया और जिन लोगों के साथ ग्रामवासियों का वास्ता पड़ता है, उनमें व्याप्त भ्रष्टाचार का भी वर्णन किया है और बताया कि यह सदियों की गुलामी और शोषण का परिणाम है।

विश्वविद्यालयों का मुख्य काम ज्ञान का सृजन करना है। नए ज्ञान के सृजन के लिए, प्रत्येक क्षेत्र की आर्थिक क्षमता के पूर्ण विकास के लिए, समाज के प्रत्येक वर्ग को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए और निचले स्तर पर जन-सामान्य को लोकतंत्र की शक्ति प्रदान करने के लिए मूलभूत सिद्धांत है—अपने पर्यावरण को जानना अपने क्षेत्र की मिट्टी की विशेषताओं को जानना, भूतल के नीचे के भौगोलिक आकार-प्रकार को समझना, स्थानीय भूतलीय जल संसाधनों के गुणों और तत्त्वों को जानना, स्थानीय पौधों और (पशुओं जिनमें पक्षी, कीड़े और रेंगनेवाले जंतु सम्मिलित है) स्थानीय बीमारियों, परंपरागत औषधीय जड़ी-बूटियों के प्रयोग को समझना आदि जनसाधारण के कल्याण के लिए आवश्यक है। ऐसा क्षेत्र आधारित ज्ञान पाठ्य-पुस्तकों में नहीं

मिलता। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक क्षेत्र का गहन अध्ययन किया जाए, जिसके लिए अन्य संस्थाएं प्रयत्न नहीं करतीं। ग्रामीण विश्वविद्यालय और जनता कॉलेज इस ज्ञान के विकास के उत्तरदायित्व को समझ सकते हैं और विश्व के ज्ञान में वृद्धि के लिए अपना अंशदान कर सकते हैं। स्थानीय प्रकल्पों को, जो जन कल्याण के लिए आवश्यक है, इस प्रकार के अध्ययन से लाभ प्राप्त हो सकता है, चूंकि स्थानीय प्रकल्प अधिकाधिक लोगों में रुचि जगाने और उद्यम की भावना पैदा करने के साधन हैं। ये कॉलेज और विश्वविद्यालय इस कार्य के लिए बहुत शक्तिशाली साधन हैं और इस प्रकार राजनैतिक लोकतंत्र को सबल और सशक्त रख सकते हैं।

यह सच है कि राष्ट्र के राजनैतिक विधि-विधान पर बहुत कुछ निर्भर करता है। यदि समस्त शक्तियों को केंद्रीभूत करने की प्रवृत्ति देश की प्रभावी राजनैतिक प्रवृत्ति हो, तो इन संस्थाओं को निर्बल बनाकर इन्हें केंद्रीय शक्ति का आधार-स्तंभ बनाया जा सकता है, परंतु यदि इन विश्वविद्यालयों में से कुछ अपने लक्ष्य के प्रति सत्यनिष्ठ रहे तो वे लोगों को उनके अधिकार दिलाने के लिए शक्तिशाली सुधारक बल के रूप में कार्य कर सकते हैं।

आधुनिक युग के महान् चिंतकों द्वारा निर्धारित शिक्षा के उद्देश्य

सामान्यतः शिक्षा की परिभाषा देते हुए कहा जाता है कि शिक्षा मनुष्य की शक्तियों अर्थात् शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक शक्तियों के सर्वांगीण विकास की प्रक्रियाओं का नाम है। शिक्षा, हृदय और बुद्धि (अर्थात् भावना और बौद्धिकता) का विकास करती है, विश्लेषणात्मकता और स्वयं प्रकाश ज्ञान की शक्ति में सामंजस्य स्थापित करती है, अर्थात् मानव की वैज्ञानिक और आध्यात्मिक शक्तियों में सामरस्य उत्पन्न करती है।

श्रीअरविंद का कथन है—''वही शिक्षा सच्ची एवं प्राणवान हो सकती है, जो मनुष्य में विद्यमान समस्त समानताओं को पूर्णतया विकसित कर उनके पूरे लाभ के लिए उपयोग करने में सहायता दे और इसके साथ ही उसका अपने समाज, जिसका वह स्वयं एक अंग है, के मन प्राण और आत्मा के साथ सामंजस्य स्थापित करने में सहायता करे और इस से आगे उसका संबंध मानवता के महाप्राण मन और आत्मा के साथ स्थापित हो जाए, जिसका वह स्वयं और समाज एवं राष्ट्र पृथक् होते हुए भी, अविभाज्य अंश है।'' श्रीअरविंद के 'राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति' नामक ग्रंथ में 'शरीर का पूर्ण विकास' शीर्षक एक अध्याय है, जिसमें उन्होंने कहा है, 'अंतिम उद्देश्य है मानव का पूर्ण विकास, जिसमें शरीर को अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह धर्म की उपलब्धि का माध्यम है और शिक्षा भौतिक जगत् की परिधि में इस धरती पर दिव्य आध्यात्मिक जीवन के अवतरण में सहायक होती है।

चित्रकूट विश्वविद्यालय में आदर्श गुरु होंगे

छात्रों में पठन-पाठन के प्रति रुचि उत्पन्न की जाएगी। चित्रकूट चरित्र-निर्माण और मनुष्य-निर्माण करनेवाली शिक्षा पर बल देगा। श्री अरविन्द ने कहा है कि जो सक्षम एवं बुद्धि स्पष्ट,

तार्किक एवं शांत है, जिसके सभी अंगों में समान शक्ति और सहज कार्यशीलता है, जिसके मन में प्रकृति की मूलभूत सच्चाइयों का ज्ञान संचित है, जिसके मानसिक आवेग और उद्वेगों को प्रबल इच्छाशक्ति ने संपन्न और स्वस्थ बना दिया है और जो अपने कोमल अंतःकरण का दास है, जिसने सब बुराइयों से घृणा करना सीखा है और जो श्रेष्ठ लोगों का आत्मवत् सम्मान करता है, केवल ऐसा व्यक्ति ही मेरी दृष्टि में उदार शिक्षा द्वारा शिक्षित हुआ है, क्योंकि उसका प्रकृति के साथ पूर्ण सामंजस्य है।

इससे पूर्व हमने स्वामी विवेकानंद के दर्शन का उदाहरण दिया था, जिसमें भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति में आदर्श अध्यापकों के महत्त्व के बारे में उल्लेख किया गया था। उसमें शिक्षा क्या है और शिक्षा क्या नहीं है, के बारे में उन्होंने कहा, ''शिक्षा जानकारियों का ढेर नहीं है, जो मस्तिष्क में एकत्र होकर उपद्रव मचाता रहे और जिसे आप जीवन भर पचा न पाएं। शिक्षा का अंतिम उद्देश्य है मनुष्य का निर्माण। हम ऐसी शिक्षा चाहते हैं, जिसके द्वारा चरित्र का निर्माण हो, मन की शक्ति का विकास हो, बुद्धि का विस्तार हो और जिसके द्वारा मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सके। हमारा देश अब यह चाहता है कि फौलाद जैसी मजबूत मांसपेशियां और इस्पात जैसी शक्तिशाली नसें प्राप्त हों, प्रबल इच्छाशक्ति प्राप्त हो, जिसका कोई सामना न कर सके, जो विश्व के रहस्यों और गोपनीय तत्त्वों तक पहुंचने की पैनी दृष्टि रखता हो और किसी भी प्रकार अपने प्रयोजनों की पूर्ति कर सके, भले ही उसकी खातिर उसे सागर की तह तक पहुंचना पड़े या मृत्यु का आमने-सामने मुकाबला करना पड़े।''

शिक्षा के उद्देश्यों के संबंध में महान् चिंतकों के उपरोक्त कथन ही हमारे पथ के प्रकाश-स्तंभ बनेंगे। ये उन लोगों की धारणाओं का खंडन करते हैं, जो इस बात पर बल देते हैं कि शिक्षा व्यवसाय उन्मुख होना चाहिए। वास्तव में शिक्षा को एक दो व्यवसायों तक सीमित करने में आजीविका की दृष्टि से भी कुछ कठिनाइयां हैं, क्योंकि व्यवसायों पर आधारित काम-धंधों के अवसर की उपलब्धि में भी उतार-चढ़ाव आता रहता है। यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है कि व्यापक आधारवाली शिक्षा द्वारा मन-बुद्धि का विकास जीवन के सभी क्षेत्रों में, यहां तक कि प्रौद्योगिक विषयों में भी नए मार्ग खोजने में सहायता देता हैं सच्ची उदार शिक्षा मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का अधिक मुकाबला करने में सहायता देती है।

चित्रकूट चरित्र-निर्माण और मनुष्य निर्माण करनेवाली शिक्षा पर बल देगा, यद्यपि इस बात पर भी आवश्यक बल देगा कि अपना रोजगार स्वयं स्थापित करने की विद्यार्थी की क्षमता को विकसित किया जाए।

चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय के समक्ष प्रश्न

ग्रामीण समाज की जो रूप-रेखा राधाकृष्णन आयोग और आर्थर अरनेस्ट मॉरगन ने प्रस्तुत की है, उससे निम्नलिखित प्रश्न उत्पन्न होते हैं—

- चूंकि इस ग्रामीण विश्वविद्यालय में नगर पर आधारित सामान्य शिक्षा की अनेक विशेषताएं

निश्चित रूप से बनी रहेंगी और इसके साथ ही कृषि विश्वविद्यालयों और भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों (आई.आई.टी.) की कुछ विशेषताएं भी इनमें समाविष्ट हो जाएंगी, इसलिए यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इसका स्वरूप क्या हो, ताकि यह इतना अधिक बड़ा न हो जाए कि इसका प्रबंध करना कठिन हो जाए। यदि हम इसके कुछ उपविषयों को हटा दें तो कुछ गवेषणाएं, जिनमें विज्ञान की उन शाखाओं के सहयोग की आवश्यकता होगी, कैसे की जा सकेंगी?

- चूंकि विशेषीकरण के अतिरेक और उसके परिणामस्वरूप मानव एवं समाज संबंधी समस्याओं के अज्ञान से उत्पन्न होनेवाली हानियों को दूर करने के लिए आवश्यक है कि विद्यार्थी को स्वस्थ उदार शिक्षा-अर्थात् साहित्य, इतिहास, दर्शन, नीति शास्त्र, पर्यावरण शास्त्र, अर्थशास्त्र, पोषक आहार शास्त्र, शरीर विज्ञान, धर्मों का मोटे तौर पर तुलनात्मक अध्ययन आदि प्रदान किया जाए, साथ ही विद्यार्थी की रुचि के अनुरूप व्यावसायिक शिक्षा की भी आवश्यकता है, तथा यह भी आवश्यक है कि विद्यार्थी पर्याप्त समय खेतों और कार्यशालाओं में लगाए तो फिर प्रश्न उत्पन्न होता है कि किस प्रकार विविध विषयों और अनेक प्रकार की गतिविधियों के लिए विश्वविद्यालय एवं कॉलेज के समस्त शिक्षा काल का विभाजन किया जाए। क्या इन अनेक पक्षों से युक्त शिक्षा के लिए पर्याप्त समय मिल सकेगा?
- वे कौन से विभाग हैं, जो भले ही दूसरे प्रकार के विश्वविद्यालयों में सहायक विभागों के रूप में भी विद्यमान नहीं हैं, परंतु ग्रामीण विश्वविद्यालय के लिए आवश्यक हैं?
- चूंकि ग्रामीण विश्वविद्यालयों के अध्यापकों और गुरुओं का जीवन-स्तर आस-पास के समाज के जीवन स्तर से बहुत ऊंचा नहीं होना चाहिए तो क्या हम विश्वविद्यालय के अध्यापकों को उन वेतनमानों पर नियुक्त कर सकते हैं, जो आजकल प्रचलित हो चुके हैं?
- शिक्षा सेवाओं में यदि ऊंचे पदों की आकांक्षा रखनेवाले शिक्षक इस विश्वविद्यालय के सादगी के जीवन को स्वीकार नहीं करते, जैसा कि देहात के लोगों की सेवा के प्रति सहज भाव न रखनेवाले लोगों के लिए स्वाभाविक है तो हमें अपने विभागों के लिए क्या नीति अपनानी होगी?
- हमारे विश्वविद्यालय में विशेषता प्राप्त लोगों की कमी को दूर करने के लिए, अपने विद्यार्थियों को सर्वोत्तम शिक्षा प्रदान करने के लिए और विश्वविद्यालय परिसर और उसके आस-पास शक्तिशाली बौद्धिक वातावरण निर्माण करने के लिए हमें क्या प्रयत्न करने चाहिए?
- शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा के संदर्भ में यह विश्वविद्यालय राष्ट्र द्वारा किस प्रकार के मूल्यांकन की अपेक्षा करता है?
- यदि परीक्षाएं नही होंगी तो स्कूल कॉलेज और विश्वविद्यालय किस प्रकार विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र प्रदान करेंगे, ताकि जो लोग दूसरे क्षेत्रों मे जाना चाहते हैं, उन्हें कोई हानि न हो?
- विश्वविद्यालय के परिसर में हमें पूर्व प्राथमिक (अर्थात् पूर्व बेसिक), ग्रामीण प्राथमिक (अर्थात् बेसिक) और ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों, ग्रामीण महाविद्यालय और ग्रामीण विश्वविद्यालय

के स्नातकोत्तर विभागों की स्थापना करना है। इसके लिए क्या प्रक्रिया अपनानी होगी? क्या इन सबकी स्थापना एक साथ की जाए।

पूर्व स्थापित स्कूलों और कॉलिजों की शृंखला पहले से नगर आधारित सामान्य शिक्षावाले विश्वविद्यालयों एवं स्कूल बोर्डों के साथ संबद्ध है। उन संस्थाओं की स्थिति में कैसे सुधार एवं परिवर्तन लाया जा सकता है?

शैक्षणिक व्यवस्था की दुर्दशा

आजादी के पचास साल बीत जाने पर भी अंग्रेज शिक्षाशास्त्री मैकॉले को दोष देने की आदत कायम है। मैकॉले भारत भक्त नहीं, अंग्रेजों के साम्राज्य का अभिन्न अंग था। उसने वही किया जो साम्राज्य के चालक उससे चाहते थे। किंतु हमारे शिक्षा-शास्त्री हजार साल गुलामी में रहे अपने नव स्वतंत्र देश के लिए आजादी के पचास साल में भी उपयुक्त शिक्षा पद्धति विकसित क्यों नहीं कर पाए? दूसरों को दोष देकर क्या अपने लिए उपयुक्त शिक्षा पद्धति उपलब्ध हो पाएगी?

अब तक देश के सभी बच्चों की शिक्षा का प्रबंध संभव नहीं हुआ है और संभावना भी दिखाई नहीं देती। इसके बावजूद बड़ी-बड़ी आबादियों में अधिक शुल्क लेनेवाले पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक विद्यालयों की बाढ़ आई है। वर्तमान काल में माता-पिता स्वयं अपने बच्चों का विकास करने की मानसिकता ही नहीं रखते। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर महंगे विद्यालय चलाना कमाई का धंधा बन गया है। नई पीढ़ी में सामाजिक जीवन-दृष्टि विकसित करने में ऐसे विद्यालय सहायक नहीं, बाधक बन रहे हैं। वे बच्चों को व्यक्तिनिष्ठ बनाते हैं।

बाल्यावस्था जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काल

कुटुंब के बच्चे चलने-फिरने की क्षमता पाते ही घर के बाहर जाने के लिए मचलते हैं। साधारणतः गांव के बच्चे पास-पड़ोस में जाकर जो भी वस्तु हाथ लगे, उसे ही लेकर खेलते-कूदते हैं। उन्हें गंदगी की समझ नहीं होती। नूतन संतान के विकास की दृष्टि से यह स्थिति चिंताजनक है।

बच्चों की यह आयु विकास की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। अभिभावक इस तथ्य से पूर्णतः अनभिज्ञ हैं। बच्चों की आंखें और कान स्वभावतः सदैव जानकारी बटोरते रहते हैं। कोई भी माता या पिता दावा नहीं कर सकता कि उन्होंने अपने बच्चे को बोलना सिखाया है। बच्चे अपनी श्रवण शक्ति एवं जन्मजात बुद्धि के कारण संपर्क में आनेवालों की बातें सुनकर अपने आप बोलने लगते हैं। संज्ञा, विशेषण एवं क्रिया पद का उपयोग उन्हें सिखाना नहीं पड़ता। इसी एक बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि खेलते-कूदते बच्चों का यह जीवनकाल उनके विकास की दृष्टि से कितना महत्त्वपूर्ण है। इस आयु में उनकी नजर में क्या आना चाहिए और कान में क्या पड़ना चाहिए, इसकी चिंता करना कुटुंब के सदस्यों तथा आबादी के महिला-पुरुषों का दायित्व है। माता-पिता तथा आबादी के नागरिकों को इस दायित्व की अनुभूति कराने

की ओर कोई भी ध्यान नहीं देता, परिणामस्वरूप नई पीढ़ी असामाजिक एवं गैर-जिम्मेदार बनती जा रही है। सामाजिक जीवन की दुर्दशा का यह भी एक प्रमुख कारण है।

मानवीय शिक्षा पद्धति

उपर्युक्त आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए नई पीढ़ी का समुचित विकास करने के लिए दीनदयाल शोध संस्थान ने कार्य प्रारंभ किया है। चित्रकूट के चारों ओर के गांवों की आबादियां छोटी-छोटी हैं। इन आबादियों के छोटे-से-छोटे चलते-फिरते बच्चे भी सहज में ही किसी एक मनोरंजक स्थान पर अपने आप पहुंच सकते हैं। समाज स्वास्थ्य शिल्पियों ने ग्राम समूह केंद्रों पर इस दिशा में कदम बढ़ाया है। विद्यालयों के पास-पड़ोस में छोटा-बड़ा खुला मैदान बेकार पड़ा आसानी से मिल जाता है। ऐसे मैदान को ग्रामसभा की सलाह से बालोद्यान के रूप में विकसित किया जा रहा है। बच्चों के लिए वहां विभिन्न प्रकार के खेलों के साधन जुटाए जा रहे हैं। गांव के बच्चे वहां आकर खेलने में आनंद अनुभव करने लगे हैं। समाज स्वास्थ्य शिल्पियों ने इन मैदानों में बच्चों द्वारा ही फलों एवं फूलों के पौधे लगाना भी प्रारंभ किया है। इससे बच्चों में सृजनशीलता जग रही है। बच्चों की प्रसन्नता बढ़ रही है। उनकी एकाग्रता की क्षमता विकास पा रही है। उत्साहवर्धक बात है कि गांव के बड़े-बुजुर्ग भी इस काम में सहयोग देने लगे हैं। इस कार्यक्रम के कारण बिना प्रचार एवं दबाव के गांव में सामूहिक जीवन का वातारण पनप रहा है। नूतन संतान के विकास का काम ठीक दिशा प्राप्त कर रहा है।

सार्थक शिक्षा पद्धति का विकास

स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद शिक्षा पद्धति की आवश्यक नवरचना करना सरकार एवं समाज का प्राथमिक दायित्व था किंतु राष्ट्र की इस मूलभूत आवश्यक पूर्ति के लिए प्रयास की दिशा आज तक निश्चित नहीं हो पाई। इसी कारण शिक्षा पद्धति के विषय में उपयुक्त दिशा का अभाव बना हुआ है। राष्ट्रोन्नति की दृष्टि से इस कमी को दूर किए बिना अपेक्षित प्रगति संभव नहीं हो सकती।

विद्यालयों की चार दीवारों में सीमित रहकर शिक्षा का मानवीय एवं सामाजिक रूप निखर नहीं सकता। कक्षाओं में जो पढ़ाया जाता है, उसका व्यावहारिक जीवन में तालमेल नहीं रहता। बड़ी-बड़ी उपाधियां पाने के बाद भी युवक-युवतियों के आचरण में समाज एवं देश के प्रति वही व्यवहार दिखाई देता है, जो समाज के सामान्य लोगों में प्रचलित है। इतना ही नहीं, उच्च शिक्षा प्राप्त युवजन इतने अधिक व्यक्तिनिष्ठ होते जा रहे हैं कि उनके माता-पिता को भी वृद्धावस्था की असहाय अवस्था में अपनी कमाऊ संतान के साथ गुजारा करने में कठिनाई अनुभव होने लगी है। इससे स्पष्ट है कि प्रचलित शिक्षा पद्धति नई पीढ़ी में मानवीय दायित्व-बोध के स्थान पर अमानवीय भावना बढ़ रही है। ऐसी शिक्षा सर्वव्यापी बन भी गई तो देश के उज्ज्वल भविष्य की अपेक्षा फलदायी नहीं होगी।

मानवीय शिक्षा पद्धति के विकास का एकमेव माध्यम है अध्यापन में संलग्न शिक्षक वर्ग। समाज के बालक-बालिकाएं शिक्षा ग्रहण करने के लिए बाल्यकाल से ही उसके पास पहुंचते हैं। आवश्यकता केवल इतनी ही है कि अध्यापन में संलग्न महिला-पुरुष समझें कि युगानुकूल राष्ट्र नवरचना का दायित्व उन्हीं का है और उन्हें ही निभाना होगा। दायित्व की अनुभूति ही व्यक्ति में आवश्यक क्षमताएं विकसित करती है।

हम धार्मिक महानुभावों के प्रयासों को देखें और समझें। धर्मनिष्ठ महात्मागण सदियों से कथा-कीर्तन करते आ रहे हैं। उनकी कथाओं को हजारों की संख्या में भक्तगण श्रद्धा के साथ सुनते हैं, किंतु इन श्रोताओं के व्यावहारिक जीवन में कथा का सार प्रतिबिंबित नहीं होता। अन्यथा अपने समाज का इतना अधिक नैतिक पतन न होता। इसके मूल कारण को समझकर ही हमें अपनी शिक्षा-पद्धति की पुनर्रचना करनी होगी। उपदेश देने या पढ़ाने मात्र से छात्र-छात्राओं पर अपेक्षित परिणाम नहीं होते। वस्तुतः उपदेशकों एवं पढ़ानेवालों का व्यक्तिगत, कौटुंबिक एवं सामाजिक जीवन उपदेशों के अनुसार होना आवश्यक है।

इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए अलग से विद्यालयों की मालिका खड़ी करने से काम नहीं चलता। यह अनेक प्रयासों का निष्कर्ष है। प्रचलित विद्यालयों में कार्य करने से ही उपयुक्त एवं सार्थक शिक्षा पद्धति विकसित हो सकती है। इसी कारण शोध संस्थान ने पांच सौ चयनित ग्रामों के बालक-बालिकाएं जिन-जिन विद्यालयों में पढ़ रहे हैं, उन सभी विद्यालयों को समुचित शिक्षा पद्धति विकसित करने की प्रयोगशालाएं माना है।

अपेक्षित शिक्षा पद्धति विकसित करने के लिए अध्यापन कार्य में संलग्न महिला-पुरुषों के प्रति प्रचलित धारणा बाधक बनी हुई है। अध्यापन में संलग्न वर्ग में वेतनभोगी कर्मचारी होने की मानसिकता छात्र-छात्राओं में न मानवीयता विकसित कर पाती है, न सामाजिक भावना ही जगा सकती है। छात्र-छात्राओं के मन में पढ़ानेवालों के प्रति आत्मीयता एवं आदर की भावना रहे बिना वे उनसे सामाजिक दायित्व की उदात्त प्रेरणा ग्रहण नहीं कर सकते। अभिभावकगण एवं सामान्य जन, जिन्हें वेतनभोगी कर्मचारी मानते हों, उनके प्रति विद्यार्थियों में आदर की भावना कैसे पनप सकेगी? आजादी के गत पचास वर्षों में इस मूलभूत पहलू पर ध्यान ही नहीं दिया गया। फलस्वरूप विद्यालयों से विभिन्न विषयों की उपाधियां प्राप्त प्रतिभाशाली एवं कर्तृत्ववान युवक-युवतियां अपना जीवन समृद्धशाली बनाने के लिए विदेशों में जाकर अपनी प्रतिभाएं बेच रहे हैं। उनके जीवन में न देशभक्ति है, न सामाजिक दायित्व की भावना है। सामाजिक भावना शून्य प्रचलित शिक्षा पद्धति का ही यह दुष्परिणाम है।

दीनदयाल शोध संस्थान के समाज स्वास्थ्य शिल्पियों में उपर्युक्त वस्तुस्थिति को देखकर व्यथा है। वे अपने-अपने कार्य क्षेत्र में चलनेवाले सभी विद्यालयों में पढ़ा रहे महिला-पुरुषों से संपर्क प्रस्थापित कर रहे हैं। उनके प्रति स्वयं के मन में आदरयुक्त भावना संजोए हुए हैं। क्षेत्रीय जनजीवन के विकास में उनका सहयोग पाने का प्रयास कर रहे हैं। खुशी की बात है कि इस कार्य के लिए अध्यापक-अध्यापिकाओं की अनुकूलता बढ़ रही है। इस विधि से अध्यापन में

संलग्न वर्ग के प्रति आबादियों में आदर बढ़ना अवश्यंभावी है। फलस्वरूप छात्र-छात्राओं में भी उनके प्रति आदर की भावना विकसित होगी।

आकलन प्रक्रिया एक प्राकृतिक वरदान

इसी संदर्भ में एक और पहलू की ओर ध्यान देना आवश्यक है। मानव जीवन चार काल खंडों में व्यतीत होता है। उन्हें शैशव काल, अध्ययन काल, कर्तृत्व काल एवं वृद्धत्व काल कहा जा सकता है। प्रत्येक काल खंड की अवधि सीमित है, किंतु मानव की आकलन प्रक्रिया गर्भकाल से जीवन के अंतिम क्षण तक कार्यरत रहती है। मानव की यही विशेषता उसके जीवन के चारों काल खंडों में तालमेल बनाए रखने में समर्थ हो सकती है। इस आकलन प्रक्रिया के तीन आधार हैं— आंखें, कान और मस्तिष्क। केवल देखने या सुनने मात्र से आकलन प्रक्रिया पूर्ण नहीं होती। देखी हुई और सुनी हुई बात मस्तिष्क पर अंकित होना आवश्यक होता है। तभी आकलन प्रक्रिया पूर्ण होती है। इस प्राकृतिक वरदान की बहुत कम लोगों को अपने आप अनुभूति होती है। बाल्यकाल में ही इस जन्मजात उपलब्धि को क्रियाशील बनाना आवश्यक है। उसी से उनकी स्मरणशक्ति एवं गुण ग्राहकता पनपती है। इस आवश्यकता की पूर्ति बच्चों के माता-पिता के सहयोग से अध्यापक वर्ग ही कर सकता है। कारण, उसमें ही इस प्राकृतिक वरदान को समझने और विकसित करने की योग्यता संभव है।

नूतन नागरिक जन्म कुटुंबों में पाते हैं, पढ़ते विद्यालयों में हैं और जीवन बिताते हैं समाज में। मानव जीवन के इन तीनों अंगों में परस्परपूरकता बनाए रखना आवश्यक है। कारण, परस्परपूरकता ही व्यक्तिगत, कौटुंबिक एवं सामाजिक जीवन के उत्कर्ष का आधार है। वर्तमान काल में उसी का अभाव है। परिणामस्वरूप व्यक्ति, कुटुंब एवं समाज अधिकाधिक दुर्दशाग्रस्त होते जा रहे हैं। इससे मुक्ति पाने के लिए इन तीनों अंगों में परस्परपूरकता विकसित करना ही एकमेव उपाय है।

उपर्युक्त कार्य करने की सुविधा एवं क्षमता केवल अध्यापन कार्य में संलग्न महिला-पुरुषों में ही संभव है। वे ही नई पीढ़ी के व्यक्तित्व विकास के आधार स्तंभ हैं। नूतन नागरिक बाल्यावस्था से अध्ययन के लिए उन्हें ही सौंपे जाते हैं। इन बच्चों के माध्यम से गुरुजन उनके कुटुंबियों से संपर्क प्रस्थापित कर सकते हैं। बच्चों के समुचित विकास के लिए जहां वे कौटुंबिक वातावरण को अनुकूल बना सकते हैं, वहां वे ही अभिभावकों के माध्यम से सामाजिक जीवन में भी तालमेल विकसित कराने का काम कर सकते हैं। यही राष्ट्र-नवरचना का मूलभूत कार्य है, जो अध्यापक वर्ग के लिए ही संभव है। वस्तुतः पुरातनकाल में गुरुजन यह दायित्व निभाते रहे हैं। तभी चीन के प्रवासी ह्वेनसांग को भारत की समाज-रचना प्रभावित कर पाई थी।

वर्तमान काल में ग्रामवासियों में मानवीयता अधिक मात्रा में पाई जाती है। उनमें आर्थिक आकांक्षाएं सीमित होती हैं। रचनात्मक उन्नति की दिशा में बढ़ने की ललक उनमें अधिक है। परस्पर सहयोग करने में उन्हें हिचक नहीं होती। फलस्वरूप ग्रामीण अंचलों में उपर्युक्त कार्य

कर पाना अधिक सुगम है। अतः प्रारंभिक अवस्था में ग्रामीण अंचल में ही व्यापक स्तर पर कार्य किया जा रहा है।

नगरीय मानसिकता इससे भिन्न है। फिर भी नगरों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसी कारण चित्रकूट में सुरेंद्रपाल ग्रामोदय विद्यालय के माध्यम से शहरी वातावरण में भी कार्य किया जा रहा है। इसमें नगरीय मानसिकता से प्रभावित लोगों के बालक-बालिकाएं अधिक संख्या में शिक्षा पा रहे हैं। विद्यालय का दृश्य स्वरूप नगरीय अवश्य है किंतु शिक्षा पद्धति वही अपनाई गई है, जो ग्रामीण अंचल में प्रचलित की जा रही है।

आजादी की आधी सदी में उन्नति के स्थान पर अपना समाज अधिकाधिक अवनति की ओर बढ़ रहा है। कालबाह्य रूढ़ियों से मुक्ति पाने के स्थान पर राजनेताओं द्वारा उन्हीं को उभारकर राजसत्ता हथियाने के हथकंडे अपनाए जा रहे हैं। जाति-व्यवस्था ने जातिवाद का खतरनाक रूप ले लिया है। सामाजिक जीवन अधिकाधिक संघर्षमय एवं हिंसक बनता जा रहा है।

1857 में प्रज्वलित स्वातंत्र्य प्राप्ति की ज्वाला ने अंग्रेजों को सतर्क किया था। हिंदू-मुसलमानों में द्वंद्व मचाए बिना भारत में अपना साम्राज्य बचा पाना संभव नहीं, इसकी उन्हें अनुभूति हुई थी। अपने साम्राज्य को बचाने के लिए उन्होंने हिंदू-मुसलमानों में द्वंद्व का षड्यंत्र रचा। हमारे नेतागण उसके शिकार बने। हिंदू-मुसलिम आधार पर देश बंट गया। अंग्रेज चले गए किंतु स्वतंत्र भारत में भी सत्ता-प्राप्ति की प्रतिद्वंद्विता हिंदू-मुसलिम द्वंद्व को जलाए हुए है। वस्तुतः विभिन्न आबादियों में दैनंदिन व्यवहार में हिंदू-मुसलिम कटुता दिखाई नहीं देती, किंतु चुनाव में वोट पाने के लिए नेतागण हिंदू-मुसलमानों में तनाव पैदा करते हैं। राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता का यही सिलसिला चलता रहा तो देश के विभाजन की प्रक्रिया थमेगी नहीं। भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिद्वंद्विताएं देश को टुकड़ों-टुकड़ों में बांट देंगी।

दीनदयाल शोध संस्थान आवश्यक उपाय अपनाकर उपर्युक्त दुःस्थिति का निवारण कर स्वतंत्रता संग्राम के काल में संजोए सपनों को साकार करने में समाज के सभी अंगों को सहयोगी बनाने में संलग्न है।

माता-पिता, चाहे जिस श्रेणी के हों, निरक्षर एवं निर्धन ही क्यों न हों, अपनी संतान का जीवन उज्ज्वल देखने के लिए आतुर रहते हैं। राष्ट्र-नवरचना के लिए यह बहुत बड़ी पूंजी है। इसी पूंजी के आधार पर कौटुंबिक जीवन का अनुकरणीय उदाहरण तथा सामाजिक जीवन में एकात्मता को साकार करने का कार्य किया जा रहा है।

□

साक्षरता का संकल्प भेदभाव रहित हो

सरकारी आंकड़ों के अनुसार अपने देश में केवल 37 प्रतिशत जनसंख्या साक्षर है और शेष 63 प्रतिशत निरक्षर। इन निरक्षर नागरिकों में अपने बच्चों को पढ़ाने की रुचि कम है। आर्थिक अभाव भी इसका एक कारण है। बच्चों को पढ़ाने के स्थान पर वे उन्हें कमाई के किसी-न-किसी काम में लगाना अधिक लाभदायी समझते हैं। इस प्रकार नई पीढ़ी का बहुत बड़ा प्रतिशत अशिक्षित रह रहा है। इसी कारण विकास योजनाओं के लाभ से भी वे वंचित रह जाते हैं। समाज के तथाकथित जानकार लोग उनकी विवशता का लाभ उठाते हैं। परिणामस्वरूप, समाजवाद के नारे के बावजूद समाज में अन्याय एवं विषमता निरंतर बढ़ रही है।

स्वतंत्र भारत का संविधान 1950 में स्वीकार किया गया था। उस पावन प्रसंग पर उपर्युक्त समस्या की गंभीरता अनुभव की गई थी। उसी समय घोषित किया गया था कि आगामी दस वर्षों में अर्थात् 1960 तक चौदह साल की आयु तक के सभी बालक-बालिकाओं को शिक्षा से विभूषित किया जाएगा। इस दिशा में आवश्यक शक्ति केंद्रित कर लक्ष्य-सिद्धि की जाती तो आज 1989 में देश के 43 साल तक के सभी महिला-पुरुष शिक्षित होते। अन्याय व विषमता घटती हुई दिखाई देती। स्वतंत्र भारत की यह बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जाती। दुर्भाग्य से उपर्युक्त पावन संकल्प को पूर्ण करने की ओर किसी ने विशेष ध्यान नहीं दिया, न इसकी उपेक्षा से किसी के दिल में चुभन है।

यह स्पष्ट है कि राष्ट्रोन्नति का यह महत्कार्य जन-जागृति व जन-सहयोग के बिना केवल हुकूमत के माध्यम से संपन्न नहीं हो सकता। इस साहसपूर्ण एवं कठिन कार्य में स्वयंसेवी व्यक्ति एवं संस्थाओं का व्यापक स्तर पर सहकार्य नितांत आवश्यक है। यह मूलभूत कार्य सामाजिक पहल की राह देख रहा है। वर्तमान काल के शिक्षा क्षेत्र में दो प्रकार की शिक्षा व्यवस्थाएं प्रचलित हैं—

- पब्लिक स्कूलों की व्यवस्था, जिसे विशेष विद्यालय व्यवस्था भी कहा जा सकता है।
- नि:शुल्क विद्यालय व्यवस्था।

नवस्वदेश, नानाजी विशेषांक 2010 (मूल स्रोत एवं तिथि अज्ञात)

पब्लिक स्कूलों की व्यवस्था धन प्रधान अर्थात् बहुत महंगी है। शिक्षा शुल्क के रूप में भारी धनराशि देनी पड़ती है। स्कूल जाने-आने का व्यय, गणवेश, किताबें आदि साहित्य का व्यय अलग से करना पड़ता है। एक बच्चे पर प्रतिमाह इतना व्यय-भार वहन कर पानेवाले माता-पिताओं की संख्या बहुत कम है।

शेष माता-पिताओं को अपने बच्चे निःशुल्क विद्यालय में ही भेजने होते हैं। इन निःशुल्क विद्यालयों का प्रबंध साधारणतः नगरपालिकाएं, महानगर पालिकाएं तथा जिला परिषदों द्वारा होता है। इनका संपूर्ण व्यय सरकारों या अर्ध-सरकारी प्रतिष्ठानों के माध्यम से किया जाता है।

इन निःशुल्क विद्यालयों में पढ़ाई का स्तर व वातावरण इतना दयनीय है कि उसकी चर्चा करने में भी लज्जा अनुभव होती है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि निःशुल्क विद्यालयों में पढ़ानेवाले अधिकांश अध्यापक एवं अध्यापिकाओं का शिक्षार्थियों के भविष्य से कम, किंतु अपनी वेतन प्राप्ति व बढ़ोतरी से ही अधिक लगाव देखने को मिलता है।

अपने विद्यालय में पढ़नेवाले शिक्षार्थियों के माध्यम से हमें राष्ट्र नव-निर्माण का पुण्य कार्य करना है। इस प्रेरणा का अध्यापन कार्य में संलग्न व्यक्तियों में सर्वथा अभाव अनुभव होता है। उपर्युक्त प्रेरणा देने में शिक्षा विभाग की भी रुचि दिखाई नहीं देती। अतः विद्यालयों में पठन-पाठन की गंभीरता देखने को नहीं मिलती। इन विद्यालयों के भवन एवं अन्य व्यवस्थाएं भी अध्ययनशील वातावरण बढ़ाने में सहायक नहीं हैं। विभिन्न प्रकार के खेल आदि बाल्य-जीवन का अनिवार्य अंग हैं। किंतु इन विद्यालयों में बच्चों के खेल की व्यवस्था पूर्णतः उपेक्षित है। नई-पीढ़ी की नब्बे प्रतिशत से अधिक संख्या इन्हीं उपेक्षित विद्यालयों में पढ़ रही है। इन विद्यालयों का स्तर एवं वातावरण नई पीढ़ी के बालक-बालिकाओं के सर्वांगीण-विकास में सहायक बनाना वर्तमान समय की अनिवार्यता है।

पब्लिक स्कूलों में पढ़नेवाले सुख-सुविधा संपन्न बालक-बालिकाओं का संपर्क इन निःशुल्क विद्यालयों में पढ़नेवाले बच्चों के साथ न स्कूलों में आता है और न अपने मोहल्लों में। इन बच्चों के माता-पिता तथा अध्यापक इन्हें इन गरीब व उपेक्षित बच्चों से दूर रहने का ही आग्रह करते रहते हैं। अतः पब्लिक स्कूल में पढ़नेवाले शिक्षार्थियों की अपनी अलग ही दुनिया होती है। सर्वसाधारण नागरिकों के जीवन की इन्हें कोई कल्पना नहीं रहती।

पब्लिक स्कूलों में पढ़ने की सुविधा पानेवाले बच्चे ही युवा बन प्रशासकीय परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने का अवसर पाते हैं। इन्हीं में से कुछ बड़े-बड़े प्रतिष्ठानों में भी स्थान पाते हैं। एक प्रकार से प्रशासकीय अधिकारियों में या अन्य प्रतिष्ठानों में इन्हीं की तूती बोलती है। ये अधिकारारूढ़ होते हैं किंतु इनके दिल और दिमाग में सर्वसाधारण नागरिकों के प्रति या समाज के गरीब व पिछड़े वर्गों के प्रति कोई लगाव नहीं रहता और न उनकी पीड़ा की कल्पना करना इनके लिए संभव होता है। परिणामस्वरूप स्वतंत्र भारत के शासकों एवं साधारण समाज में विशेषतः गरीब तबके में विदेशी हुकूमत से चलती चलती आ रही खाई अधिक चौड़ी होती जा रही है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली इस खाई को घटाने की दिशा में प्रयत्नशील नहीं है। ☐

स्वाभिमान
स्वावलंबन की शिक्षा से ही संभव

चित्रकूट उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश की सीमाओं का मिलन-बिंदु है। मंदाकिनी नदी के पावन तट पर विराजमान यह तीर्थ लोकाभिराम प्रभु राम का तपोवन है। सत्ता के मोहपाश को ठुकरा कर बंधुभाव से विह्वल भरत ने यहां पहुंचकर वनवासी राम से साग्रह अनुरोध किया था कि वे अयोध्या चलकर अपना राज-काज संभालें। यही वह ऐतिहासिक भूमि है, जहां समाजोन्मुख प्रभु राम ने सत्ता से कर्तव्य की श्रेष्ठता अधिक मानकर भरत को समझाया था कि उनके वनवास काल में उनके लिए अयोध्या का राजकाज संभालना उचित है। सत्ता-लोलुपता के वर्तमान वातावरण में नूतन-पीढ़ी को उचित दिशा एवं शिक्षा प्रदान करने के लिए इससे अधिक उपयुक्त स्थान अन्य नहीं हो सकता। इसी विचार से 'सुरेंद्रपाल ग्रामोदय विद्यालय' के लिए इस पुनीत प्रेरणाप्रद परिसर का चयन किया गया है।

स्वर्गीय सुरेंद्रपालजी के जीवन में स्वामी विवेकानंद की प्रेरणा प्रतिबिंबित हुई थी। भारत की आध्यात्मिक शक्ति एवं पश्चिम की समृद्धि का अनुपम संगम उनके व्यक्तित्व की विशेषता थी। उन्हीं की स्मृति में 'सुरेंद्रपाल ग्रामोदय विद्यालय' का शुभारंभ किया जा रहा है।

यह तीर्थ, निसर्गरम्य सौंदर्य से विभूषित, प्रदूषण की विभीषिका से मुक्त, स्वस्थ पर्यावरण से युक्त, प्राकृतिक संपदा से संपन्न तथा प्रभु राम के प्रति भक्ति-भावना से परिपूर्ण वनांचल ग्रामीणों का भक्ति-केंद्र है। इस पावन परिसर में नूतन पीढ़ी अपने जीवन के पाठ पढ़ेगी।

पं. दीनदयालजी उपाध्याय की सुविचारित धारणा थी कि भारत के उज्ज्वल भविष्य की नींव है 'ग्रामोदय'। गुलामी के सुदीर्घ संकट काल में आर्थिक अभाव से ग्रस्त, निपट निरक्षरता के शिकार तथा मैले-कुचले चिथड़ों में लिपटे ग्रामीण-महिला पुरुषों ने ही भारतीय परंपरा के मानवीय मूल्यों को टिकाए रखने का अद्वितीय कार्य किया है।

स्वतंत्र भारत के नेतृत्व को चाहिए था कि वह ग्रामीणों द्वारा सुरक्षित इस अनमोल धरोहर के आधार पर अपने राष्ट्र का नव-निर्माण करते, किंतु आजादी मिलने के वर्षों बाद भी इस मूलभूत शक्ति की उपेक्षा की गई है। परिणामस्वरूप राष्ट्र नव-निर्माण के कार्य में आम लोगों की रुचि

सुरेंद्रपाल ग्रामोदय विद्यालय चित्रकूट की रूपरेखा, मंथन, नवंबर 1991

एवं पहल पर कुठाराघात हुआ। लोगों के अंतःकरण की राष्ट्रीय प्रेरणा मुरझा गई। विद्यालय, नई पीढ़ी का सर्वांगीण-विकास कर उसे राष्ट्र नव-निर्माण के कार्य से जोड़ेगा

राष्ट्र की पूंजी—दीनदयाल शोध संस्थान ग्रामीणों द्वारा टिकाए हुए मानवीय जीवन-मूल्यों की संजीवनी के सहारे 'सुरेंद्रपाल ग्रामोदय विद्यालय' के माध्यम से नई पीढ़ी का सर्वांगीण-विकास करेगा। राष्ट्र नव-निर्माण के कार्य से जोड़ेगा तथा उसे स्वावलंबी, स्वाभिमानी तथा कर्तव्यनिष्ठ बनाने का समयानुकूल कार्य संपन्न करेगा।

बालक-बालिकाएं अपने माता-पिता की आत्मीयता का केंद्र बिंदु हैं। अपने बच्चों के भविष्य के लिए बड़ी-से-बड़ी कुर्बानी करने में वे असीम सुखानंद की अनुभूति करते हैं। अपनी संतान अपने से अधिक योग्य, अधिक सुखी एवं अधिक प्रतिष्ठित हो, यह पढ़े, लिखे, अनपढ़ और धनी व निर्धन अभिभावकों की आकांक्षा रहती है। यह आकांक्षा राष्ट्र की बहुत बड़ी पूंजी सिद्ध हो सकती है।

माता-पिता के जीवन में अपने बच्चों के प्रति जितनी रुचि एवं आत्मीयता होती है— समाजसेवियों के अंतःकरण में नूतन-पीढ़ी के लिए उससे कम रुचि एवं आत्मीयता नहीं होती। इसका अर्थ है कि माता-पिता एवं समाजसेवियों की आत्मीयता और रुचि का केंद्र-बिंदु एक ही है और वह है नूतन संतान। इस मर्म की नींव पर ही नूतन-पीढ़ी का सर्वांगीण-विकास एवं राष्ट्र का नव-निर्माण संभव हो सकता है।

माता-पिता अपने परिवार के माध्यम से अपनी संतान का लालन-पालन व विकास करते हैं तो शिक्षा क्षेत्र में संलग्न समाजसेवी नूतन संतान के विकास के लिए विद्यालयों को माध्यम बनाते हैं। नूतन संतान के सर्वांगीण विकास का मूल माध्यम है उनके प्रति आत्मीयता। नूतन संतान के प्रति माता-पिता के अंतःकरण की आत्मीयता, समाजसेवियों के अंतःकरण की आत्मीयता एवं विद्यालय में छात्र-छात्राओं के प्रति अध्यापक-अध्यापिकाओं के अंतःकरण की आत्मीयता परस्पर पूरक तत्त्व हैं। अतः नूतन पीढ़ी की शिक्षा के लिए बच्चों के परिवार, समाजसेवी तथा बच्चों के विद्यालय में सतत संपर्क एवं परस्परपूरकता अति आवश्यक है। नई पीढ़ी के बालक-बालिकाओं के सर्वांगीण व्यक्तित्व-विकास का आधार है यह त्रिवेणी संगम। इन तीनों संस्थाओं में से किसी एक का कमजोर होना अर्थात् कर्तव्य दक्ष न रहना बच्चों की प्रगति के विपरीत सिद्ध होता है। बच्चों की निरंतर प्रगति के लिए इन तीनों संस्थाओं में सक्रिय सहयोग अनिवार्य है। इसकी पूर्ति 'सुरेंद्रपाल ग्रामोदय विद्यालय' की विशेषता होगी।

इस विद्यालय में पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक अर्थात् प्रारंभ से बारहवीं तक की पढ़ाई होगी। वर्गों में छात्र-छात्राओं की संख्या साधारणतः 20 होगी, जिससे अध्यापक वर्ग प्रत्येक विद्यार्थी के विकास की ओर ठीक से ध्यान दे सके। पढ़ाई का माध्यम हिंदी भाषा होगी। छात्र-छात्राएं संस्कृत व अंग्रेजी भाषा के ज्ञाता होंगे।

विद्यालय में विभिन्न कलाओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा रही है। छात्र-छात्राएं अपनी रुचि के अनुसार किसी एक कला का प्रशिक्षण प्राप्त करेंगी। कारण, कलाहीन मानव जीवन नीरस, रूखा एवं भाररूप बनता है।

इस विद्यालय से संलग्न एक विविध शिल्प प्रशिक्षण–केंद्र होगा। कक्षा आठ से बारहवीं तक पढ़नेवाले छात्र–छात्राओं को अपनी रुचि के शिल्प का प्रशिक्षण लेना होगा। यह पढ़ाई के साथ–साथ पांच वर्ष का प्रशिक्षण है। बारहवीं उत्तीर्ण करने के साथ ही उन्हें विशिष्ट शिल्प का उपाधि–पत्र (डिप्लोमा) भी प्राप्त होगा। जिन्हें आगे की पढ़ाई करनी होगी, उनके लिए भी यह उपयोगी होगा तथा जिन्हें बारहवीं के बाद पढ़ना नहीं है, उन्हें भी इसका जीवकोपार्जन की दृष्टि से लाभ होगा।

स्वावलंबन—स्वावलंबन इस विद्यालय की विशेषता रहेगी। जो विद्यालय स्वयं सुनियोजित अवधि में स्वावलंबी नहीं बनता, वहां शिक्षण व प्रशिक्षण प्राप्त छात्र तथा छात्राएं स्वावलंबन का पाठ नहीं पढ़ सकते। दीनदयाल शोध संस्थान जानता है कि प्रचलित वातावरण में विद्यालय को स्वावलंबी बनाना बड़ी टेढ़ी खीर है। इसे कल्पना–जगत् की उड़ान मात्र माना जाएगा, किंतु इसे व्यावहारिक जगत् में संभव किए बिना नई पीढ़ी को स्वावलंबी बनाना, उसमें स्वयं प्रेरणा जगाना, उन्हें प्रतिभा–संपन्न बनाना असंभव है, अतः 'सुरेंद्रपाल ग्रामोदय विद्यालय' अपने स्वावलंबन के सपने को आगामी दस वर्षों में साकार कर दिखाएगा।

इस विद्यालय में छात्र–छात्राओं के लिए अलग–अलग छात्रावास होंगे। इन छात्रावासों की अपनी विशेषता होगी। इनमें पुरातनकालीन गुरुकुलों के समान पारिवारिक वातावरण होगा।

प्रत्येक छात्रावास में 10–10 छात्र या छात्राएं रहेंगी। उनके साथ एक अध्यापक या अध्यापिका का आवास होगा। यही अध्यापक या अध्यापिका इस छात्रावास के पालक या पालिका के नाते काम करेंगी। इन दस छात्रों या छात्राओं के लिए भोजन की व्यवस्था गुरुगृह में होगी। भोजनादि की व्यवस्था छात्र या छात्राएं मिलकर करेंगे। हर एक छात्रावास के पास साग–सब्जियां उगाने के लिए एक स्वतंत्र उद्यान तथा दूध के लिए रुचिकर गायें या बकरियां होंगी।

'चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय' के लिए सुयोग्य छात्र–छात्राओं की निरंतर आवश्यकता रहेगी। उसकी पूर्ति में यह विद्यालय भरपूर योगदान करेगा। विश्वविद्यालय के बी.एड. तथा एम.एड. के प्रशिक्षार्थियों के प्रशिक्षण के लिए प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च माध्यमिक विद्यालय की आवश्यकता रहती है। उसके लिए भी इस विद्यालय का उपयोग होगा।

☐

शिक्षा का हेतु
सार्थक जीवन का निर्माण

सर्वप्रथम मैं उन युवक युवतियों का हार्दिक अभिनंदन करता हूं, जिन्होंने स्वयं को उपाधियों से विभूषित कर लिया है। आज एक विशेष बात है, इस विश्वविद्यालय में 82 साल के बूढ़े को उपाधि प्राप्त करनेवाले जवानों के समकक्ष खड़ा किया गया है। फलस्वरूप मैं बीती हुई जवानी की अनुभूति कर रहा हूं। वस्तुतः आज जवानों की ओर देखना और देश के भविष्य की कल्पना करना आवश्यक है। संसार में युग प्रवर्तन का काम कभी भी किसी वृद्ध ने नहीं किया, चाहे वह कितना भी क्षमतावान रहा हो। युग प्रवर्तक अपवाद रहित सभी युवक रहे हैं। यह मानव समाज का इतिहास है। इसलिए उपाधि-प्राप्त युवाओं से देश का भविष्य विशेष अपेक्षा कर रहा है।

महर्षि का योगदान

आज मुझे महर्षि दयानंद सरस्वती विश्वविद्यालय में उपस्थित होने का सुअवसर प्रदान किया गया है। इसलिए मैं इस विश्वविद्यालय के संचालकों का बहुत-बहुत आभारी हूं। यह विश्वविद्यालय महर्षि दयानंदजी की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए प्रस्थापित हुआ है। उपाधि-प्राप्त युवक-युवतियों से मैं एक ही अनुरोध करूंगा कि महर्षि दयानंद ने भारत में कौन सी परंपरा प्रचलित करने का प्रयास किया, यह वे समझें। स्वामी दयानंद छोटी-से-छोटी बात से मूलभूत तत्त्व की अनुभूति किया करते थे। हम सभी जानते हैं कि जब शिव की पिंडी पर के चावल खाने के लिए पिंडी पर चढ़कर चूहे अपना उदर भरण कर रहे थे तो स्वामीजी को यह सामान्य दृश्य देखकर अनुभव हुआ कि भारत का अद्वितीय जीवन-दर्शन कर्मकांडों में फंसकर गतिहीन हो रहा है। इससे पीड़ित होकर उन्होंने कर्मकांडों से अपने जीवन-दर्शन को मुक्त किया था। यहां से उपाधि प्राप्त युवजन इस तथ्य को समझकर उसे आगे बढ़ाएं, यह स्वामी दयानंदजी की शरीर छोड़ते समय हम सबसे अपेक्षा रही है।

देश में बहुत विश्वविद्यालय खुल रहे हैं। विश्वविद्यालय के तहत महाविद्यालयों की संख्या

महर्षि दयानंद सरस्वती महाविद्यालय, अजमेर में आयोजित द्वितीय दीक्षांत समारोह में माननीय नाना देशमुख को डी.लिट्. की उपाधि से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर नानाजी द्वारा दिए गए भाषण का संपादित पाठ। मंथन, जुलाई सितंबर 1998

बढ़ रही है। अभी हमारे शिक्षा मंत्री महोदय ने इस संख्या में बढ़ोतरी के बारे में बताया। महिलाओं के भी महाविद्यालयों की संख्या पेश की है। मैं जानना चाहता हूं इन महाविद्यालयों में बड़ी-बड़ी डिग्रियां प्राप्त युवकों और युवतियों को क्या यह पता है कि माता-पिता का दायित्व क्या हुआ करता है? उनके और उनकी संतान के द्वारा इस राष्ट्र का नवनिर्माण किस प्रकार किया जाएगा? विचार करें। असंख्य विद्यालय, विश्वविद्यालय भारत में ही नहीं संसार भर में कार्यरत हैं। अभी-अभी जो पुस्तिकाएं दी गई हैं, उनमें ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की चर्चा है। इस साहित्य को पढ़कर आज के हिंदी समाचार-पत्र संभवतः 'नवज्योति' में एक लेख छपा है, जो मुझे पढ़ने को मिला। किंतु इतने विश्वविद्यालय खोलकर क्या यह विचार हो रहा है कि मानव के लिए ही शिक्षा की आवश्यकता क्यों हैं?

मानव हेतु विद्यालय क्यों

उदर-भरण एवं उपभोग प्रत्येक प्राणी की आवश्यकता है। मानव उसका अपवाद नहीं है। शरीर के बिना आत्मा अपना वैशिष्ट्य प्रकट कर नहीं सकती। शरीर बिना उपभोग के टिक नहीं सकता। अतः आत्मा की विशेषता प्रकट करने के लिए शरीर नितांत आवश्यक साधन है।

मैं देखता हूं, शिक्षा के बारे में अनेक विद्वान् अपने लेख प्रकाशित कराते हैं। शिक्षा के बारे में संसार में अनुसंधान कार्य चल रहा है। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में मैंने कुछ काल तक रहकर समझने की कोशिश की। कैंब्रिज विश्वविद्यालय में भी मैं गया। लेकिन किसी भी विश्वविद्यालय में नई पीढ़ी को यह बताने का प्रयास दिखाई नहीं पड़ रहा है कि हम शिक्षा ग्रहण क्यों कर रहे हैं? बड़ी-बड़ी बातें होती हैं कि हमने इस नाम से विश्वविद्यालय शुरू किया। प्रत्येक माता-पिता अपनी संतान को बहुत अच्छे नाम से संबोधित करना चाहते हैं। किसी का नाम जीवन प्रकाश है। लेकिन क्या उसके जीवन में प्रकाश प्रकट होता है? संकायों के नाम बड़े-बड़े लोगों के नाम पर रखने भर से वे संकाय बेहतर कार्य नहीं कर दिखा पाते। क्षमा करें, मेरा यह कहना जरा अखरेगा—लेकिन किसको क्या अखरता है तथा किसको क्या नहीं अखरता, यह विचार कर अपना मानस प्रगट करना मेरा स्वभाव नहीं है। यह मेरा दोष हो सकता है।

अनुत्तरित प्रश्न

मानव के अलावा जितने प्राणी हैं, उनमें भयंकर से भयंकर हिंसक प्राणी भी हैं, लेकिन ये प्राणी संसार में असंतुलन पैदा करने की क्षमता नहीं रखते। ये सब प्रकृति के नियमों से बंधे हैं। वे प्राकृतिक बंधनों को कभी भी लांघ नहीं पाते। विचार करें, उनका उपभोग संसार में न असंतुलन पैदा करता है और न पर्यावरण ही बिगाड़ता है। उनकी उपभोग प्रवृत्ति कभी भी बलात्कार करने का कारण नहीं बनती।

प्राकृतिक जीवनादर्श की अवहेलना से जीवन वासना प्रधान बनता है। यह क्यों होता है? मानव अन्य प्राणियों से भिन्न है। मानव के लिए कोई प्राकृतिक नियमों की पाबंदी नहीं है। वह अपना

जीवन स्वेच्छा से चलाने के लिए स्वतंत्र है। मानव में बड़ी क्षमताएं हैं। उदर भरण एवं उपभोग के अतिरिक्त मानव नव–निर्माण की क्षमता रखता है। उसका मन कल्पना का केंद्र है। उसका मन सपने देखने की अद्वितीय क्षमता रखता है। सपनों को कार्यान्वित करने की उसमें बुद्धिमत्ता एवं शारीरिक क्षमता है। फिर मानव असंतुलन क्यों पैदा करता है?

अनावश्यक संग्रह

संसार में कोई भी प्राणी अपने उपभोग के लिए संग्रह नहीं करता। किंतु मानव करता है। समाज शास्त्र सिखाया जा रहा है। विज्ञान सिखाया जा रहा है। नई से नई विधियों का निर्माण किया जा रहा है। किंतु क्या बड़े, देशभक्त कहलाने वाले नेतागण एवं गुरुजन इस ओर ध्यान दे रहे हैं? कहां से दिशा प्राप्त होगी? भाषणबाजी से संभव नहीं है। अमरीका, जर्मनी आदि से होड़ लगाने से नहीं चलेगा। न एटम बम के द्वारा संभव होगा।

भौतिकता की सीमाएं

मानव कितना भयंकर कदम उठा सकता है। दूसरे विश्वयुद्ध में अमरीका ने हिरोशिमा व नागासाकी पर बम डालकर पूरी की पूरी आबादियां नष्ट नहीं की थी? क्या मानव के अतिरिक्त अन्य कोई प्राणी ऐसा भयानक अत्याचारी सिद्ध हो सकता है? मानव मानव के नाते इस विश्व में क्या सीख रहा है? मानवीयता की शिक्षा किसी विद्यालय या विश्वविद्यालय में दी जा रही है? मैंने जानने का प्रयास किया कि क्या है मानव? क्या मानव केवल भौतिक प्राणी है? जैसे अन्य प्राणी हैं, जिनके जीवन का लक्ष्य खाना, पीना, भोग भोगना और एक दिन दुनिया से विदा लेना ही है। अन्य प्राणियों का तो इतना ही जीवन है।

मानव का गुण

मानव ही एक ऐसा प्राणी है, जिसमें संवेदनशीलता है। मानव संवेदनशील है, उसके शरीर में आत्मा विराजमान है। आत्मा का प्रकटीकरण संवेदनशीलता के माध्यम से होता है। वह दूसरे को पीड़ित देखकर द्रवित होता है। किसी को पीड़ा मुक्त कर प्रसन्न हो जाता है। क्या इस प्रकार की क्षमता को बढ़ाकर, मानव को मानवीयता से विभूषित करने का प्रयास विश्वविद्यालयों में हो रहा है?

जो लोग सरकार चला रहे हैं, उनके दिल में अभावग्रस्तों के लिए कोई पीड़ा नहीं है। मैं रिपोर्ट पढ़ता हूं, हिंदुस्तान के 96 करोड़ में से 36 से 40 करोड़ के बीच ऐसे लोग हैं, जिनके घरों में दोनों समय भोजन उपलब्ध नहीं होता। उनकी पीड़ा किसको है? उन्होंने ऐसे ही विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई है, जहां संवेदनशीलता अर्थात् मानवीयता के विकास की कोई गुंजाइश नहीं, वहां उपभोग प्रवृत्ति बढ़ाने का क्रम चलता है। पिछले 50 साल में हिंदुस्तान में मानवता से विभूषित नई पीढ़ी के कितने लोग शिक्षा संस्थाओं ने पैदा किए हैं? इसका विचार करने की आवश्यकता है। किंतु इस ओर ध्यान देने की देश की नेतृत्व को फुरसत नहीं है। दिखावा मात्र शिक्षा का भूषण

बना है। शिक्षा में परिवर्तन लाना पड़ेगा। मगर ये परिवर्तन होगा कैसे? इस आवश्यकता की पूर्ति केवल गुरुजन ही कर सकते हैं।

विश्वविद्यालयों का दायित्व

दुर्भाग्य से, आज मैं यह देखकर दु:खी होता हूं कि माता-पिता अपनी संतान को विकसित करने का दायित्व संभालना नहीं चाहते। वे अपने बच्चों के विकास की दुकान खोजते हैं। महंगे से महंगे विद्यालय खुल रहे हैं। ऐसे-ऐसे विद्यालय हैं, जिनमें तीन से पांच हजार रुपए महीना एक-एक बच्चे से लिया जाता है। सरकार इन्हें मान्यता और धन भी दे रही है। मुझे पता है, क्योंकि मैं इस क्षेत्र में काम कर रहा हूं। ऐसे विद्यालय समाज में विषमता बढ़ाने के कारण बन रहे हैं और बात भारतीय संस्कृति की होती है।

बस वेतन की चिंता

देश में यूनियन की अंधी दौड़ चल रही है। शिक्षकों ने भी ट्रेड यूनियनिज्म को अपना लिया है। यह वर्ग संगठित है और अपनी मांगें मनवाने के लिए ऐन परीक्षा के समय पर हड़ताल करने में उन्हें संकोच नहीं होता। क्या इस वातावरण में देश के उज्ज्वल भविष्य की आशा की जा सकती है? इस पर कौन सोचेगा?

मेरी बातें संभवत: आप उपाधि प्राप्त युवक-युवतियां पसंद न करें, किंतु यदि आप नई पीढ़ी के पढ़े-लिखे नौजवान भी इस पर ध्यान नहीं देंगे तो देश के नेतृत्व को ठीक दिशा में सोचने के लिए अन्य कौन आगे आएगा? इस दिशा में कम-से-कम महर्षि दयानंद सरस्वती विश्वविद्यालय विचार कर आवश्यक कदम बढ़ाए, यह मैं इस विश्वविद्यालय के संचालकों से विनम्र अनुरोध करता हूं।

नई दिशा दें

अभी-अभी एक रिपोर्ट छपी है, उसमें बताया गया है कि संपूर्ण विश्व में जितने बच्चे कुपोषण से मरते हैं, उनमें केवल भारत के ही 40 प्रतिशत से अधिक हैं। यदि इस सामाजिक दुर्दशा पर देश के गुरुजन एवं उपाधि प्राप्त युवजन सोच-विचार कर कदम नहीं बढ़ाएंगे तो देश का भविष्य कैसे बन पाएगा?

गुरुजन समाज की सुस्थिति के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं। वे अपने लिए एक छोटा सा क्षेत्र चुन लें तथा अपना परिवार चलाने के लिए नितांत आवश्यक धन अपने परिवार के काम में लाएं और शेष धन से अपने क्षेत्र के अभावग्रस्त बच्चों को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में सुनियोजित कार्यक्रम अपनाएं। यदि ऐसा किया गया तो देश के विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के सामने एक आदर्श प्रस्तुत होगा। इसके नेतृत्व का श्रेय महर्षि दयानंद सरस्वती विश्वविद्यालय को मिलेगा।

वसुधैव कुटुम्बकम्

भारतीय परंपरा की विशेषता रही है कि कौटुंबिक जीवन केवल व्यक्तिगत कुटुंब के सदस्यों तक सीमित नहीं रहा है। वह वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा साकार करने का स्रोत रहा है। काल के प्रवाह में यह अवधारणा तिरोहित हो गई है। आवश्यकता है कि देश के शिक्षा-केंद्र इस अवधारणा को पुनर्जीवित करें।

भारत में प्रारंभ काल से ही विद्याध्ययन को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया था। केवल लिखना, पढ़ना और हिसाब करने तक भारत की शिक्षा सीमित नहीं थी। पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन, शासकीय जीवन और उसमें व्यक्ति-व्यक्ति का योगदान किस प्रकार का हो, यह केवल पढ़ाया ही नहीं जाता था अपितु गुरुजन अपने तथा अपने पारिवारिक जीवन से छात्र-छात्राओं को व्यावहारिक शिक्षण प्रदान करते थे। इसी कारण चीन के ह्वेनत्सांग ने भारत यात्रा के काल में आश्चर्यचकित होकर कहा था, ''यहां के तो किसी घर में ताला लगता ही नहीं।'' मेरा विश्वास है कि अजमेर का यह महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय संपूर्ण संसार के लिए इस कार्य का अनुकरणीय नमूना प्रस्तुत करेगा।

भारत ने अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख, के स्थान पर 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का आदर्श इसी प्रक्रिया से प्रस्तुत कर दिखाया था। हजार साल गुलामी में बिताने के बाद हम स्वतंत्र हुए हैं। हमारा अपना इतिहास है। हमारी अपनी सभ्यता है। हमारी अपनी संस्कृति है। तदनुसार हमें स्वतंत्र भारत के नागरिकों का जीवन विकसित करना होगा। यह काम विद्यालय और विश्वविद्यालय ही कर सकते हैं। हमारी संस्कृति यथास्थितिवादी नहीं रही। गतिशीलता उसकी विशेषता है। फलस्वरूप विकसित होने वाली तकनीकी हमने कभी अस्वीकार नहीं की। उसे अपनी मानवीयता की दिशा में संस्कारित कर अपनाया है।

आत्मनिर्भरतापूर्ण विकास

हम आजाद हुए। उसके बाद चीन माओ के अधिकार में आया। माओ के पहले चीन पूरी तरह से अमरीकी चंगुल में फंसा हुआ था। उसकी आर्थिक स्थिति दयनीय थी। परनिर्भरता उसका जीवन बना था। किंतु आज चीन विश्व की महान् शक्तियों में से एक है। कोई वैचारिक साम्य न होते हुए भी आज संसार की सबसे बड़ी शक्ति अमरीका उससे मित्रता करना चाहता है। उसने आणविक शक्ति का विकास किया है किंतु अमरीका उसका बुरा नहीं मान रहा है। किंतु हमने केवल कुछ ही विस्फोट किए, अणु शक्ति के शास्त्रों का कोई जखीरा हमने खड़ा नहीं किया। इसके बावजूद अमरीका और अन्य बड़ी शक्तियां हम पर आर्थिक प्रतिबंध लगाने पर उतर आई हैं। क्या इस वस्तुस्थिति से हमें कुछ पाठ पढ़ने नहीं चाहिए?

देश में एक के बाद एक नई-नई सरकारें बन रही हैं। उनमें से किसी ने भारत की वस्तुस्थिति को समझ हर कदम नहीं बढ़ाया। भारत की आबादी आज भी 70 प्रतिशत से ज्यादा गांव में रह रही है। सब प्रकार के प्राकृतिक संसाधन गांव में ही उपलब्ध हैं। वस्तुतः शहर नहीं, गांव ही

उत्पादक है। किंतु गत 50 साल में गांव की जितनी उपेक्षा हुई है, उसकी सीमा नहीं है। उपभोग करनेवाली शहरी आबादी का आकर्षण बढ़ाया जा रहा है। किंतु जहां उत्पादकता संभव है, उसकी उपेक्षा की गई तो उपभोग कैसे पूरा हो पाएगा—यह देश के नेतागण समझ नहीं रहे हैं। आजादी पाने के बाद विदेशों की नकल करने में ही सार्थकता मानने की जो परंपरा चल पड़ी थी, उसी को नेतृत्व आगे बढ़ा रहा है।

हमें विचार करना होगा। हमारे यहां एक बहुत पुरानी कहावत है, जो व्यक्ति के जीवन का मार्गदर्शन किया करती थी—

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथ्वीं त्यजेत।।

अर्थात् संवेदनशील बने रहने के लिए आवश्यकता पड़ने पर शरीर का भी त्याग करो। क्या हमारे नेतागण इस तथ्य की ओर ध्यान दे रहे हैं? क्या ऐसी अवस्था में नई पीढ़ी भारत के आदर्शों के अनुसार देश का निर्माण कर पाएगी?

उपर्युक्त बातों का विचार करना होगा और तदनुसार जीवन की दिशा निश्चित करनी पड़ेगी।

महाशक्तियों को भय

संसार की महाशक्तियां भारत को आगे बढ़ने देना नहीं चाहतीं। वे जानती हैं कि संसार में भारत ही एक ऐसा देश है, जिसके पास सब प्रकार के प्राकृतिक संसाधनों का अथाह भंडार है। वैज्ञानिक क्षमता के धुरंधर इस में विद्यमान हैं। यदि भारत कहीं आत्मनिर्भर बन गया तो इन महाशक्तियों की महानता टिक नहीं पाएगी। संसार का शोषण करने का उनका एकाधिकार समाप्त होगा। इसलिए संसार की महाशक्तियां भारत के खिलाफ हैं। उससे घबराने की आवश्यकता नहीं हैं। चीन महाशक्ति बना तो किसी की कृपा से नहीं बना। कम्युनिस्ट विचारधारा का स्रोत रूस से चल पड़ा। उसी को लेकर चीन ने अपने को लाल निशानवाला देश बनाया। किंतु उसने रूस का भी पिछलग्गूपन स्वीकार नहीं किया। तब जाकर चीन संसार की महान् शक्ति बन पाया है। इस बात को हमारे देश के नेतागणों को समझना होगा। क्या ये सब नेतागण भारत के उत्थान के लिए आपस में झगड़ने के स्थान पर इकट्ठा आकर देश के लिए समर्पित भाव से काम नहीं कर सकते?

□

सुशिक्षा की परिभाषा गढ़े चित्रकूट विश्वविद्यालय

आज स्व. पं. दीनदयालजी की 75वीं जयंती है। दीनदयालजी की प्रेरणा से ही आज दीनदयाल शोध संस्थान को ग्रामीण क्षेत्र में कार्य करने को मिल रहा है। चित्रकूट में जो ग्रामोदय विश्वविद्यालय शुरू हुआ है, उसके पीछे भी उन्हीं की प्रेरणा है। पं. दीनदयालजी का स्वभाव अत्यधिक विनयशील रहा है। कभी अहंकार नहीं। मैं 28 वर्ष लगातार उनके साथ रहा, उनके साथी के नाते। क्षण मात्र के लिए कभी उनके मुंह से यह नहीं निकला, जिसमें से किसी भी प्रकार का अहंकार टपके। किंतु प्रश्न यह है चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय क्यों प्रारंभ हुआ? देश में बहुत विश्वविद्यालय हैं; एक यह विश्वविद्यालय और क्या करेगा? यह प्रश्न सहज और स्वाभाविक है। मैं इस संबंध पर बहुत लंबी चर्चा करूंगा नहीं। संक्षेप में कहूंगा।

कोई विश्वविद्यालय युनिवर्सिटी ग्रांट कमीशन से अनुदान पाने के लिए प्रयत्नशील जरूर रहता है। दुनिया के बड़े-से-बड़े विद्वानों को लाकर उनकी विद्वत्ता के आधार पर विश्वविद्यालय चलाने की सोचता है। यह विश्वविद्यालय किसी से भी ग्रांट से अधिक महत्त्व की बात सर्वसाधारण ग्रामीणों का सक्रिय सहकार एवं सहयोग को मानेगा। इन ग्रामीणों में काम करनेवाली विभिन्न प्रकार की संस्थाएं हैं। वे सरकारी हों या गैर-सरकारी, स्वयंसेवी संस्थाए हों या अर्द्धशासकीय संस्थाए, उनमें जो लोग लगे हुए हैं, जिनके हृदय में एक तड़पन है कि हमारे ग्रामीण बंधु-बहनें भारत का गौरव बनें। ऐसे सब लोगों की प्रेरणा से, ऐसे सब लोगों के सहयोग से, ऐसे सब लोगों के सक्रिय चिंतन और मनन से यह विश्वविद्यालय अपना प्रगति का मार्ग प्रशस्त करता जाएगा। कोई करोड़ों रुपया भी देगा और हमें अपने ग्रामीण बंधु-बहनों से अलग करना चाहता होगा तो हम हजारों करोड़ों रुपयों को ठुकरा देंगे। क्यों? क्योंकि ग्रामीण बंधुओं का सहयोग नहीं है तो यह ग्रामोदय विश्वविद्यालय नहीं होगा। यह विश्वविद्यालय धनपतियों का नहीं बनेगा।

आज हम दीनदयालजी के एकात्म मानववाद दर्शन के संबंध में विचार करें। देश में बड़ी प्रगति हो रही है और संसार में उससे भी अधिक प्रगति हो रही है। बड़ी-बड़ी डिग्रियां बिक रही हैं। आजकल चाहे जहां देखो, पी-एच.डी. मिल जाती है। इतनी पढ़ाई, इतनी प्रगति, इतनी उन्नति इस पढ़े-लिखे मानव को क्या बना रहे हैं? ये बना रहे हैं व्यक्तिवादी और उपभोगवादी। जितना

ग्रामोदय विश्वविद्यालय की बी.एड. कक्षाएं प्रारंभ होने के अवसर पर नानाजी का संबोधन। 25 सितंबर, 1991

अधिक पढ़ा-लिखा, जितना अधिक सफल टेक्नोक्रेट, जितना अधिक बड़ा वैज्ञानिक, उतना ही अधिक व्यक्तिवादी और अपने सुखोपभोग के लिए साधन जुटानेवाला। क्या इसे सुशिक्षित कहा जाएगा? एक व्यक्ति अपने जीवन के सुखोपभोग के लिए अधिकतम साधन जुटाता है तो परिणाम क्या होता है? अधिकतम साधन जुटानेवाला सैकड़ों-हजारों लोगों की सुख-सुविधाओं को नकार कर अपनी सुख-सुविधाएं बढ़ाता है। वास्तव में जो जितनी प्रगति करे, उसका व्यक्तिवाद घटता जाना चाहिए। उसकी आवश्यकता घटती जानी चाहिए; उसका सुख-सुविधा का जीवन उस रूप में बढ़ना चाहिए कि मेरे चारों तरफ के निवासी महिला पुरुष इतनी सुख-सुविधाओं से पहले पूर्ण हों, उससे जो बचेगा, वो मेरा। उसी को तो सुशिक्षित कहते हैं, उसी को तो प्रगतिशील कहते हैं। किंतु आज जो जितना सुशिक्षित है, विश्वविद्यालय से निकलकर उतना ही अधिक वेतन चाहता है। यह क्या हो रहा है? स्व. दीनदयालजी की इच्छा थी विद्यालय या विश्वविद्यालय, यहां पढ़ने लिखनेवाले लड़के-लड़कियां अपने जीवन की आवश्यकताएं घटाकर अन्य लोगों के जीवन की आवश्यकताएं अधिक-से-अधिक कैसे पूर्ण हों, ऐसा सोचनेवाले हों। अन्यथा चित्रकूट में विश्वविद्यालय प्रारंभ करने की आवश्यकता नहीं थी।

□

साक्षरता अभियान
अध्यापकगण इसका बीड़ा उठाएं

उपसभाध्यक्ष महोदय, महामहिम राष्ट्रपतिजी ने अपने अभिभाषण में 2020 तक भारत को विकसित देश के रूप में देखने का जो हेतु प्रकट किया है, उसके लिए मैं राष्ट्रपति का बहुत आभारी हूं। किंतु दु:ख के साथ मुझे एक बात कहनी पड़ रही है कि राष्ट्रपतिजी के ध्यान से एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात ओझल हो गई है। आपको और हमको पता है कि इस सरकार ने सदन के सभी सदस्यों की सद्भावना का लाभ उठाकर 6 साल से 14 साल तक के सभी बच्चों के लिए नि:शुल्क शिक्षा प्रदान करने का, मौलिक अधिकार देने का प्रस्ताव पास कराया और सबने बड़ी खुशी के साथ इस प्रस्ताव का सर्वसम्मति से अनुमोदन किया, किंतु इसको कार्यान्वित करने की दृष्टि से यह सरकार तब से अब तक कुछ कर रही है, ऐसा दिखाई नहीं देता। अभी 5 फरवरी, 2003 के 'हिंदुस्तान टाइम्स' में एक सर्वे छपा है। उस सर्वे में कहा गया है कि देश के 40 प्रतिशत बालक और 50 प्रतिशत से अधिक बालिकाएं प्राथमिक विद्यालयों में अपना नाम तक नहीं लिखा पा रही हैं। इसका अर्थ यह है कि मौलिक अधिकार तो प्रदान किया है, किंतु उसे कार्यान्वित करने की ओर सरकार आज तक कोई, किसी प्रकार का कदम नहीं उठा रही है। राष्ट्रपति महोदय ने इस ओर सरकार को कोई निर्देश दिया है, ऐसा उनके भाषण में मुझे नहीं मिला।

अपने देश में जो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग है, उसकी रिपोर्ट कहती है कि देश में 298 मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय चल रहे हैं। इनके अंतर्गत 10,600 डिग्री कॉलेजों में 1,99,560 प्राध्यापकों की संख्या है। इन डिग्री कॉलेजों में पढ़ रहे युवक-युवतियों की संख्या 75 लाख से अधिक है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अरबों रुपया इनके ऊपर खर्च कर रहा है। किंतु यह विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, जो कि खूब पैसा दे रहा है, तनख्वाह दे रहा है, क्या वह इनको यह नहीं कह सकता या प्रेरित नहीं कर सकता कि छुट्टियों के काल में, लगभग दो लाख प्राध्यापक और 75 लाख युवक-युवतियां अपने-अपने क्षेत्र में जाकर, इन बच्चों को, जो कि 6 साल से 14 साल तक की आयु के हैं, पढ़ाने की दृष्टि से प्रेरणा दें। यदि ये सब जुट जाएं छुट्टियों में, तो वर्ष 2020 में जो भारत को हम विकसित राष्ट्र के रूप में देखना चाहते हैं, उसमें एक बहुत बड़ा योगदान इनका होगा।

राष्ट्रपतिजी के अभिभाषण पर राज्यसभा में नानाजी का वक्तव्य। युगानुकूल नवरचना, 2003

आज प्रतिभा पलायन हो रहा है, किंतु यदि विश्वविद्यालयों में पढ़नेवाले ये युवक-युवतियां तथा प्राध्यापक गांवों में जाकर इन अभागे बच्चों को, जो 6 वर्ष से 14 वर्ष के अंतर्गत हैं, को पढ़ाने का काम करेंगे तो देश की परिस्थिति उन्हें देखने को मिलेगी और परिस्थिति देखकर उन्हें कुछ करने की प्रेरणा प्राप्त होगी। इससे राष्ट्रपतिजी ने जो अपनी इच्छा और अपने देश की सरकार का जो विश्वास प्रकट किया है, वह साकार होगा। किंतु केवल कानून बनाकर पास करवा देना या केवल मौलिक अधिकारों की घोषणा करना या सरकार द्वारा किसी भी प्रकार के कदम आगे उठा देना, इससे तो वर्ष 2020 तक इस देश को विकसित राष्ट्र के रूप में देखने का सपना केवल सपना मात्र रह जाएगा।

उपसभाध्यक्ष महोदय, मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि राष्ट्रपति महोदय के ध्यान में हमारी यह भावना पहुंचे और वह अपनी सरकार को इस प्रकार के आदेश दें कि मौलिक अधिकार तो प्रदान किए जाते हैं, लेकिन उसको कार्यान्वित करने का दृष्टि से कुछ भी न करना, यह उचित नहीं है। बड़ी-बड़ी घोषणाएं हुईं, लेकिन आज तक भारत में स्थिति क्या बनी? एक तिहाई से अधिक लोग गरीबी की रेखा के नीचे किसी ढंग से अपनी जिंदगी बिता रहे हैं और देश में बढ़ रही सतत बेकारी काबू में नहीं आ रही है। इसका कारण है कि जो हम निर्णय करते हैं, निश्चय करते हैं, उसके अनुसार कार्यान्वयन करने की तरफ कोई ध्यान नहीं देते, केवल प्रस्ताव पारित करते हैं, बड़े-बड़े भाषण देते हैं, कार्यक्षेत्र में कार्य करने की ओर किसी को रुचि दिखाई नहीं देती।

☐

नैतिकता
शिक्षा का अधिष्ठान हो

अब विद्यालयों के लिए सरकारी मान्यता जरूरी है। यह शिक्षा की प्रचलित पद्धति है। एक प्रश्न सामने आ रहा है, उस पर हम लोग विचार करेंगे। विद्यालय बढ़ रहे हैं। गांव-गांव में विद्यालय खुल रहे हैं। पढ़ानेवाले महिला-पुरुषों की संख्या भी लाखों में है। शिक्षा फैल रही है परंतु समाज में नैतिकता का अभाव बढ़ता ही जा रहा है। जब तक समाज में नैतिकता सर्वव्यापी नहीं होगी तब तक शिक्षा का अर्थ क्या है? शिक्षा का अर्थ है—नैतिकता का निर्माण। नैतिकता समाज के विकास के लिए जरूरी है। मानव किसी के लिए नुकसानदेह न बने, मानव अन्य सभी के लिए उपकारक बने, सहायक बने, पूरक बने, इसके लिए ही शिक्षा है। तो हमें यह देखना होगा कि आज दुनिया में शिक्षा भी बढ़ रही और अनैतिकता भी बढ़ रही है तो दोष कहां है? ये विचार हरेक पढ़ानेवाले को करना होगा। पढ़ानेवाला पुरुष हो चाहे महिला, चाहे वह प्राथमिक का हो या विश्वविद्यालय का। यह अपने को सोचना है।

चित्रकूट में दुनिया भर के लोग आ रहे हैं और दीनदयाल शोध संस्थान का काम देखकर खुश हो रहे हैं। तारीफ भी करते हैं। अब अपनी अपेक्षा यह है कि शिक्षा क्षेत्र में भी हमारी तारीफ हो। अपने 500 गांवों में हर परिवार में, हर परिवार के हर व्यक्ति में नैतिकता का व्यवहार दिखाई पड़े, यह कार्यक्रम इसीलिए है।

नैतिकता का अर्थ क्या है? अर्थ है साधारणतः हम पर जो दायित्व है, उस दायित्व को हम पूरा करें। दायित्व तब पूरा होता है जब हमारा दिल और दिमाग दोनों हमारे द्वारा जो कुछ काम किया जाना चाहिए, जो कुछ काम हमारे द्वारा अपेक्षित है, वह शत-प्रतिशत पूरा करें। यदि हमें 500 गांव में अपना-अपना दायित्व पूरा करने का स्वभाव लोगों में विकसित करना है तो 500 गांवों में चलनेवाले सारे विद्यालयों का दायित्व हमारा ही है। उनमें पढ़ानेवाले लोगों का दायित्व हमारा ही है। इसको संरचना में कैसे बैठाएं, यह किसी और जगह नहीं हो रहा है। हम चाहे गुरुकुल चला रहे हों, चाहें आश्रमशाला चला रहे हों, सुरेंद्रपाल चला रहे हों, चाहे मझगवां की बालिका विद्यालय या गनीवां का परमानंद आश्रमशाला विद्यालय चला रहे हों, हमें दिखाना है कि दायित्व को कैसे पूरा करते हैं।

चित्रकूट में शैक्षणिक प्रकल्पों की बैठक में नानाजी का उद्बोधन। 26 अप्रैल, 2004

विराट् पुरुष

मौजूदा प्रधानमंत्री ने हमारा काम देखकर पूछा कि आप इतना बड़ा काम विशेषज्ञों की मदद के बिना कैसे कर रहे हैं? हमने कहा कि हमारे दायित्वपूर्ण समाज–शिल्पियों ने यह कर दिखाया है। दिल्ली में उन्होंने हजारों लोगों की सभा में कहा कि विकास का काम कैसे होता है, चित्रकूट जाकर देखो। अब आप यह करिश्मा करके शिक्षा क्षेत्र में करके दिखाइए। समाज विकसित होना चाहिए, यदि यह नहीं हुआ तो शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त नहीं होगा। शिक्षा शासन का काम है ही नहीं। इसलिए मान्यता प्राप्त करने से ही शिक्षा का लक्ष्य पूरा नहीं होता। हम सरकार के हाथ अपना विद्यालय नहीं दे रहे। शिक्षा का मूल उद्देश्य है कि मनुष्य अनैतिक न बने। आप सब लोगों ने कबीर का नाम सुना है। कबीर कोई अपवाद नहीं है। कबीर होता है बुनकर। लेकिन वह पूरा दर्शन बन गया। वह कहता था कि मैं जो कपड़ा बुन रहा हूं, वह हर इनसान के लिए बना रहा हूं। इनसान ही भगवान् है। कपड़े का ताना और बाना मजबूत होना चाहिए। इसे ईमानदारी कहते हैं। यह भाव आना चाहिए। चाहे झाड़ू लगाने का काम है, कोई छोटा नहीं है। हिंदुस्तान की हर जाति में ऐसा मार्गदर्शक निकला है। रैदास ने पूरे समाज में नैतिकता लाने की ठानी। आज विद्यालयों का यह दायित्व है। विद्यालयों में पढ़ानेवाले गुरुजनों का दायित्व है कि अपने चिंतन में, आचरण में इस दर्शन को उतारे। ऐसा हुआ तो स्वावलंबन कठिन नहीं है।

□

ज्ञानोपार्जन
विद्यालयों में सहजीवन पनपे

अध्यापन में संलग्न महिला-पुरुषों का काम जानकारी देना, समझदारी देना और व्यवहार सुधारना है। नौकरी करना नहीं। नौकरी करने की भावना से जो काम करते हैं, वे वास्तविक अध्यापक-अध्यापिका बनने के योग्य नहीं होते। हमें खास तौर से यह ध्यान में रखना पड़ेगा। क्योंकि संपूर्ण समाज का अपने को विकास करना है। एक तरफ लोग इतना कमाते हैं कि उनके संग्रह के कारण सैकड़ों लोग गरीब हो जाते हैं। गांव में साल भर में एक साड़ी पाना एक महिला के लिए कठिन है। शहर की महिला कितनी साड़ियां रखती हैं। एक जगह भंडार लग रहा है तो दूसरी जगह अभाव पैदा होगा ही। यह ठीक करने का भी काम हमारा है। अपना सुरेंद्रपाल ग्रामोदय विद्यालय अन्य विद्यालयों जैसा नहीं है। यह लोगों को अपनों के लिए जीना सिखानेवाला विद्यालय है। समाज के लिए मार्गदर्शक बनने की दृष्टि से यह विद्यालय काम करेगा। दुनिया का विचार न करते हुए अपना स्वार्थ साधन करना अध्यापकों का जीवन नहीं है।

दूसरा विषय है, हमारे विद्यालय में आनेवाले बच्चों का सह जीवन कैसे बने? सह जीवन आज नहीं हो रहा है। समाज, माता-पिता, विद्यालय, अपने बच्चों के लिए खूब कमाई कैसे करें, सुखमय कैसे रहें, ये सिखाने के केंद्र बन गए हैं। ये असामाजिक केंद्र हैं। सारा समाज इसीलिए दिन- प्रतिदिन अधिक गड़बड़ हो रहा है। परिवार में सामाजिक संस्कार मिल नहीं रहे हैं। विद्यालय इसकी पूर्ति कर सकते हैं। विद्यालय में बच्चे अलग-अलग घर से आते हैं। कोई संपन्न होगा, कोई गरीब होगा। और ये आपस में परिचित नहीं होते। इनमें परस्पर का जीवन कैसे खड़ा करना है, यह शिक्षा देने के कार्यक्रम हम चला रहे हैं। विद्यालय सामाजिक जीवन का अभ्यास करानेवाले केंद्र हैं। सुरेंद्रपाल ग्रामोदय विद्यालय से यह अपेक्षा है कि बच्चे एक-दूसरे के साथ मिलकर काम करने के अभ्यस्त हों। ऐसे कार्यक्रम हम तैयार कर रहे हैं क्या? विद्यालय में पढ़नेवाले बच्चों में स्वावलंबन का लक्ष्य प्राप्त करने के कार्यक्रम हम चलाएंगे। ये तभी होगा, जब सारे अध्यापक-अध्यापिकाएं मिलकर अपने विद्यालय को स्वावलंबी बनाएंगे। विद्यालय का परिसर 29 एकड़ का है, जिसमें से एक उद्यमिता विद्यापीठ भी है। हम एक मॉडल

सुरेंद्रपाल ग्रामोदय विद्यालय में नानाजी का उद्बोधन (तिथि अज्ञात)

विद्यालय, यानी प्रायोगात्मक विद्यालय चला रहे हैं। हमें 500 ग्रामों के विद्यालयों को आदर्श विद्यालय बनाना है। उसके लिए ये प्रयोगशाला है। स्वयं में आप लोगों को स्पष्ट कल्पना होनी चाहिए कि नई संतान की शिक्षा कहां से प्राारंभ होती है। वह होती है मां से। मां के गर्भ में 9 महीने के काल में संतान पर मां के स्वास्थ्य का, मां की मानसिकता का, मां की असीम इच्छाओं का, मां के व्यवहार का, मां की प्रसन्नता, मां का दु ःख, मां के मन का क्लेश, इन सबका प्रभाव होता है। लेकिन इस मूलभूत बात की जानकारी मां को होती नहीं। इस बात की ओर स्वतंत्रता पाने के बाद भी ध्यान नहीं दिया गया। माता-पिताओं को स्वयं के विकास का ज्ञान देने के लिए हम सहज संपर्क और स्नेह द्वारा उनका सहयोग प्राप्त करेंगे। हर एक को अपना बच्चा, बच्ची अच्छे हों, ये सबकी चाह रहती है और उनके बच्चे के लिए हम ये काम कर रहे हैं तो फिर उनका सहयोग मिलने में ज्यादा दिक्कत नहीं है।

बच्चा अपने वातावरण और बड़ों के आचरण से सीखता है। अध्यापक क्या करता है, क्या सोचता है, क्या बोलता है, क्या उद्योग करता है, कैसे संबंध रखता है, परिवार का क्या तौर तरीका है, उसके चारों तरफ रहनेवाले लोगों का क्या तौर-तरीका है, इन सब चीजों को आखों से देखता है, कानों से सुनता है और उसका विकास उसके अनुसार ही होता है। शिक्षा में त्रिवेणी संगम की जरूरत है—माता-पिता, पास-पड़ोस के आबादी के रहनेवाले लोग और अध्यापक-अध्यापिकाएं। इन तीनों को परस्परपूरक कैसे बनाया जाए, इस हेतु से हमने यह विद्यालय शुरू किया है। परस्परपूरकता महत्त्व की बात है। जो अपने देश में झगड़े चल रहे हैं हमारी तनख्वाह इतनी करो, हमारी तनख्वाह उतनी करो, ये ठीक नहीं है। आप जितनी अच्छी सेवा करोगे, आपको मिलेगा। आज समाज में जो गड़बड़ियां चल रही हैं, अव्यवस्था बढ़ रही है, अन्याय और अत्याचार बढ़ रहे हैं, भ्रष्टाचार व बलात्कार बढ़ रहे हैं, इसका कारण क्या है? समाज में ऐसे कार्य, जिसको करने से सामाजिक जरूरतें पूरी न हों, वो परस्परपूरकता में बाधक हैं। परस्परपूरकता का अभाव ही समाज को अव्यवस्थित करता है।

□

राष्ट्र की नवरचना
केंद्र बिंदु बनें विद्यालय

मुझे बहुत खुशी है कि सरस्वती शिशु मंदिर के नाम से नागौद में विद्यालय के भवन का उद्घाटन समारोह के कार्यक्रम में समाज के सभी स्तरों के विशिष्ट बंधु उपस्थित हैं। इसी में नागौद के राजा होते हुए एक नागरिक के नाते यहां के कर्तव्यवान राजा साहब, आदरणीया रानी साहब सहित उपस्थित हैं। यहां बहुत से शादीशुदा लोग हैं, लेकिन वे शायद अपनी पत्नी को भूल गए हैं और अकेले ही यहा पहुंच गए हैं। ऐसा क्यों होता है, ये मेरे लिए समझना कठिन है, क्योंकि मैं विवाहित हूं ही नहीं। पत्नी को छोड़कर कार्यक्रमों में उपस्थित होना गलती है। कैसे समाज का उत्थान होगा यदि समाज के दोनों पहिए साथ नहीं चलेंगे।

सरस्वती शिशु मंदिर गोरखपुर में जुलाई, 1950 में शुरू हुआ था। कोई अध्यापक नहीं था। मैंने स्वयं पढ़ाना शुरू किया था। 5 महीने के बाद मुझे दो अध्यापक मिले, क्योंकि मैंने सोचा था कि अध्यापक वही होगा सरस्वती शिशु मंदिर में, जो पत्नी और पति के रूप में कार्य करेगा। कठिन था, लेकिन शुरुआत में यह काम संभव हुआ। मुझे एक साल के बाद दूसरा काम सौंपा गया और मैं सरस्वती शिशु मंदिर से 1951 के अगस्त से दूर हो गया। शिशु मंदिर क्यों शुरू हुआ, विचार करें। विद्यालय की चार दीवारी में जो पढ़ाया जाता है, उससे ही बच्चों का अस्तित्व बनता है क्या? वे उससे क्या पढ़ते हैं, वे उससे क्या सीखते हैं, क्या उसके अनुसार वे आचरण कर पाते हैं? बातें चाहे हम जितनी बड़ी-बड़ी कर लें, वस्तुस्थिति को भुला दिया गया तो लक्ष्य मिलेगा नहीं।

आप विचार करें कि क्या बच्चे पढ़ाने से पढ़ते हैं? क्या कोई मां या कोई पिता यह दावा कर सकता है कि हमने अपने बेटे को या बेटी को बोलना सिखाया। नन्हे बच्चे अपने आप जन्म के बाद बुद्धि तथा आत्मशक्ति के कारण ठीक से वाक्य के वाक्य बोलते हैं। कहां क्रिया हो, कहां विशेषण हो, कहां संज्ञा हो, कोई सिखाता है उनको? बच्चे की आंखें बड़ी पल्लवी होती हैं। बच्चे के कान बहुत ही क्रियाशील होते हैं और बच्चे का दिमाग देखी हुई चीज और सुनी हुई बात अपने मस्तिष्क के पटल पर अंकित कर लेते हैं। तो बच्चे अपने कुटुंब में क्या देखते हैं और क्या देखना चाहिए, अपने कुटुंब में क्या सुनते हैं, क्या सुनना चाहिए, जिस आबादी में उनका परिवार रह

सरस्वती शिशु मंदिर, नागौद के उद्घाटन पर नानाजी का उद्बोधन
नवस्वदेश नानाजी विशेषांक, 2010 (मूल स्रोत एवं तिथि अज्ञात)

रहा है उस आबादी के नागरिक कैसा–कैसा बरताव करते हैं, कैसी–कैसी चर्चाएं करते हैं और जीवन में कैसा लक्ष्य रखते हैं, यह बच्चे से बच नहीं सकता।

शिशु मंदिर इसीलिए शुरू किया गया था कि अध्यापक–अध्यापिकाएं अपने शिशु मंदिर में पढ़ने के लिए आनेवाले बालक–बालिकाओं के परिवारों में आदर्श संस्कार करने की व्यवस्था करें। जब हम अपनी परंपरा की बात करते हैं, हिंदुत्व की बात करते हैं, तो हम सोचें कि धर्म क्या है, हमारी परंपरा क्या है, हमारी सभ्यता क्या है, हमारी संस्कृति क्या बताती है 'गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः'। क्या हम अपने विद्यालय आनेवाले गुरु को विकसित कर रहे हैं? राष्ट्र की नवरचनाएं वहां होती हैं, जहां राष्ट्र के घटक जन्म पाते हैं। और हमारे यहाँ कहा गया है कि बच्चे के व्यक्तित्व का विकास गर्भ से ही शुरू हो जाता है। विद्यालयों को या विद्यालयों में पढ़ानेवाले अध्यापक–अध्यापिकाओं को राष्ट्र नवरचना को वास्तविक अर्थ में साकार करना है। आज स्थितियां बदल गई हैं। महापुरुषों की कीर्ति हम उजागर करें, परंतु वर्तमान में प्रचलित परिस्थिति को समझकर भविष्य निर्माण करने की दिशा में कदम बढ़ाएं। यही प्रार्थना करता हूं कि नगर में प्रत्येक कक्षा में पढ़ानेवाले अध्यापक–अध्यापिकाओं के जीवन से कौन सी प्रेरणा मिलनी चाहिए, उन्हें देखकर बच्चे अपना व्यक्तित्व किस प्रकार से विकसित करें, यह अध्यापकों का दायित्व है। गुरुजन किसी परिवार में जाएँ, चाहे किसी विवाह में जाएँ, चाहे किसी भोज में जाएँ, चाहे किसी पार्टी में जाएँ, वहां उन्हें ऐसा व्यक्तित्व दिखाना चाहिए, जिसमें देशभक्ति की भावना प्रबल हो।

□

शिक्षा को संस्कारों से एवं शिक्षित वर्ग को समाज–निर्माण से जोड़ने का आग्रह शिक्षा के विषय पर उनकी पत्र–शृंखला में देखा जा सकता है।

विराट् पुरुष

1

03 जुलाई, 1982

प्रिय सुरेखा,

नागपुर में 'गुण–गौरव माला' नाम से आगामी 25 सितंबर से एक प्रकाशन प्रारंभ होने जा रहा है। उसी दृष्टि से तुम्हें लेखन का कार्य करने के लिए सूचित करना चाहता हूं। साधारण से साधारण मानव स्वयं में सतत गुण संवर्धन करता रहे तो वह स्वयं असामान्य कर्तृत्व का धनी बन सकता है। मानव इतिहास बताता है कि अति साधारण परिवार में अनेक महापुरुष विकसित हुए हैं। यह विकास–क्रम वास्तविकतः शैशवावस्था से ही प्रारंभ होना चाहिए, किंतु इस कार्य की ओर किसी का ध्यान नहीं है। यदि यह कार्य किया गया तो अपने संपूर्ण समाज की नई पीढ़ी अधिक कर्तृत्वशाली एवं श्रेष्ठ सिद्ध हो सकती है। इसी उद्देश्य से 'गुण–गौरव माला' का प्रकाशन प्रारंभ होने जा रहा है। इस लेखन का आधार होगा 'विभिन्न लोगों के प्रकाशित जीवन–चरित्र'।

जीवन–चरित्र अलग–अलग रूपों में उपलब्ध हैं। एक प्रकार के जीवन–चरित्र हैं, जिन्हें आत्मकथा कहते हैं, जो अनेक लोगों ने स्वयं अपने चरित्र लिखे हैं। दूसरे प्रकार के जीवन–चरित्र हैं, जो ऐसे विशिष्ट लोगों के हैं, जिनके जीवन–चरित्र दूसरों ने लिखे हैं। ये जीवन–चरित्र किस के हैं, यह महत्त्व का प्रश्न नहीं है। ये जीवन–चरित्र उनके भी हो सकते हैं, जो बहुत पुरातन काल में महिलाएं या पुरुष हो चुके हैं। रामायण–महाभारत में भी ऐसे अनेक चरित्र हैं। तीसरे प्रकार के चरित्र हैं, जो निकट इतिहास में हुए हैं। ऐसे लोगों के भी जीवन–चरित्र हैं, जो अभी जीवित हैं। आत्म–चरित्र या जीवन–चरित्र देशी व्यक्ति का है, विदेशी व्यक्ति का है, महिला का है या पुरुष का है, महापुरुष का है या साधारण व्यक्ति का है, इसमें हमें भेद करने की आवश्यकता नहीं है। जीवन–चरित्र साधारणतः उन्हीं लोगों का प्रकाशित होता है, जिनके जीवन में ऐसी अनेक घटनाएं और प्रसंग उपस्थित हुए हैं, जिनमें अनेक अंतर्निहित सद्गुण प्रकट हुए हैं। 'गुण–गौरव माला' गुण प्रकट होनेवाली घटनाओं का सरस वाणी में किंतु अति सरल शब्दों में उन प्रसंगों का यथासंभव कम–से–कम शब्दों में वर्णन हो सकता है। शब्द–चित्र ऐसा होना चाहिए कि पढ़ते समय उस घटना का प्रत्यक्ष चित्र सहज में ही आंखों के सामने चलचित्र के रूप में खड़ा हो सके। ये कथाएं मानव में जितने गुण संभव हो सकते हैं, उन सभी गुणों का परिचय करानेवाली होगी। कथा लिखते समय यह लिखा रहना आवश्यक है कि यह कथा किसके चरित्र में से है—यह चरित्र किसने लिखा है, यह कथा कौन से साल में और कहां घटित हुई थी। ये सब कथाएं सत्य कथाएं होगीं, कल्पित कथाएं नहीं।

इसके लिए तुम्हें अकोला के पुस्तकालयों से संबंध स्थापित करना होगा। यह पुस्तकालय स्कूल–

1 *लेखन कला की बारीकियों को समझाता पत्र। नानाजी के अपने लेखन में भी इन सभी गुणों का समावेश देखा जा सकता है। सुश्री सुरेखा श्रॉफ डीआरआई की कार्यकर्ता रहीं। वे मा. नानाजी के परिवार की सदस्या हैं।*

कॉलेज के हो सकते हैं, सार्वजनिक पुस्तकालय हो सकते हैं या कुछ अच्छे लोगों के यहां उनके अपने निजी पुस्तकालय हो सकते हैं। पुस्तकालयों में जीवन-चरित्र या आत्म-चरित्र कौन-कौन से हैं, इसकी सूची बना लेनी चाहिए, उनमें से एक-एक पढ़ने के लिए लेकर अपनी तीक्ष्ण नजर से उन चरित्र नायकों के जीवन की उन घटनाओं को खोज निकालना चाहिए, जिन घटनाओं से उनका कोई-न-कोई गुण प्रकट हुआ हो। उस प्रसंग का वर्णन उस चरित्र में लिखा हुआ जैसा का तैसा लेने की आवश्यकता नहीं है। उस घटना को अपनी भाषा में, अपने शब्दों में और जीवन-चरित्र में लिखी हुई पद्धति से अधिक प्रभावी पद्धति से लिख डालना चाहिए। अपनी रोज की पढ़ाई तथा घर का आवश्यक काम करते हुए रोज नियम से घंटा-दो घंटा इसी कार्य में तुम्हें लगाना चाहिए।

इन पुस्तिकाओं का उपयोग, माता-पिता या घर के अन्य लोग, जो कहानियों के रूप में छोटे-छोटे बच्चों को कथाएं सुनाएंगे, कर सकेंगे। इनका उपयोग अध्यापक-अध्यापिकाएं भी कर सकेगीं। ये पुस्तिकाएं इस रूप में छापी जाएँगीं, जो दूसरी-तीसरी या इससे आगे की कक्षाओं में पढ़नेवाले बालक और बालिकाएं आसानी से पढ़ सकेंगे। इन कथाओं के सुनने या पढ़ने से, सुनानेवाले, सुननेवाले और पढ़नेवाले के जीवन में भी गुणों का विकास होगा। यह कार्य आगामी नई पीढ़ी को इस पीढ़ी से अधिक योग्य, अधिक कर्तृत्वशाली एवं अधिक सामाजिक बनाने की दृष्टि से होगा। इन जीवन-चरित्रों को पढ़ते-पढ़ते तुम्हारे में भी नई-नई आकांक्षाएं जगेंगी। किस प्रकार से सामाजिक कार्य करना चाहिए, इस बात की कल्पना आएगी तथा सभी गुणवान एवं कर्तृत्वशाली लोगों के अनुभवों का तुम्हें पूरा लाभ अपने जीवन में काम करते समय होगा। सामाजिक कार्य के लिए स्वयं में क्षमता निर्माण करने का यह प्राथमिक कदम है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति नित्यप्रति आधा घंटा, एक घंटा पूजा का कार्य नहीं छोड़ता, उसी प्रकार नित्यप्रति जीवन-चरित्र पढ़ना और उन जीवन-चरित्रों में से गुण प्रकट करनेवाली घटनाओं को लिखकर रखने का कार्य भी एक अति उच्च प्रकार की पूजा है।

2

01 **नवंबर**, 1983

प्रिय बंधु एवं बहनों,

आप विद्यालय के कार्य में संलग्न हैं। यह कार्य अन्य सभी कार्यों से पूर्णतः भिन्न है। इस कार्य में पढ़ानेवाले व्यक्तियों की मानसिकता का संस्कार बच्चों पर भी पड़ता है, ऐसी स्थिति में यह ध्यान रखना पड़ता है कि पढ़ाने में संलग्न व्यक्तियों का अंतर्बाह्य जीवन बालक-बालिकाओं को सुसंस्कार और सही दिशा देने में सहायक हो। अन्य लोगों के समान केवल धनार्जन पर अधिक ध्यान देनेवाला व्यक्ति अध्यापन का दायित्व निभा ही नहीं सकता। जिस कल्पना से हमने विद्याध्ययन का माध्यम विकसित करने के बारे में सोचा है।

2 *निर्विकार व्यक्ति ही सही शिक्षक साबित हो सकता है।*

समाज में आज यही वातावरण है। किंतु इस विद्यालय के विकास के लिए जिन्होंने एक धार्मिक दायित्व निभाने का व्रत लेकर कदम बढ़ाया है, उन्हें अध्यापन में लगे नए-नए सहयोगियों का मानस व्यक्तिगत संपर्क के द्वारा अपने समान बनाने हेतु अखंड प्रयास करना होगा। तभी जाकर विपरीत वातावरण में भी हम लोग अपने लक्ष्य की ओर आर्थिक गति से और बिना व्यवधान के बढ़ सकेंगे।

हम लोगों का व्यक्तिगत एवं सामूहिक दायित्व है कि हम बच्चों के विकास के साथ-साथ ही अपने सहयोगियों के जीवन दृष्टिकोण में आवश्यक विकास करते चलें। यह विकास इस रूप में किया जाना चाहिए, जिसका आभास किसी को भी न हो। सतत संपर्क सहज में ही साथ-साथ में उठना-बैठना, खाना-पीना और उसी में विभिन्न प्रकार की बातों के माध्यम से ठीक दिशा का अपने आप बोध होता चले, ऐसा प्रयास करना। मैं समझता हूं, इसके लिए हमें अपने स्वभाव में एवं व्यवहार में भी आवश्यक परिवर्तन करना पड़ेगा तथा स्वाध्याय के द्वारा अपनी कल्पनाशक्ति, अपनी कार्यशक्ति, अपनी बुद्धिमत्ता तथा सहजता विकसित करनी होगी। हम लोग पायदान नहीं हैं कि वैसे ही पड़े रहेंगे और जैसे कुछ है, उसी का लोग उपयोग करते रहेंगे, यह चाहेंगे।

मुझे भरोसा है कि हम लोग विचारक के रूप में स्वयं को विकसित कर इस विद्या मंदिर को मंगल वातावरण से परिपूर्ण करेंगे।

3

बैंगलोर, 21 अगस्त, 1991

प्रिय श्री कपूर साहेब

मैं पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार यहां 14 अगस्त को पहुंचा हूं। दिनांक 15 से यौगिक क्रियाओं और आसनों का अभ्यास प्रारंभ किया है। इसका शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से लाभ अवश्य होगा। यहां आने से एक और लाभ हुआ है। वह है हमें अपने विश्वविद्यालय में योग विज्ञान की दृष्टि से क्या करना चाहिए, इसकी स्पष्ट कल्पना।

यहां एकांत उपलब्ध है। इस कारण अपने विश्वविद्यालय की दृष्टि से अध्ययन व चिंतन की सुविधा उपलब्ध है। लग रहा है कि मन और मस्तिष्क में विश्वविद्यालय के अतिरिक्त अन्य विषय प्रवेश ही नहीं करता।

मैं गत माह की 29 तारीख को मराठवाड़ा कृषि विश्वविद्यालय देखने गया था। इसके पूर्व भी देश के एवं विदेशों के अनेक विश्वविद्यालय देखने का मुझे सुअवसर मिला है। कैंब्रिज एवं ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में बहुत विशाल एवं सुंदर चर्च बने हुए हैं। वे विश्वविद्यालय के अभिन्न

3 *ग्रामोदय विश्वविद्यालय में कुलपति श्री राजनारायण कपूर को लिखे इस पत्र के माध्यम से नानाजी ने विश्वविद्यालय का स्वरूप प्रस्तुत किया। श्री कपूर डीआरआई के प्रधान सचिव एवं चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय के संस्थापक कुलपति रहे।*

अंग हैं। उनकी कारीगरी मन को मोह लेनेवाली है। साफ-सफाई व रख-रखाव बहुत ही प्रभावपूर्ण एवं आदर्श है। इतने सालों के बाद भी कोई टूट-फूट नजर नहीं आती। विश्वविद्यालय की इमारतें भी अपने ही ढंग की एवं उत्तम हैं।

इन सबको स्मरण कर अपने विश्वविद्यालय के बनाए जानेवाले रूप के संबंध में दिमाग में कल्पनाएं उठना व विचारमंथन चलना स्वाभाविक है। कहीं से भी अच्छी बातें अपनाना विकास की दृष्टि से आवश्यक है, किंतु आवश्यक बातों की नकल करना सब दृष्टियों से गलत है। इस संबंध में हम सब लोग एकमत हैं।

जब मैं कैंब्रिज विश्वविद्यालय की इमारतों को और उनके उपयोग की विधियों को समझ रहा था, उस समय मेरे मन में एक प्रश्न उपस्थित हुआ था। बहुत विशाल चर्च—उसमें लगी हुई डेढ़ हजार कुरसियाँ—इसके अतिरिक्त पर्याप्त खाली जगह। इस चर्च की इस विशाल इमारत का उपयोग केवल रविवार के दिन। वह भी लंच के पूर्व। धार्मिक भावना का नाजुक विषय। अतः इसकी वहां चर्चा करना अनुचित था, किंतु इतना विशाल हॉल। उस पर किया गया व्यय अन्य सभी इमारतों से कई गुना और उपयोग न्यूनतम।

इसी प्रकार अन्य बड़ी-बड़ी इमारतें, जिनमें विशाल क्लासरूम्स तथा अनेक अन्य हॉल्स। उसमें से कुछ हॉल्स का उपयोग 24 घंटों में दो घंटे व क्लासरूम्स का अधिक-से-अधिक पांच घंटे होता है। साल के 365 दिनों में विश्वविद्यालय में साधारणतः 116 दिन छुट्टियां होती हैं।

इनमें लेबोरेटरीज का उपयोग बहुत होता है। छुट्टियों के दिनों में भी शोध छात्र एवं प्राध्यापक अठारह-अठारह घंटे लेबोरेटरीज में ही काम करते हुए बिताते हैं। अतः इन इमारतों का पूरा उपयोग होता है, किंतु शेष इमारतों का उपयोग बहुत कम होता है।

अपने देश के विश्वविद्यालयों द्वारा उन्हीं विश्वविद्यालयों की नकल हो रही है, किंतु अपने विश्वविद्यालयों की विभिन्न विषयों की लेबोरेटरीज में वह वातावरण देखने को नहीं मिलता, जो वहां की लेबोरेटरीज में मैंने देखा है।

विश्वविद्यालयों के भवनों पर अपने यहां जितना व्यय किया जा रहा है, उस व्यय की तुलना में उन भवनों का उपयोग कितना होता है, इस पर कोई विचार कर रहा हो, ऐसा दिखाई नहीं देता। इसका कुछ विचार अपवादस्वरूप किया था एक महापुरुष ने। विश्वकवि स्व. गुरुदेव रविंद्रनाथ ठाकुर ने। उनके द्वारा प्रस्थापित शांति निकेतन एवं श्रीनिकेतन में इस विचार की झलक हम आज भी देख सकते हैं। दुर्भाग्य है कि उनके इस अनुकरणीय प्रयास को आगे बढ़ाने का काम देश में किसी भी विश्वविद्यालय के, महाविद्यालय के या विद्यालयों के संस्थापकों ने नहीं किया है।

अपना विश्वविद्यालय ग्रामोदय विश्वविद्यालय है। वह अन्य विश्वविद्यालयों की प्रतिकृति का रूप किसी भी दृष्टि से नहीं बनेगा। यह हम लोगों का सुविचारित संकल्प है।

आज भी अपने देश की आबादी 72 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण अंचल में ही रह रही है। वह शहरों की ओर न दौड़ें, यह अपना लक्ष्य है। अपने विश्वविद्यालय के भवनों के निर्माण के समय

हमें ध्यान में रखना होगा कि ग्रामीणों के आवासों की दशा क्या है? उनके परिवारों को रहने के लिए कितनी जगह है? उनके बच्चे पढ़ते हैं? उन बच्चों के विद्यालयों की इमारतों की स्थिति कैसी है? उनके जानवरों के लिए क्या व्यवस्था है? उनके बच्चों के खेलकूद एवं ग्रामीणों के आमोद-प्रमोद के लिए कोई स्थान है भी? सामूहिक कार्यक्रम के पंचायत घरों का अस्तित्व भी है?

उपर्युक्त वास्तविकता का उल्लेख करने का अर्थ यह नहीं है कि अपने विश्वविद्यालयों के भवन गांवों की हालत की नकल हों। अपितु विश्वविद्यालय के भवन निर्माण करते समय हम ध्यान में रखें कि अगले पच्चीस-तीस वर्षों में हम कम-से-कम सतना व बांदा जिलों के ग्रामों में रहनेवालों की उपर्युक्त आवश्यकताओं को ग्रामोदय विश्वविद्यालयों के भवनों के अनुसार रूप प्रदान कर सकें। हमारे भवन उनके लिए व्यावहारिक धरातल पर अनुकरणीय हों। यह दृष्टिकोण अधिक महत्त्व का है। अन्य विश्वविद्यालयों के भवनों से प्रतिस्पर्धा करना ग्रामोदय विश्वविद्यालय का सपना नहीं है।

यह सोचना जरूरी है कि अपने भवनों का, अर्थात् उनमें उपलब्ध होनेवाली जगह का अधिकतम उपयोग किस रूप में किया जाएगा। यह विचार हमें भवनों पर अपव्यय न होने की दिशा प्रदान करेगा।

4

10 सितंबर, 1991

प्रिय श्री कपूर साहब,

प्रचलित शिक्षा-पद्धति एवं सामान्य जीवन-दृष्टि के कारण थोड़ा भी पढ़ा-लिखा व्यक्ति ग्रामीण अंचल में रहना पसंद नहीं करता। अतः गांवों में युवा-वर्ग का अभाव बढ़ रहा है। यह दिशा बदले बिना ग्रामीण पुनर्रचना की बातें अव्यावहारिक हो रही हैं। अतः विद्यालयों में पढ़नेवालों को तदनुसार प्रेरणा देने की व्यवस्था 'चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय' करेगा।

यह विश्वविद्यालय इसकी अनुभूति कराता है कि युवा-वर्ग को ग्रामीण जीवन अपनाने की प्रेरणा मात्र देने से अपेक्षित परिणाम प्रकट नहीं होंगे। कारण, आजादी पाने के बाद भी शहरी संस्कृति को ही सब प्रकार का प्रोत्साहन मिल रहा है। मानव जीवन के लिए आवश्यक सभी सुविधाओं एवं प्रगति के साधन केवल शहरों में ही उपलब्ध हैं। ऐसी स्थिति में कौन नौजवान या युवती ग्रामीण अंचल में रहना पसंद करेगी? अतः अपने विश्वविद्यालय को ग्रामीण आबादियों में जीवन की सुविधाओं एवं प्रगति के साधनों को उपलब्ध कराने का दायित्व निभाना होगा। तभी अपने विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई प्रेरणा व्यावहारिक रूप ग्रहण करेगी। ये दोनों काम विश्वविद्यालय साथ-साथ नहीं करेगा तो इस विश्वविद्यालय से निकले शिक्षित व प्रशिक्षित युवक

4 *नानाजी की विशेषता थी कि वे सुझाव भी बड़े सकारात्मक तरीके से देते थे।*

व युवतियां अन्य विश्वविद्यालयों से निकले स्नातकों की दिशा में ही गतिशील होंगे।

इस विश्वविद्यालय की विशेषता ग्रामीण अंचल की वर्तमान समस्याओं का निराकरण करना मात्र नहीं है। ग्रामीण जीवन की पुनर्रचना करना अपने विश्वविद्यालय की विशेषता होगी। प्रचलित रचना, चाहे वह सामाजिक हो, आर्थिक हो, राजनीतिक हो या सांस्कृतिक—सभी समस्याओं की जननी है। इसी कारण यह विश्वविद्यालय ग्राम विकास शब्द को न अपनाकर ग्रामीण पुनर्रचना शब्द का उपयोग करता है।

शासन व प्रशासन हर एक देश व प्रदेश के लिए अनिवार्य है। नौकरशाही प्रशासन का ही अभिन्न अंग है। उसी पर शासन निर्भर करता है। किंतु विद्यालय एवं विश्वविद्यालय संचालन में यह ध्यान रखना आवश्यक रहता है कि नौकरशाही कभी भी प्रेरक तत्त्व नहीं बन सकती। विद्यालय या विश्वविद्यालय नई पीढ़ी के लिए प्रेरणा-केंद्र हैं। अतः उसमें नौकरशाही वृत्ति को तनिक भी प्रश्रय न मिले, इसका विशेष ध्यान रखा जाएगा। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भी शिक्षण-पद्धति के इस मूल तत्त्व की पूर्णतः उपेक्षा होती आ रही है। अतः यह विश्वविद्यालय इस दृष्टि से विशेष सतर्कता बरतेगा।

प्रशासन की प्रचलित पद्धति में अधिकार भावना काम करती है। जहां अधिकार भावना की महत्ता होगी, वहां कर्तव्य भावना का अभाव होगा। जहां कर्तव्य भावना की कमी होगी, वहां न रचनात्मक वृत्ति पनपेगी और न स्वयं प्रेरणा अंकुरित होगी। शिक्षण व प्रशिक्षण केंद्रों में यही सब होता आ रहा है। अतः इस विश्वविद्यालय में प्रचलित प्रशासन पद्धति के स्थान पर पारिवारिक व्यवस्था का अवलंबन किया गया है। वस्तुतः कुलपति या कुलाधिपति शब्द इसी बात का परिचायक है। विद्यालय या विश्वविद्यालय एक पारिवारिक इकाई है। उस इकाई का प्रमुख कुलपति एक प्रशासन नहीं अपितु पितृत्व का दायित्व निभाने की कला का विशेषज्ञ है। उसे अधिकार भावना से नहीं, विशुद्ध आत्मीयता की भावना के माध्यम से विश्वविद्यालय की संपूर्ण गतिविधियां संचालित करनी हैं, जिससे युवक युवतियों में कर्तव्य तत्परता की प्रवृत्ति विकसित हो। इसी अवधारणा की नींव पर यह विश्वविद्यालय खड़ा हो रहा है।

स्वावलंबन इस विश्वविद्यालय की विशेषता होगी। जो विद्यालय या विश्वविद्यालय सुनियोजित अवधि में स्वावलंबी नहीं बनता, वहां शिक्षण व प्रशिक्षण प्राप्त युवक-युवतियां स्वावलंबन के पाठ पढ़ नहीं सकतीं। शिक्षा क्षेत्र के वर्तमान वातावरण में विश्वविद्यालय को स्वावलंबी बनाना सरल बात नहीं है। यह सत्य है कि प्रचलित वातावरण में यह विचार कल्पना जगत् की एक उड़ान मात्र अनुभव होती है, किंतु इसे प्रत्यक्ष व्यवहार में लाए बिना पढ़नेवाली नई पीढ़ी के जीवन में स्वावलंबन एवं स्वाभिमान की वृत्ति विकसित करना असंभव है।

इतिहास, भूगोल, दर्शनशास्त्र, समाज विज्ञान आदि विषयों की उपादेयता भी बनी रहेगी, क्योंकि यह विश्वविद्यालय है। यह बात हमारे दिमाग से ओझल न हो, इसकी सतर्कता बरतनी होगी। अन्यथा यह केवल आर्थिक जीवन के संसाधनों के प्रशिक्षण का उच्चतम शिक्षा का केंद्र मात्र बनकर रह जाएगा। यह विश्वविद्यालय बन ही नहीं पाएगा। यह विश्वविद्यालय मानव को मानवीयता से परिपूर्ण करना चाहता है। भारत में ग्रामीण व वनवासी अंचलों में ही 'वसुधैव

कुटुम्बकम्' का साक्षात्कार हुआ था तथा गुरुकुल परिसरों में ही यह दिशा प्रशस्त हुई थी 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु–मा कश्चिद दुखभागभवेत। अतः अपने विश्वविद्यालय के परिचय–पत्र में ऐसी कोई सीमित धारणा नहीं आनी चाहिए, जो विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा को ही ठेस पहुंचाए। हमें सभी प्रकार की स्वयंसेवी संस्थाओं का सक्रिय सहयोग अर्जित करना है। इसमें भी संदेह नहीं है।

5

28 अप्रैल, 1992

माननीय मुख्यमंत्री महोदय,
प्रिय श्री कल्याण सिंहजी,

आपने अध्यादेश द्वारा प्रदेश में परीक्षाओं में नकल करने की प्रचलित कुप्रथा का निर्मूलन करने का कदम उठाकर अभिनंदनीय कार्य किया है। यह कार्य करना अति आवश्यक था, किंतु कुछ बातों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता अनुभव होती है।

परीक्षा देनेवाले लोग नई पीढ़ी और कोमल आयु के बालक–बालिकाएं तथा युवक–युवतियां हैं। अध्यादेश उन्हें गलत व अनैतिक प्रवृत्ति से बचाकर सद्–प्रवृत्ति की ओर बढ़ाने के उद्देश्य से निकाला गया है। अतः नकल करते हुए पकड़े जानेवाले बच्चों को हथकड़ी लगाकर जेल भेजना अध्यादेश के लक्ष्य की पूर्ति नहीं करता। वैसे भी हथकड़ियां लगाने की प्रथा अब कालबाह्य मानी जा रही है। मैं समझता हूं कि इन बच्चों को हथकड़ियां न लगाई जाएं। इसके लिए अविलंब कदम उठाना लाभकारी रहेगा।

इन बच्चों को जेल में रखने की व्यवस्था पर भी उचित ध्यान दिया जाना चाहिए। मैं जेल जीवन से परिचित हूं। अतः इन बच्चों को अन्य कैदियों के साथ रखने से नई पीढ़ी को अनजाने में ही बिगाड़ने का अपराध होने की संभावना है। अतः जेल में इन बच्चों के लिए अलग से उचित व्यवस्था होनी चाहिए। जेल में उनके मार्गदर्शन की भी आवश्यक व्यवस्था की जानी चाहिए, जिससे वे अनुभव करें कि नकल करना उनके व्यक्तित्व विकास के लिए बाधक है।

अध्यादेश पारित कर उसके कार्यान्वयन का कार्य पुलिस कर्मचारियों पर सौंपना भर पर्याप्त नहीं है। उससे इन गुमराह बच्चों पर अन्याय एवं अत्याचार होने की संभावना हो सकती है। इसके अनेक दुष्परिणाम होंगे।

अतः नकल करने की गलती करनेवाले गुमराह हुए इन बच्चों में अपराध प्रवृत्ति न पनपे, इसका विशेष ध्यान रखने का भी प्रबंध किया जाना चाहिए। आशा है, आप स्वयं इन नाजुक पहलुओं की ओर आवश्यक ध्यान देंगे।

5 *परीक्षाओं में नकल करते हुए पकड़े जानेवाले बच्चों के साथ कैसे व्यवहार किया जाए, इस संबंध में नानाजी का दृष्टिकोण। उन दिनों उत्तर प्रदेश सरकार ने परीक्षाओं में नकल पर नकेल कसने के लिए एक अध्यादेश जारी किया था।*

6

09 मई, 1992

प्रिय श्री कपूर साहेब

यह सत्य है कि मैंने जो भी कार्य किए हैं, उनमें सफलता कम और विफलता ही अधिक मिली है। इस तथ्य को मैं न छिपाना चाहता हूं और न छिपाता हूं। अपनी विफलताओं को छिपाना आत्मवंचना अर्थात् अपने आपको ही धोखा देना है। यह अपनी प्रगति में बाधक बनाना है।

करुणानिधान भगवान् की मुझ पर विशेष कृपा है कि वह आप समान अपने-अपने जीवन में सफल लोगों को—मेरे व्यक्तिगत हित के लिए नहीं—उस आदर्श को व्यावहारिक जीवन में साकार करने के लिए, मेरे साथ जोड़ रहा है, जिसके लिए मेरा जीवन समर्पित है। यही एक विश्वास है, जो मुझे साहसपूर्ण कदम बढ़ाने की प्रेरणा देता है।

मैं प्रभु चरणों में प्रार्थना करता रहता हूं कि वह कृपा कर किसी भी प्रकार के अहंकार और आत्मविश्वास में टकराव के प्रसंग उपस्थित न होने दे। अन्यथा विश्वविद्यालय की अवधारणा साकार करने के लिए परस्पर सुखद अभिन्नता अनुभव करनेवाली आवश्यक सुदृढ़ टीम खड़ी करना कठिन होगा। कोई भी स्थायी—आदर्शपूर्ण महान् कार्य महान्-से-महान् व्यक्ति के लिए संभव नहीं होता, जब तक वह परस्पर अभिन्नता अनुभव करनेवाली आवश्यक टीम खड़ी नहीं करता। यह मानव इतिहास का स्पष्ट निष्कर्ष है।

7

दिल्ली, 30 मई, 1992

प्रिय श्री कपूर साहेब,

मैं स्वयं अपने प्रकल्प में संलग्न कार्यकर्ताओं को भी अपनी विफलताओं से परिचित कराता रहता हूं। कार्य की प्रगति के लिए यह विधि सहायक होती है, ऐसा मेरा अनुभव है। किसी की अदृश्य विशेषताओं को समझ पाने की क्षमता शायद मुझ में नहीं है, किंतु केवल एक-दूसरे का आकलन करते रहेंगे तो शायद ही सुखद परिणाम निकले।

आपने लिखा है कि ''हम केवल आदर्श व भावनाओं के समुद्र में डुबकी ही लगाते रहेंगे।'' ऐसा नहीं होना चाहिए। किंतु व्यावहारिकता के नाम पर आदर्श का बलिदान करना भी उचित नहीं हो सकता। मेरे पास तो पूंजी रही है, केवल आदर्शवाद की। आज भी उतनी ही पूंजी है मेरे बैंक बैलेंस में। अतः मेरा आदर्शवाद से बेहद लगाव है।

6 *स्थिति भले अलग हो, लेकिन ध्येय एक होना चाहिए।*

7 *किसी भी कार्य की अंतिम परिणति आदर्श स्थापित करना होता है।*

8

05 फरवरी, 1993

माननीय मंत्री महोदय,
प्रिय श्री अर्जुन सिंहजी,

दिनांक 3 फरवरी के दिल्ली से प्रकाशित 'पॉयनियर' अंग्रेजी दैनिक में पांचवें पृष्ठ पर एक समाचार छपा है। उसमें कहा गया है कि नाना देशमुख का आर.एस.एस. से संबंध होने के कारण उन्हें विश्वविद्यालय से हटाने की संभावना है। मैं नहीं जानता कि इस समाचार में वास्तविकता कितनी है। आप मानव संसाधन विकास मंत्रालय के केंद्रीय मंत्री हैं। अतः इस विषय में पत्र द्वारा आपको वस्तुस्थिति की जानकारी देना मैं आवश्यक समझ रहा हूं। कृपया कष्ट के लिए क्षमा करें।

मैं 1929 की दिसंबर से अर्थात् अपने बाल्यकाल से ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़ा हुआ हूं। सन् 1951 से 1977 की एक मई तक भारतीय जनसंघ का सक्रिय सदस्य रहा हूं। एक मई 1977 से 8 अक्तूबर, 1978 तक जनता पार्टी का कार्यकर्ता रहा हूं। आठ अक्टूबर को स्वर्गीय श्री जयप्रकाश नारायण की उपस्थिति में एवं स्व. श्री कर्पूरी ठाकुर की अध्यक्षता में पटना में हुई विशाल सार्वजनिक सभा में मैंने घोषणा की थी कि मैं आज से राजनीति से स्वयं को पूर्ण रूप से अलिप्त कर रहा हूं तथा शेष जीवन दलीय भावना से मुक्त होकर विकास कार्यों में ही बिताऊंगा। तब से प्रामाणिकता के साथ एकाग्र होकर विकास कार्यों में लगा हुआ हूं। यह सर्वविदित है।

चित्रकूट देश का एक विशेष तीर्थ है। वर्तमान युग में यह तीर्थ नई पीढ़ी के लिए आवश्यक प्रेरणा केंद्र बनाया जा सकता है। इसी एक पावन आकांक्षा से यहां विश्वविद्यालय प्रारंभ करने का विचार मस्तिष्क में उदित हुआ और तदनुसार अगस्त, 1991 को चित्रकूट विश्वविद्यालय की पढ़ाई का कार्य प्रारंभ किया गया। चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय को मानव संसाधन विकास का एक अभिनव केंद्र बनाना मात्र मेरा एकमेव सपना है। इसमें जातिगत, भाषागत, मजहबी या क्षेत्रीय भावनाओं की संकीर्णता न रहे, अपितु मानव मात्र के कल्याण की भावना के आधार पर युवक-युवतियों के सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास का कार्य हो, यही एक लक्ष्य सम्मुख रखकर कार्य प्रारंभ किया गया है।

पश्चिमात्य सभ्यता के वशीभूत होकर मानव जीवन को केवल उपभोग प्रवण मानकर ही शिक्षा क्षेत्र का वातावरण पनप रहा है। नई पीढ़ी को दिशा देनेवाला अध्यापक वर्ग भी वेतनभोगी व अर्थप्रेमी बन गया है। वह स्वयं को सृजनशीलता से वंचित रखकर अपने को नौकर समझने

8 *शिक्षा क्षेत्र को राजनीतिक एवं दलगत भावनाओं से मुक्त रखने पर जोर देता पत्र। मध्य प्रदेश में सत्ता परिवर्तन के पश्चात वहां नए राजनैतिक वातावरण में चित्रकूट विश्वविद्यालय के विरुद्ध एक विषाक्त वातावरण बना दिया गया था।*

में संकोच अनुभव नहीं करता। यह बात उनके स्वभाव एवं व्यवहार से पग-पग पर प्रकट होती है। ऐसी अवस्था में नई पीढ़ी स्वावलंबन, आत्मविश्वास, प्रतिभा एवं पराक्रम की भावना से संपन्न नहीं हो सकती। फिर भी इस दुर्दशा से मुक्ति पाने की विधियों की खोज का कहीं प्रयास होता हुआ दिखाई नहीं देता। यह विश्वविद्यालय इस खोज में संलग्न है। हमने तय किया है कि आगामी दस से पंद्रह वर्षों के बीच यह विश्वविद्यालय आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होगा। इसे न यू.जी.सी. से, इस काल के बाद, अनुदान लेने की आवश्यकता रहेगी, न किसी दानकर्ता से दान लेने की। अध्यापक-अध्यापिकाएं एवं छात्र-छात्राएं मिलकर विश्वविद्यालय में ऐसा पुनरोत्पादक, आर्थिक व्यवस्था का विकास करेंगी, जिससे अध्यापक-अध्यापिकाओं की आजीविका अन्य विश्वविद्यालयों से अधिक अच्छी, संतोषपूर्ण एवं स्वावलंबी होगी तथा छात्र-छात्राओं को भी शिक्षा अर्जित करने के लिए अपने अभिभावकों से धन की अपेक्षा नहीं करनी पड़ेगी।

शिक्षा जगत् में यह एक साहसी और अनोखा प्रयोग किया जा रहा है। वस्तुतः मानव संसाधन विकास का ही यह प्रयोग है। यह आपके मंत्रालय की लक्ष्यपूर्ति का प्रयास है। इसमें किसी भी प्रकार की दलगत भावना नहीं है। मानव संसाधन विकास मंत्री के नाते आपसे सब प्रकार के प्रोत्साहन की अपेक्षा है। इसी कारण 'पॉयनियर' में समाचार पढ़कर मैं आश्चर्यचकित हुआ।

आप सरकार हैं। आपके पास अधिकार है। आप जो चाहें सो करने में समर्थ हैं। किंतु मैं विनम्रता के साथ आपसे एक बात कहना आवश्यक समझता हूं। आपने इस विश्वविद्यालय के प्रयोग से मुझे वंचित किया तो इससे मेरा अर्थात् नाना देशमुख का कोई नुकसान नहीं होगा। कारण, मुझे न अधिकार की आकांक्षा है, न प्रतिष्ठा की। मुझे न आर्थिक लाभ की आवश्यकता है, न किसी स्थान की। किंतु मानव संसाधन विकास के लिए इस आवश्यक प्रयोग की क्षति निश्चित रूप से दुर्भाग्यपूर्ण होगी।

9

25 अगस्त, 1993

माननीय प्रधानमंत्री महोदय,
प्रिय श्री नरसिंह रावजी,

'चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय' के संबंध में आपने जो उत्साहवर्धक आश्वासन दिया था, उससे इस विश्वविद्यालय की लक्ष्य-सिद्धि के बारे में मैं आश्वस्त हुआ हूं। 'चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय' शिक्षा के क्षेत्र में एक अभिनव प्रयोग है। इस प्रयोग के माध्यम से अपने देश के लिए अपेक्षित शिक्षा-पद्धति का विकास संभव है। छात्र-छात्राओं का सर्वांगीण व्यक्तित्व-विकास एक अखंड प्रक्रिया है। इसे खंड-खंड में विभाजित करने से उनके व्यक्तित्व-विकास में अवरोध उत्पन्न होता है। इस कमी को दूर करने के लिए इस विश्वविद्यालय ने पूर्व प्राथमिक कक्षा से लेकर स्नातकोत्तर शिक्षा तक

9 *चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय का स्वरूप, उद्देश्य एवं कार्य-योजना का उल्लेख करता प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव को लिखा पत्र।*

की व्यवस्था एक ही परिसर एवं समान वातावरण में संपन्न करने का प्रयास प्रारंभ किया है। विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में पढ़ाए जानेवाले विषयों का व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, किंतु दुर्भाग्य से प्रचलित शिक्षा-पद्धति में परीक्षा उत्तीर्ण करना व उपाधि पाना मात्र अध्ययन का लक्ष्य बन गया है। इसी लक्ष्यपूर्ति में पढ़नेवाले एवं पढ़ानेवालों का ध्यान केंद्रित है। पढ़ाए जानेवाले विषयों का जन-जीवन से क्या संबंध है तथा समाजोन्नति के लिए उसका किस प्रकार उपयोग किया जाना चाहिए, इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता। परिणामस्वरूप छात्र-छात्राएं जिन विषयों को पढ़ते हैं, उनका समग्र अध्ययन नहीं करते। इस कमी को अनुभव कर इस विश्वविद्यालय में पढ़ाए जानेवाले विषयों का सामाजिक जीवन में जो व्यावहारिक महत्त्व एवं उपयोग है, उसे छात्र-छात्राओं को समझाने और तदनुसार अध्ययन करने के लिए छात्र-छात्राओं को प्रेरित किया जाता है। साथ ही सामाजिक जीवन में उस उपयोगिता को कार्यान्वित करने की विधियों का अध्ययन-काल में अभ्यास भी कराया जाता है।

प्रचलित शिक्षा-पद्धति में विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों को सर्वथा सरकारी अनुदानों पर निर्भर रहना पड़ता है। प्राप्त अनुदानों का अधिकांश धन अध्यापन-कार्य में संलग्न महिला-पुरुषों के वेतन-भुगतान पर ही खर्च होता है। ऐसे वातावरण में अध्ययन करनेवाले छात्र-छात्राओं में स्वावलंबन की वृत्ति पनप नहीं सकती। परिणामस्वरूप, देश में पढ़े-लिखे बेकारों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। शिक्षा के विस्तार के साथ-साथ पर-निर्भर युवा-वर्ग बढ़ता जा रहा है। देश की शिक्षित तरुणाई देश को अधिक संपन्न बनाने में सहयोगी बनने के स्थान पर समाज पर बोझ सिद्ध हो रही है। 'चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय' ऐसी शिक्षा-पद्धति का विकास करने में संलग्न है, जिसमें शिक्षा-क्षेत्र की इस कमी को दूर किया जा सके। अतः इस विश्वविद्यालय के प्राध्यापक-प्राध्यापिकाएं, छात्र-छात्राएं एवं अन्य कर्मचारी मिलकर स्व-पुनरोत्पादक आर्थिक-पद्धति से इस विश्वविद्यालय को आगामी 15 वर्ष के काल में सभी दृष्टियों से आत्मनिर्भर बनाने के लिए कृत-संकल्पित हैं। उस दिशा में प्रयास प्रारंभ हुए हैं। इन प्रयासों को सफलता भी प्राप्त हो रही है। हमें विश्वास है कि 15 वर्ष के बाद इस विश्वविद्यालय को न सरकार से अनुदान लेने की आवश्यकता रहेगी और न किसी धनपति से दान लेने की जरूरत पड़ेगी। इस विश्वविद्यालय के सभी लोग पठन-पाठन की तनिक भी उपेक्षा किए बिना उत्पादन के विभिन्न आयामों में सक्रिय रहेंगे। फलस्वरूप ग्यारहवीं कक्षा से छात्र-छात्राओं को अपने अध्ययन के काल में अपने माता-पिताओं से किसी भी प्रकार की आर्थिक सहायता की आवश्यकता नहीं रहेगी। अपितु स्नातक बनने के बाद विश्वविद्यालय से विदाई लेते समय उनके पास अपनी क्षमतानुसार स्व-अर्जित पूंजी उपलब्ध रहेगी। वर्तमान वातावरण में उपर्युक्त बातें कल्पना जगत् की उड़ान सी लगती हैं, किंतु हमें विश्वास है कि आगामी 5-6 वर्षों में ही अन्य लोगों को भी ये सब बातें व्यावहारिक अनुभव होना प्रारंभ हो जाएंगी।

इस विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए हम देश के सभी प्रदेशों से अर्थात् सभी भाषाओं से और वर्गों से छात्र-छात्राओं को प्रविष्ट करना चाह रहे हैं। पढ़ानेवाले विद्वान् महिला-पुरुष भी सभी

प्रदेशों एवं भाषाओं से आमंत्रित करने की हमारी योजना है। यह कार्य तभी संभव होगा जब आप इस विश्वविद्यालय को केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा प्रदान करवाने की कृपा करेंगे।

10

05 अप्रैल, 1994

प्रिय डॉ. सुमनजी,

सतना जिला महिलाओं की शिक्षा की दृष्टि से देश के बहुत पिछड़े जिलों में से एक है। अतः हमने इस जिले में पचास वनवासी बालिकाओं का विद्यालय प्रारंभ कर तथा इस विद्यालय को केंद्र बनाकर चारों ओर की निरक्षर महिलाओं को सुशिक्षित करने का प्रकल्प प्रारंभ किया है। यह दीनदयाल शोध संस्थान का प्रकल्प है। इसमें आपके निर्वाह की पूरी व्यवस्था हो सकती है। मेरा विचार है कि यह व्यवस्था वेतनभोगी के नाते नहीं, एक मिशनरी के नाते की जाएगी।

मैं देश और विदेश में भेद करने के विचार का नहीं हूं, किंतु मदर टेरेसा जैसी महिलाएं अन्य देशों से आकर यहां के उपेक्षित जनों की सेवा करें और भारत की कोई महिला तत्सम आदर्शवाद को अपनाकर कार्य न करे, इसका अवश्य दुःख होता है। आप उस विचार से प्रेरित दिखाई देती हैं। मैं इस देश और समाज की दृष्टि में इसे शुभ लक्षण मानता हूं।

11

11 अप्रैल, 1994

प्रिय श्री कपूर साहब,

हमें परस्परपूरक बनकर काम करना चाहिए न कि दोषारोपण में उलझकर अपना मानसिक संतुलन खोना चाहिए। दोष ही ढूंढ़ने में लग जाएं तो किसी को भी दोषमुक्त पाना कठिन होगा। अपने समाज में अनेक अवतार माने जाते हैं। असंख्य भक्तगण उनकी पूजा करते हैं।

समाज का आवश्यक किंतु पूर्णतः उपेक्षित एवं बहुत ही कठिन कार्य का बीड़ा दीनदयाल शोध संस्थान ने उठाया है। इसके लिए आवश्यक है कि देश की ग्रामीण इकाइयों में चेतना जाग्रत् की जाए कि हमारे गांव का, गांव की पूरी आबादी का विकास और उन्नति का काम हम स्थानीय लोगों को ही मिल-जुलकर करना है। नेताओं तथा सरकार पर निर्भर रहकर कुछ नहीं होता। यह गत पैंतालीस वर्षों का अनुभव है।

यह काम केवल चेतना जगाने मात्र से भी होनेवाला नहीं है। इसमें बाधक है हमारी प्रचलित जीवन

10 *नानाजी केवल विचार से प्रभावित होकर जोड़ने के पक्षधर नहीं थे, प्रत्यक्ष तौर पर परखने में विश्वास रखते थे। डा. सुमन कपूर आरोग्यधाम की निदेशक रहीं।*

11 *नानाजी का मत था कि दोष की बजाय गुण को देखना चाहिए, जो कार्य की सफलता का आधार बने।*

रचना। उसमें व्यक्ति–परिवार तथा पूरी आबादी में परस्पर पूरकता का अभाव हो गया है। हर परिवार अपने ही हित में सोचता है। अपनी आबादी के शेष लोगों की उसे परवाह नहीं है। ऐसे वातावरण में परस्पर पूरकता की भावना निर्माण करना कितना कठिन कार्य है, इसका अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है। किंतु यह कार्य बहुत कठिन होने के कारण छोड़ा नहीं जा सकता। दृढ़ प्रतिज्ञ होकर इसमें जुटना होगा। अन्यथा हमारे पूर्वजों ने जो धरोहर हमें सौंपी है, उसके साथ हम अप्रामाणिक सिद्ध होंगे।

यह सब काम प्रयोगात्मक है। हर एक प्रयोग सफल नहीं हुआ करता। यह प्रयोग महिला–पुरुषों की मानसिकता से संबंधित है। यह मशीन और टूल्स के उपकरणों मात्र से ही संबंधित नहीं है। चारों ओर का वातावरण पूर्णतः प्रतिकूल है। हम प्रचलित प्रवाह की प्रतिकूल दिशा में बढ़ना चाह रहे हैं। इसके बावजूद दीनदयाल शोध संस्थान को पांच से दस प्रतिशत सफलता प्राप्त हो रही है। इसे मैं कम नहीं मानता। किंतु इतनी प्रतिशत सफलता से संतुष्ट भी नहीं हूं। आप जानते हैं कि लोगों को चटपट नतीजे प्राप्त करने की चाह रहती है।

किंतु इस काम में धैर्य बहुत आवश्यक है। लगातार प्रयास करने के बावजूद परिणाम पाने में बहुत विलंब लगता है। लोगों की जो मानसिकताएं बनी हैं, वह सदियों का परिणाम है। वह झट से बदलने की अपेक्षा करना व्यावहारिकता से मेल नहीं खाता। इस कारण युगानुकूल पुनर्रचना के काम में टिका रहना संभव नहीं है। इस काम तथा अन्य कामों में कोई साम्य नहीं है। अतः अन्य कामों से शोध संस्था के कामों की तुलना नहीं की जा सकती।

मुझे आपने आत्म–निरीक्षण की सलाह दी है। मैं उसका स्वागत करता हूं। मेरी सुविचारित धारणा है कि हर मानव को अपने जीवन के अंतिम सांस तक आत्मनिरीक्षण करना चाहिए। इस कार्य को मैं 1949 से लगातार करता आ रहा हूं। फलस्वरूप 1950 में मैंने सरस्वती शिशु मंदिर योजना प्रारंभ की थी। आज देश में डेढ़ हजार से अधिक शिशु मंदिर काम कर रहे हैं। आत्मनिरीक्षण के फलस्वरूप ही मैं राजनीति से अलग हो गया हूं। किसी की सलाह से नहीं।

वस्तुतः हर काम पर अपनी मुहर लगाना केंद्रीकरण की प्रवृत्ति है। केंद्रीकरण अस्थायी सफलता देता है। सामाजिक सफलता के लिए विकेंद्रीकरण आवश्यक है।

12

10 मई, 1994

प्रिय श्री कपूर साहब,

प्रतिष्ठा या कीर्ति पाना मेरा लक्ष्य रहा ही नहीं, आजीवन होगा भी नहीं। लक्ष्य सिद्धि के प्रयास में अपने को भुला देना मेरा प्रियतम प्रयास रहता है। साथ ही किसी की उपस्थिति में उसकी तारीफ करने का भी मैं आदी नहीं।

अपना विश्वविद्यालय खड़ा करने का काम मानव शरीर के सर्वांगीण विकास जैसा काम है। बिना शरीर आत्मा अपना करिश्मा दिखा नहीं सकती, किंतु बिना आत्मा के शरीर निरर्थक हो

जाता है। यह सर्वविदित है। अतः हमें, जिन्होंने अपने विश्वविद्यालय की अवधारणा एवं कार्यप्रणाली बनाई है, देखना होगा और समझना होगा कि विश्वविद्यालय अपने निर्धारित लक्ष्य सिद्धि की दिशा में कैसी प्रगति कर रहा है। यह वस्तुतः विश्वविद्यालय की आत्मा है। इसके बिना भवन एवं विभागों का अस्तित्व महत्त्व प्राप्त नहीं कर पाएगा। उस दृष्टि से हम लोग एकाग्र होकर सोचें।

चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय देश में चल रहे अन्य विश्वविद्यालयों से जो भिन्नता एवं विशेषता अर्जित करने के लक्ष्य से प्रस्थापित हुआ है, उस दिशा में गत तीन वर्षों में उसने कितनी प्रगति की है। हमने अपने विश्वविद्यालय की अवधारणा एवं कार्यप्रणाली छापकर देश-विदेश के बुद्धिमान लोगों के पास भेजी है। उसे कार्यान्वित करने के लिए हम सभी वचनबद्ध हैं।

कोई भी विश्वविद्यालय छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व विकास के लिए ही स्थापित होता है। अपने विश्वविद्यालय में शिक्षार्जन के लिए प्रविष्ट छात्र-छात्राओं को सामाजिक दायित्व-बोध से संपन्न करना चाहते हैं। यह तभी संभव है, जब उन्हें तदनुकूल वातावरण में चौबीसों घंटे रख सकें। कारण, उनके अध्ययन में भी कोई त्रुटि न रहे। इसीलिए हम लोगों ने गुरुकुल व्यवस्था की युगानुकूल रचना की। उसमें प्राध्यापक या प्राध्यापिका के साथ वे रात-दिन रहकर पारिवारिक वातावरण में अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर सकें, किंतु आज तक हम छात्र-छात्राओं की अपनी योजना के अनुसार व्यवस्था नहीं कर पाए। जबकि इस बात को सर्वोच्च वरीयता देना हमारा कर्तव्य था। विश्वविद्यालय छात्र-छात्राओं के लिए ही प्रस्थापित होता है।

छात्र-छात्राओं के अध्ययन काल में ही अपने विषयों का सम्यक् ज्ञान हो, यह हमने सोचा है। अन्य शिक्षण या प्रशिक्षण संस्थाओं में परीक्षाएं पास करना और उपाधियां पाने का ही वातावरण प्रचलित है। अतः कोई विद्यार्थी अपने विषय का गहन अध्ययन करने की परवाह नहीं करता। वस्तुतः विश्वविद्यालय में पढ़ाया जानेवाला प्रत्येक विषय सामाजिक जीवन के लिए उपयोगी होता है। अपना विश्वविद्यालय अपने विद्यार्थियों को उन्हें पढ़ाए जानेवाले विषय की सामाजिक जीवन के लिए प्रस्थापित हुआ है। अतः गुरुजन केवल वैचारिक ज्ञान ही प्रदान नहीं करेंगे, अपितु अपने विद्यार्थियों को साथ में लेकर चारों ओर के समाज में से जाकर प्रत्यक्ष स्थिति से अवगत कराते रहेंगे। तभी अपने विश्वविद्यालय से निकले स्नातक सामाजिक जीवन से अपने जीवन भर जुड़े रहेंगे। इस दृष्टि से गत तीन वर्षों में विश्वविद्यालय ने कितनी प्रगति की है, यह देखना होगा, अन्यथा हम अपने विश्वविद्यालय की विशेषता व्यावहारिक जीवन में उतार नहीं पाएंगे।

प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाए रखने का जीवन अपनाकर प्राध्यापक वर्ग एवं छात्र-छात्राओं का व्यवहार इस दिशा में विकसित करना अपना लक्ष्य है। इसके बिना जीवन में संवेदनशीलता विकसित नहीं होती। इसी से स्वास्थ्य सुधार एवं जीवन उन्नत बनता है। इसी कारण हमने अपने विश्वविद्यालय के लिए मां मंदाकिनी के पावन तट पर पहाड़ियों की ऊंची-नीची जमीन पर स्थान पसंद किया है। तीन साल बीत गए। दो वर्षा ऋतु हाथ से निकल चुकीं, किंतु अध्यापन में संलग्न

वर्ग एवं विद्यार्थी वर्ग द्वारा हमने वृक्षारोपण एवं संवर्धन का कितना काम किया है। यह दायित्व केवल हॉर्टिकल्चर या कृषि विभाग का नहीं, सभी का है। प्रकृति से सामंजस्य सभी के जीवन का अंग बनाना अपना निर्धारित लक्ष्य है।

हमने चित्रकूट को केंद्र बनाकर चारों ओर के पचास किलोमीटर में आनेवाली आबादियों व क्षेत्र के विकास का दायित्व स्वीकार कर उसकी घोषणा की है। यह कार्य केवल एम.आर.डी.एम. विभाग या उसमें अध्ययन करनेवाले छात्र-छात्राओं को पढ़ानेवालों तक सीमित नहीं है। सभी विषयों को पढ़ानेवाले तथा पढ़नेवालों के लिए है। अपने-अपने विषय के गहन अध्ययन तथा उन विषयों का सामाजिक जीवन में अर्थात् उसे उन्नत करने में क्या उपयोग है, इसकी व्यावहारिक जानकारी एवं अनुभव प्राप्त करने के उद्देश्य से ही हमने यह विशेष कार्य हाथ में लिया है। गत तीन साल में इस दिशा में हमारी कितनी प्रगति हुई, यह देखना आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त भी अन्य महत्त्वपूर्ण विषय हैं। उनकी चर्चा इस पत्र में मैं नहीं कर रहा हूं। किंतु प्रारंभ से ही उपर्युक्त बातों के क्रियान्वयन पर पूरा बल नहीं दिया गया तो अपने विश्वविद्यालय में पढ़ानेवाले तथा पढ़नेवाले अन्य विश्वविद्यालयों में व्याप्त वातावरण में और अपने यहां के वातावरण में अंतर अनुभव नहीं करेंगे। वे उसी मानसिकता से ग्रसित होंगे। फिर इन्हें ठीक दिशा में गतिशील करना बहुत ही कठिन होगा। अतः यह कार्य प्रारंभ से ही होना अति आवश्यक रहता है।

13

03 अक्तूबर, 1994

माननीय प्रधानमंत्री महोदय,
प्रिय श्री नरसिंह रावजी,

देश का युवावर्ग अध्ययन के साथ-साथ स्व. महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज के सपनों का भारत खड़ा करने में पूरे मनोयोग से जुटे, इस आकांक्षा से प्रभु राम की तपोभूमि चित्रकूट में ग्रामोदय विश्वविद्यालय की 1991 में स्थापना की थी। आपने इस कार्य में मुझे प्रारंभ से ही प्रोत्साहित किया था। आज निम्न बिंदुओं की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं।

18 अप्रैल, 1991 को मध्य प्रदेश सरकार के अधिनियम द्वारा विश्वविद्यालय की औपचारिक स्थापना होने के 6 महीने के भीतर ही चित्रकूट निवासियों के उदार सहयोग से मठों व धर्मशालाओं में 6 संकायों का शिक्षण कार्य आरंभ हो गया था। शिक्षा संकाय के अंतर्गत बी.एड. एवं एम.एड.

13 *चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय के कुलाधिपति पद से त्यागपत्र की पेशकश करता प्रधानमंत्री नरसिंह राव को लिखा पत्र।*

के छात्रों का प्रथम जत्था 1992 में ही अपना शिक्षण पूर्ण करके बाहर निकला। अक्तूबर 1991 में ही ग्राम विकास का स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम प्रारंभ हो गया था, जिसके विद्यार्थियों एवं शिक्षकों ने विश्वविद्यालय परिसर के 50 कि.मी. परिधि के भीतर स्थित ग्रामों में प्रत्यक्ष विकास कार्य शुरू किए थे। 1993 के आरंभ तक विश्वविद्यालय में 16 संकायों के अंतर्गत 80 विभाग खुल चुके थे।

विश्वविद्यालय में छात्रों को स्वरोजगार में सक्षम बनाने की दृष्टि से खाद्यान्न-तकनीकी जैसे कई व्यावसायिक पाठ्यक्रम प्रारंभ किए हैं। निरक्षर ग्रामवासियों को विभिन्न शिल्पों का प्रशिक्षण देकर स्वरोजगार के लिए सक्षम बनाने के कई अल्पकालीन पाठ्यक्रम चल रहे हैं। जनजातीय बच्चों की शिक्षा एवं व्यक्तित्व विकास के लिए छात्रावास खोला गया है एवं उनकी शिक्षा का विशेष प्रबंध किया गया है। चित्रकूट क्षेत्र में उपलब्ध जड़ी-बूटियों के आधार पर 150 से अधिक आयुर्वेदिक ओषधियों का निर्माण हो रहा है। पशुपालन के क्षेत्र में भारत की स्वदेशी नस्लों की गायों के विकास को प्राथमिकता दी गई है।

भवनों के निर्माण में तथा अध्ययन कक्षों में लगनेवाला लकड़ी एवं लोहे का सब सामान विश्वविद्यालय की तकनीकी संकाय की कार्यशाला में छात्रों के सहभाग से निर्माण किया जाता है। दो वर्ष की अल्पावधि में पाठ्यक्रमों, शिक्षणविधि, छात्रसंख्या, भवननिर्माण आदि की दृष्टि से चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय की प्रगति को सामान्य से ऊपर ही आंकना होगा।

किंतु आज स्थिति यह है कि इस विश्वविद्यालय में आर्थिक अभाव निर्माण कर उसे चलने न देने की नीति से एक नवीन प्रयोग आगे नहीं बढ़ पा रहा। यदि इसकी जड़ में मेरा इस विश्वविद्यालय का कुलाधिपति बने रहना है तो मुझे इस पद का कोई मोह नहीं है। सत्य तो यह है कि इस विश्वविद्यालय के माध्यम से अभिनव वैकल्पिक शिक्षा पद्धति की खोज की कल्पना मेरे द्वारा प्रस्तुत होने के कारण ही तत्कालीन मध्य प्रदेश सरकार के अत्यधिक आग्रह पर विश्वविद्यालय के प्रारंभिक चरण में उस कल्पना को साकार रूप देने हेतु केवल 5 वर्ष अर्थात् 1996 तक के लिए अधिनयम में कुलाधिपति के रूप में मैंने अपना मनोनयन स्वीकार किया था।

लोकतांत्रिक प्रणाली में सरकारों का बदलना स्वाभाविक है। किंतु मैं यह कल्पना भी नहीं करता था कि ऐसे मूलगामी शैक्षणिक प्रयोगों पर भी राजनीतिक परिवर्तनों की काली छाया पड़ सकती है। वस्तुतः देश में ऐसे अनेक विश्वविद्यालय हैं, जिनके कुलाधिपति राज्यपाल, राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री न होकर अन्य नागरिक हैं। फिर भी यदि कुलाधिपति पद पर मेरे बने रहने मात्र से छात्र-छात्राओं का भविष्य खतरे में पड़े, प्राध्यापक-प्राध्यापिकाएं एवं अन्य कर्मचारी वेतन के अभाव में परेशान हों तो यह मेरे लिए असह्य है। अतः मैं आप से सविनय अनुरोध करता हूं कि आप इस विश्वविद्यालय का कुलाधिपति अन्य किसी को बनाकर छात्र-छात्राओं का भविष्य सुरक्षित रखने तथा प्राध्यापकों एवं कर्मचारियों को समय से वेतन देकर उन्हें अपना कर्तव्य निभाने का सुअवसर प्रदान करने की कृपा करें।

विराट् पुरुष

14

06 फरवरी, 1995

चि. प्रिय सुदाम,

गुरुकुल जिस ध्येय को लेकर प्रस्तावित किया है, उसकी कल्पना तुम्हें है। बीड़ जिला मराठवाड़े के जिलों में अधिक पिछड़ा जिला माना जाता है। इस जिले में अधिकांश खेती वर्षा पर निर्भर है। यह जिला सह्याद्रि के पूर्व दिशा में है। इस कारण वर्षा भी बहुत कम होती है। फलस्वरूप जिले को कृषि से साल में एक फसल पर ही निर्भर रहना पड़ता है। वर्षा पर निर्भरता के कारण एक फसल भी किसी साल खराब व किसी-किसी का ठीक होता है। ऐसी स्थिति में इस जिले की नई पीढ़ी की ग्रामोद्योगों के लिए प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। इस जिले के ग्रामों के बहुत से बालक पढ़ने में अधिक रुचि नहीं रखते और जो बच्चे विद्यालयों में पढ़ते भी हैं, वे भी पढ़कर आत्मनिर्भर नहीं बनते।

इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर सोनदरा गुरुकुल प्रस्थापित हुआ है। पीने के पानी तथा संभव हो तो सिंचाई की व्यवस्था का भी विचार किया गया था। इस विचार से सोनदरा तालाब का प्रयोग 1987 की मई में हाथ में लिया था। वस्तुतः प्रतिवर्ष गरमी के दिनों में तालाब में जमनेवाली मिट्टी को सतत निकालने का काम छोटे ही पैमाने पर क्यों न हो, होना चाहिए था। वह नहीं हुआ। 1987 में किए गए प्रयत्न के सात साल बाद भी पानी का संकट बना हुआ है।

दूसरी चीज प्रतिवर्ष जो कुछ वर्षा होती है, उसके साथ बहकर आनेवाली मिट्टी तालाब की गहराई घटाती रहती है। इसका कारण है कि तीनों तरफ के पहाड़ों से बहकर आनेवाला पानी अपने साथ मिट्टी बहाकर न लावे, इसलिए जो वृक्षारोपण होना चाहिए था, वह वृक्षारोपण सरकार के द्वारा कदापि संभव नहीं हो सकता था। अतः गुरुकुल के अध्यापक एवं छात्रों के अभिभावक मिलकर तालाब के चारों ओर के खेतों में उन खेतों के मालिकों द्वारा वृक्षारोपण की प्रेरणा देते तो तालाब में मिट्टी जमा होने की गति घटती। गुरुकुल ने अपने पास जो भी कुछ जमीन दी उसमें तो वृक्ष लाए और पनपे भी। किंतु अन्य जमीन में यह काम करवाना अभी तक संभव नहीं हुआ है। उपयुक्त दोनों काम यदि गत 07 वर्षों में कम अधिक मात्रा में प्रतिवर्ष किए जाते तो पीने के पानी का संकट विकट रूप में अनुभव नहीं होता। मेरी कल्पना थी कि यह गुरुकुल विद्यार्थियों की मैट्रिक तक पढ़ाई करता और साथ-साथ विभिन्न उद्यमों का चारों ओर के देहातों के नव-जवानों के साथ गुरुकुल में पढ़नेवाले विद्यार्थियों को भी प्रशिक्षण देता।

यह दायित्व निभाने के लिए दीनदयाल शोध संस्थान के केंद्रीय नेतृत्व को आगे आना चाहिए था। तदनुसार मैंने दीनदयाल शोध संस्थान के सभी प्रमुख लोगों से चर्चा की है। अभी-अभी प्रिय *श्री महेशजी बीड़ पहुंचे होंगे। उन्हें मैंने कहा है कि वे रोहतवाड़ी के आस-पास सड़क

14 *बीड़ में सोनदरा गुरुकुल की पृष्ठभूमि। सुदाम भोंडवे डीआरआई के कार्यकर्ता रहे।*
** श्री महेश जी अर्थात डा. महेश चंद्र शर्मा उन दिनों संस्थान के सचिव थे।*

से सटे हुए 5–10 एकड़ जमीन प्राप्त करने की दिशा में आपसे चर्चा करें। यह जमीन ऐसी होनी चाहिए, जहां पानी उपलब्ध हो। वहां अपने गुरुकुल की औद्योगिक प्रशिक्षण इकाई प्रारंभ की जाएगी। उसके लिए आवश्यक 10–12 लाख रुपए लगाने के लिए मैंने बंबई के एक सज्जन से बात की है। वे इतना धन इस औद्योगिक प्रशिक्षण केंद्र के लिए लगाने का मन बना चुके हैं। आप जितनी जल्दी जमीन उपलब्ध कराएंगे, यह औद्योगिक प्रशिक्षण केंद्र प्रारंभ किया जा सकेगा। तभी जाकर अपने गुरुकुल का संपूर्ण लक्ष्य सिद्ध हो सकेगा।

मेरा विश्वास है कि प्रिय श्री महेशजी ने इस संबंध में आपसे चर्चा की होगी। इस औद्योगिक प्रशिक्षण केंद्र के द्वारा केवल सोनदरा गुरुकुल के पास–पड़ोस के ही नहीं अपितु पूरे जिले के पढ़े–बेपढ़े जवान लाभान्वित होंगे।

यह औद्योगिक प्रशिक्षण केंद्र प्रारंभ होने के बाद उसी परिसर में बालिकाओं एवं युवतियों के शिक्षण और प्रशिक्षण के लिए छात्रावास भी बनाया जाएगा। इसका भी नाम महिला गुरुकुल ही होगा। कारण, यह कार्य सोनदरा गुरुकुल के अंग के रूप में ही विकसित किया जाएगा।

इस विषय में मेरी पुणे के ज्ञानेश्वर विद्यापीठ के अध्यक्ष प्रिय डॉ. आप्टेजी से बात हुई है। वे इस औद्योगिक प्रशिक्षण के कार्य में ज्ञानेश्वर विद्यापीठ का पूरा सहयोग प्रदान करेंगे।

15

24 मई, 1995

माननीय मुख्यमंत्री महोदय,

प्रिय श्री दिग्विजय सिंहजी,

दीनदयाल शोध संस्थान ने चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय की स्थापना इस आशा से की थी कि शासन एवं एक समाजसेवी संस्था मिलकर शिक्षा–क्षेत्र में एक अभिनव प्रयोग करेंगे और स्वतंत्र भारत के लिए उपयुक्त शिक्षा–पद्धति का उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

जो विषय विश्वविद्यालयों में पढ़ाए जाते हैं, उनका महत्त्वपूर्ण स्थान पारिवारिक, व्यावसायिक एवं सामाजिक जीवन में है, किंतु अपने देश में उपाधि पाने के लिए ही परीक्षाएं आयोजित होती हैं। परिणामस्वरूप विषयों का समुचित अध्ययन विद्यालयों में होता ही नहीं और पढ़ा–लिखा युवा–वर्ग सामाजिक दृष्टि से अनभिज्ञ बना रहता है। यह देश के हित में नहीं है। यह विश्वविद्यालय इस दृष्टि से विशेष प्रयास करना चाह रहा है, जो नव–स्वतंत्र देश के लिए अति आवश्यक है।

आज विद्यालयों को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने की दृष्टि से कोई प्रयास नहीं हो रहे हैं। वे पूर्णतः अनुदानों एवं दानों पर निर्भर हैं या छात्र–छात्राओं से अधिक धन वसूलकर चलाए जाते हैं। इससे पिछड़े, उपेक्षित एवं आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के बच्चों को प्रगति से वंचित रहना पड़ता है। अतः यह विश्वविद्यालय आगामी पंद्रह वर्षों में आर्थिक दृष्टि से भी पूर्णरूप से

15 *चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय के कुलाधिपति पद से त्यागपत्र।*

आत्मनिर्भर बनाने के लिए कृत-संकल्पित है।

जब तक विश्वविद्यालय तथा शिक्षा संस्थाएं स्वयं आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर नहीं बनेंगी, तब तक उनसे पढ़कर निकलनेवाले युवक-युवतियाँ आत्मनिर्भरता का पाठ नहीं पढ़ सकेंगे। देश की बेरोजगारी कभी भी समाप्त नहीं होगी। अतः इस प्रयोग को सफल बनाना नितांत आवश्यक है। देश में अनेक विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति गैर-राज्यपाल हैं, किंतु इस विश्वविद्यालय का निरीक्षण करने आए आपके सहयोगी मंत्रीद्वय का मानना है कि 'उच्च शिक्षा के स्तर में एकरूपता लाने के लिए आवश्यक है कि राज्यपाल को ही इस विश्वविद्यालय का कुलाधिपति बनाया जाए। इसका स्पष्ट अर्थ है कि वे शिक्षा के क्षेत्र में आवश्यक सुधार नहीं चाहते।

मैंने 3 अक्तूबर, 1994 को माननीय प्रधानमंत्री महोदय को पत्र लिखा था कि मैं कुलाधिपति बना रहकर चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय में पढ़नेवाले छात्र-छात्राओं तथा प्राध्यापकों का अहित नहीं चाहता। विद्यार्थी तथा प्राध्यापकों के हित में मैं इस पद को छोड़ना चाहता हूं। मुझे आश्चर्य एवं दुःख है कि आपके साथियों ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का भी उल्लेख किया है। क्या स्वतंत्र भारत में ऐसे किसी संगठन के कार्यकर्ताओं को राष्ट्र नवनिर्माण का कार्य करने से रोकना उचित एवं संभव है? क्या यह लोकतांत्रिक देश मतभिन्नता के कारण किसी को राष्ट्रसेवा से रोक सकता है? क्या सर्वसाधारण नागरिकों से टैक्स के रूप में एकत्रित धन किसी विशेष दल के लिए ही काम में लाया जा सकता है?

इस विश्वविद्यालय की स्थापना दीनदयाल शोध संस्थान ने की है। मैं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का स्वयंसेवक हूं, किंतु मेरा कोई आलोचक भी मुझ पर दलगत संकुचित भावना का शिकार होने का आरोप नहीं लगाता। 'सर्वभूतः हितेरतः' का उपासक हूं। वही मेरी जीवन-दृष्टि है। मैं अपेक्षा करता हूं कि आप जैसा युवक मुख्यमंत्री अपने साथियों तथा दल को दलीय स्वार्थ से ऊपर उठाने का प्रयास करेगा।

दिल्ली में मैंने आपसे कहा था कि मेरे कुलाधिपति रहने के कारण ही अनुदान रोका गया हो तो मैं त्यागपत्र देने के लिए किसी भी क्षण तैयार हूं। तब आपने कहा था कि आप तो विधि के अनुसार बने हैं, विधानसभा में पारित विधेयक के अनुसार। फिर भी छात्र-छात्राओं और अध्यापकों को आर्थिक कठिनाइयों से राहत दिलाने के लिए मैं इसी क्षण त्यागपत्र दे रहा हूं।

16

23 मई, 2000

माननीय प्रधानमंत्री महोदय,

प्रिय श्री अटलजी,

जनसंख्या में हो रही बेहिसाब बढ़ोतरी घोर चिंता का विषय है। परिवार नियोजन के अभी तक हुए प्रयास अपेक्षित फल प्रदान न कर सके। अब सरकार ने इस काम को अधिक परिणामजनक बनाने के लिए आपकी अध्यक्षता में विशालकाय आयोग का गठन किया है। वह अच्छे-से-अच्छे

सुझाव अवश्य देगा। किंतु उन सुझावों के कार्यान्वयन की गति क्या होगी? विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों में पढ़ रहे छात्र-छात्राएं युवावस्था प्राप्त जवान लोग होते हैं। प्राध्यापकों सहित इनकी संख्या लाखों में देश भर फैली है। क्या शिक्षा प्राप्त इस विशाल मानव शक्ति का सदुपयोग परिवार नियोजन को अधिक परिणामजनक बनाने में नहीं किया जा सकता?

शिक्षा क्षेत्र के इन लोगों को साल भर में छुट्टियां भी पर्याप्त होती हैं। सामाजिक दायित्व-बोध के अभाव में यह युवा वर्ग केवल व्यक्तिवादी बन रहा है। यदि आपका प्रेरणादायी पत्र कुलपतियों, प्राचार्यों तथा छात्र संगठनों के अध्यक्षों के नाम भेजा जा सका तो परिवार नियोजन के इस कार्य में उल्लेखनीय योगदान हो सकता है। साथ ही नई पीढ़ी को सामाजिक दायित्व निभाने की दिशा प्राप्त हो सकती है।

17

04 फरवरी, 2001

माननीय मुख्यमंत्रीजी,

दीनदयाल शोध संस्थान सामाजिक एवं आर्थिक शोध कार्य में संलग्न है, किंतु गुजरात की भूकंप विभीषिका ने शोध संस्थान को झकझोर दिया है। अतः संस्थान ने भूकंप के कारण माता-पिताओं से वंचित नन्हे-नन्हे बच्चों का पालन करने का दायित्व स्वेच्छा से स्वीकारा है। ऐसे 100 बालक-बालिकाओं के लिए चित्रकूट में शोध संस्थान ने गुरुकुल संकुल का निर्माण प्रारंभ किया है। गुरुकुल की रूपरेखा साथ में संलग्न है। मेरा विश्वास है आपकी सरकार गुजरात के भूकंप के शिकार बने 100 नन्हे-नन्हे बालक बालिकाओं को चित्रकूट दीनदयाल शोध संस्थान में भेजने की व्यवस्था करने की कृपा करेगी।

मां भारती-गुरुकुल संकुल
दीनदयाल शोध संस्थान
चित्रकूट

भूकंप की महाभीषण विभीषिका ने गुजरात में जनजीवन तहस-नहस कर डाला है। अथाह धन-संपदा के उपभोग के अभ्यस्त लोगों को सड़क की पटरी पर जिंदगी काटनेवालों की श्रेणी में ला पटका है।

इनकी मदद के लिए दुनिया भर से आर्थिक सहायता पहुंच रही है, किंतु इस दर्दनाक प्राकृतिक प्रकोप के शिकार बने नन्हे-नन्हे बच्चे अपनी माताओं की गोद से हमेशा के लिए वंचित हो गए

16 *देश की गंभीर समस्याओं के प्रति छात्र वर्ग में जागृति उत्पन्न करने के लिए एक व्यावहारिक सुझाव। शिक्षकों को भी अपनी छुट्टियों का उपयोग समाजोपयोगी कार्य में करना चाहिए, ऐसा सुझाव।*

17 *गुजरात के मुख्यमंत्री श्री केशुभाई पटेल को भेजा गया पत्र। नानाजी युगानुकूल शिक्षा की पुनर्रचना का लक्ष्य एक स्वावलंबी नागरिक और समाज के निर्माण को मानते थे।*

हैं। उन्हे अब मां का प्यार कौन देगा? ममतामय अंत:करण से उनका पालन-पोषण कौन करेगा? उनके भविष्य को संवारने की जिम्मेदारी कौन निभाएगा?

इस कठिन किंतु नितांत आवश्यक कार्य के लिए दीनदयाल शोध संस्थान ने कदम बढ़ाया है। ऐसे सौ बालक-बालिकाओं का संपूर्ण दायित्व वहन करने की व्यवस्था चित्रकूट में की जा रही है। यह व्यवस्था 'मां भारती-गुरुकुल संकुल' के अंतर्गत है।

इस गुरुकुल संकुल में 10-10 बालिकाएं या बालक एक-एक परिवार के रूप में रहेंगे। प्रत्येक परिवार में अवकाश प्राप्त अध्यापक एवं अध्यापिका (पति-पत्नी) उनके माता-पिता के रूप में काम करेंगे। सौ बच्चों के दस गुरुकुल संकुल के प्रबंध का दायित्व निभाएंगे गुजराती मूल के सुयोग्य पति-पत्नी।

पांचवीं कक्षा तक पढ़ाई का माध्यम होगा गुजराती भाषा। छठी से आठवीं कक्षा तक पढ़ाई का माध्यम गुजराती तथा हिंदी होगा। इसका चयन हर एक बच्चा स्वयं करेगा।

नौवीं कक्षा की पढ़ाई के साथ-साथ व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रारंभ होगा। इसमें कंप्यूटर प्रशिक्षण भी सम्मिलित है। अंग्रेजी भाषा का भी अभ्यास कराया जाएगा। प्रत्येक बालक या बालिका को बारहवीं की परीक्षा उत्तीर्ण करना अनिवार्य है। विश्वविद्यालयीन शिक्षा बालक या बालिका की रुचि एवं क्षमता पर निर्भर करेगी।

प्रत्येक बालक या बालिका स्वावलंबन एवं स्वाभिमान का जीवनयापन करे, यह दीनदयाल शोध संस्थान का लक्ष्य है। इस गुरुकुल में शिक्षित युवक या युवतियां नौकरी के स्थान पर स्वरोजगार का जीवन पसंद करेंगे।

मां भारती-गुरुकुल के सभी बालक-बालिकाओं के विवाह की व्यवस्था गुरुकुल स्वयं करेगा। समाज के सभी घटक परिवारों में जन्म पाते हैं, किंतु उनमें सामाजिक दायित्व के बोध की भावना के विकास की विधियां बड़े-बड़े नेताओं के परिवारों में भी प्रचलित नहीं हैं। फलस्वरूप समाज के घटकों में सामाजिक जीवन-दृष्टि का अभाव होता है। राष्ट्र जीवन की समस्याओं की यही प्रमुख जड़ है। गुरुकुल संकुल में शिक्षित एवं विवाहित युवक-युवतियां इस अभाव को दूर कर पारिवारिक जीवन का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

इस योजना का शुभारंभ सांसद निधि के द्वारा किया जा रहा है।

18

12 सितंबर, 2001

माननीय प्रधानमंत्री महोदय,

प्रिय श्री अटलजी,

साक्षरता अभियान में विशेष सफलता पाने के कारण चित्रकूट जिलाधिकारी को सम्मानित

18 *शिक्षित युवा वर्ग को समाज कार्यों से जोड़ने का सुझाव।*

करते हुए आपने अपेक्षा की है कि शिक्षा प्रसार का यह कार्य झुग्गियों तक पहुंचना चाहिए। आपकी यह सदिच्छा साकार होना कठिन नहीं है। आवश्यकता है कार्यान्वयन व्यावहारिक धरातल पर हो।

आजादी के गत 54 वर्षों में सदिच्छाएं एवं घोषणाएं होती रही हैं। उन पर धन भी पर्याप्त व्यय किया गया है। इसके बावजूद संविधान के निर्देशात्मक सिद्धांतों का भी पालन नहीं हो रहा है। जब तक शासक योजनाओं के कार्यान्वयन में देश की युवाशक्ति का सदुपयोग नहीं करेंगे और केवल नौकरशाही पर निर्भर रहेंगे, तब तक ऐसा ही होता रहेगा।

नई पीढ़ी को सामाजिक जीवन की वस्तुस्थिति का दर्शन कराना होगा। संभवतः उनके हृदय की संवेदनशीलता जगे। अभावग्रस्तों को दयनीय दशा से उबारने की भावना उनमें जाग्रत् हो। इससे देश को नई व आवश्यक दिशा प्राप्त हो सकती है। यह सोचकर ही यह पत्र लिख रहा हूं।

19

22 दिसंबर, 2001

प्रिय श्री सु.र. पोतनीसजी,

मैंने अपने भाषण में स्पष्ट रूप से कहा था कि आई.आई.टी. के अस्सी प्रतिशत से भी अधिक लोग विदेशों में धन कमाने के लिए जाते हैं। किंतु यह एक प्रतीकात्मक बात कही गई है। कारण, पढ़े-लिखे लोग भी सामाजिक दायित्व की दृष्टि से कुछ करते दिखाई नहीं देते। हर परिवार में जन्म पानेवाला व्यक्ति केवल अपने परिवार का ही सदस्य नहीं होता। वह अपने समाज का भी घटक होता है। वह जिस प्रकार पारिवारिक दायित्व अनुभव कर उसके लिए रात-दिन जुटा रहता है। समाज का घटक होने के नाते समाज के लिए भी आवश्यक कार्य करने की दिशा में उसे सक्रिय होना चाहिए। किंतु यह सक्रियता कहां दिखाई देती है? केवल देश में रहना मात्र पर्याप्त नहीं होता। यदि सामाजिक कार्य के लिए समाज के घटक के नाते हर एक व्यक्ति प्रतिदिन थोड़ा-बहुत भी समय देने लग जाए तो अपने समाज की स्थिति सुधर सकती है। केवल शासन के द्वारा सामाजिक प्रेरणा प्राप्त नहीं होती। मेरे भाषण का यही हेतु था।

मुझे लगता है कि कोई भी बात पूरे संदर्भ में समझने का प्रयास किया गया तो सद्भावना बढ़ सकती है। केवल आई.आई.टी. को दोष देने का प्रश्न नहीं था। सभी शिक्षा संस्थानों के द्वारा शिक्षित लोगों की स्थिति एक सी है।

19 *हर बात का वस्तुनिष्ठ दृष्टि से विश्लेषण करने पर बल। सु.र. पोतनीस, पुणे के एक नागरिक। नानाजी ने उनके पत्र के उत्तर में यह पत्र लिखा।*

20

25 मई, 2002

प्रिय श्री लज्जारामजी,

गोरखपुर में सरस्वती शिशु मंदिर की शुरुआत 7 जुलाई, 1950 को हुई थी। 10 अगस्त, 1951 से मुझे उत्तर प्रदेश में जनसंघ की स्थापना के कार्य में लगाया गया था।

शिशु मंदिर प्रारंभ करते समय मैंने एक फोल्डर छपवाया था। उस फोल्डर का पहला वाक्य था ''शिशु परिवार का दीपक एवं संसार का सूरज है।'' वह फोल्डर कहीं मिलता ही नहीं।

1954 में जनसंघ के काम से मैं गोरखपुर गया था। शिशु मंदिर में ही ठहरा था। स्वाभाविक रूप से नगर प्रचारक आदि कार्यकर्ता जमे थे। गपशप चल रही थी। प्रचारक महोदय ने कहा कि शिशु मंदिर की शाखाओं के काम के लिए बहुत उपयोग हो रहा है। यहां के अध्यापकों के कारण संघ कार्य को बढ़ाने में बड़ी सहायता मिल रही है। यह शिशु मंदिर की प्रगति की दिशा बनी थी।

शिशु मंदिर की धारणा रही कि शिशु के व्यक्तित्व विकास में केवल लिखना, पढ़ना, सिखाना ही पर्याप्त नहीं है। उसके मूलभूत गुणों के विकास में तीन बातें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं। उनमें से प्रथम है—शिशु का परिवार, जिसमें वह जन्म पाता है। दूसरा है—विद्यालय, जहां वह गुरुजनों को माता-पिता समान अनुकरणीय समझता है तथा तीसरा है—आबादी, जिसके वातावरण में वह अनिवार्य रूप से पलता है।

वस्तुतः बच्चों के व्यक्तित्व का विकास कक्षा में जो पढ़ाया जाता है, उससे कम होता है। उसके व्यक्तित्व के विकास के दो प्रबल साधन हैं—आंख एवं कान। देखने एवं सुनने की क्षमता उसकी जन्मजात उपलब्धि है।

अतः परिवारजनों में चलनेवाली बातें, उनका पड़ोसियों से व्यवहार तथा कमाई का तौर-तरीका, विद्यालयों के गुरुजनों का जीवन एवं आचरण तथा आबादी में प्रचलित वातावरण शिशुओं के व्यक्तित्व विकास में अधिक परिणामजनक सिद्ध होता है। उपर्युक्त तीनों बातें शिशुओं के व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से अनुकूल एवं पूरक सिद्ध हुए बिना देश की नूतन संतान अपने समाज की प्रगति में योगदान करनेवाली नहीं बन सकती। अतः शिशुओं के गुरुजनों को केवल कक्षाओं में पाठ्यक्रम पूर्ण करने का ही दायित्व निभाने भर से शिशुओं के आवश्यक व्यक्तित्व के विकास का कार्य करने का समाधान नहीं मानना चाहिए।

जुलाई 1950 से अगस्त 1951 तक मैं स्वयं अपने पढ़ानेवाले साथियों के साथ कक्षाओं में पढ़ाने के साथ-साथ शिशुओं के परिवारों में जाकर परिवारिक वातावरण में आवश्यक परिवर्तन का प्रयास भी करता था। वस्तुतः समाज की युगानुकूल नवरचना का माध्यम बनने की क्षमता शिशु मंदिरों में ही है। यह मेरी धारणा रही है।

20 *शिक्षा और सामाजिक दायित्व की परस्परपूरकता रेखांकित करता पत्र। श्री लज्जाराम देश की सबसे बड़ी शैक्षणिक संस्था विद्या भारती के संगठन मंत्री रहे।*

शिशु अपने माता-पिता की प्रियतम भविष्य-निधि होते हैं। उनके विकास के लिए वे हर कदम उठाने के लिए तत्पर रहते हैं, किंतु इस दृष्टि से उनका मार्गदर्शन करने की विधि देश में आज तक विकसित नहीं हुई है। इस कारण, 1951 के अगस्त से 1978 तक अनेक कार्यों में संलग्न रहा, किंतु मन अस्वस्थ बना रहा। अंत में, 1978 से फिर से शिशु-विकास में जुट गया हूं।

21

04 जून, 2002

प्रिय श्री रामभाऊ,

मैं सतत ग्रामीण-अंचल के प्रवास में रहा। कारण, 'स्वावलंबन अभियान' को गति देने के लिए मुझे एक महीने से अधिक समय ग्रामों का ही प्रवास करना पड़ा है। गुजरात के संबंध में तथा राजनीति के संबंध में आपने अपने विचार या किसी अन्य साथियों के विचार सूचित किए हैं।

आप सदैव मेरे संबंध में आत्मीयतापूर्ण भाव से सोचते हैं। यह मेरे लिए बहुत बड़ी उपलब्धि है। मैं इस देश का नागरिक हूं और मतदाता भी। हर चुनाव में मतदान भी करता हूं। राजनीतिक दलों में से किसी से संबंधित नहीं हूं। यदि शासन और राजनीति देश की एकता एवं अखंडता के लिए तथा विकास के लिए नुकसान पहुंचाती हैं, तो एक नागरिक के नाते प्रकृति प्रदत्त कर्तव्य निभाना मेरा दायित्व है। उसी दृष्टि से मुझे जो लग रहा है और दिख रहा है तथा किया जा रहा है या किया जानेवाला है, उस संबंध में न बोलना कर्तव्यहीनता होगी। संलग्न पत्रों में लिखे विचार अनेक जगह छपे हैं, वे आपकी जानकारी के लिए भेज रहा हूं।

स्वतंत्रता का 55 साल का काल बीत रहा है, किंतु देश के लिए आवश्यक शिक्षा प्रदान करना प्रारंभ भी नहीं हुआ है। देश की नई-पीढ़ी का कोई व्यक्ति प्रचलित शिक्षा पाकर अपने समाज और देश के लिए कुछ भी करने की प्रेरणा नहीं पाता। वह केवल अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए ही जीवन भर लगा रहता है। यदि यही प्रक्रिया चलती रही तो देश का क्या होगा? देश के लिए रचनात्मक कार्य शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग है। यह कार्य राजनीतिक नहीं है। इस दिशा में मैंने डॉ. मुरली मनोहर जोशीजी को पत्र लिखा है। उसकी प्रतिलिपि भी इस पत्र के साथ जोड़ रहा हूं। एक पत्र मैंने योजना आयोग के उपसभापति महोदय को भी लिखा है। किंतु इनमें से कोई भी ठीक दिशा में कदम उठाने की मानसिकता में नहीं है। ऐसी स्थिति में मैं जो कुछ कर रहा हूं, उसकी नितांत आवश्यकता है। अन्यथा जीवित रहकर भी कर्तव्य पालन न करने का पाप मुझे लगेगा। मैं उस पाप का भागीदार नहीं बनना चाहता। राजनीति से मुक्ति का अर्थ देश की हानि को चुपचाप देखना नहीं होता।

मेरी आयु बढ़ी हुई है और बढ़ रही है। इसके बावजूद अभी काम करने की कुछ क्षमता शेष है। जब तक जो भी क्षमता होगी, मैं काम करता रहूंगा। मैं न किसी के विरोध में हूं और न किसी के प्रति दुर्भावना रखता हूं।

21 *समाज के प्रति जवाबदेही को दर्शाता पत्र। श्री रामभाऊ गोडबोले संघ के प्रचारक एवं वनवासी कल्याण आश्रम व विश्व हिन्दू परिषद में सक्रिय रहे।*

विराट् पुरुष

22

15 जून, 2002

प्रिय श्री रामभाऊ,

आपका पत्र मिला। मैं आनेवाले 11 अक्तूबर को 87 वर्ष में पदार्पण करूंगा। मैं अधिकाधिक वृद्ध होता जा रहा हूं, पर गुजरात में एकात्म मानव विकास विश्वविद्यालय प्रारंभ करने जा रहा हूं। मैं अब अधिक काल जीवित नहीं रहूंगा, इसकी मुझे कल्पना है। इसके बावजूद एक नया, अनोखा तथा विशाल प्रकल्प प्रारंभ कर रहा हूं। कारण, देश के लिए उसकी आवश्यकता है। यद्यपि मेरे पुराने साथी मुझे रिपलसिव पर्सनैल्टी कहा करते थे, किंतु मेरे साथ कर्तृत्ववान युवक, युवतियां जुड़ी हुई हैं। पूर्ण समर्पण भाव उनके व्यवहार में प्रतिबिंबित हो रहा है। वे ही सभी दायित्वों को निभा रहे हैं।

दीनदयाल शोध संस्थान के हाथ में लिये किसी भी कार्य में कोई भी महिला या पुरुष 35 साल से अधिक आयु का नहीं है। मैं अधिक आयु के लोगों को इन युवा कार्यकर्ताओं के बीच रखता भी नहीं। कारण, भविष्य का निर्माण पुरानी पीढ़ी के लोग कर नहीं सकते, यह मेरी धारणा है। आजादी के गत पचपन साल का यही अनुमान है। इसी कारण 20 अप्रैल, 1978 को मैंने सभी वृद्ध जनों से अनुरोध किया था कि वे लोग स्वयं को अधिकार पदों से हटाकर युवकों को दायित्व सौंपें, किंतु किसी ने भी यह नहीं माना। उसके दुष्परिणाम देश भोग रहा है।

मैं भी दीनदयाल शोध संस्थान में किसी भी अधिकार पद पर नहीं हूं। दीनदयाल शोध संस्थान की प्रबंध समिति का मैं सदस्य तक नहीं हूं। एकात्म मानव विकास विश्वविद्यालय में मैं स्वयं कोई दायित्व लेनेवाला नहीं हूं। केवल युवक और युवतियां जितना पूछते हैं, उतना भर मैं उन्हें बताता हूं। प्रत्यक्ष कार्य में तनिक भी हस्तक्षेप नहीं करता। इसी कारण सब कार्य ठीक से प्रगति कर रहे हैं। ईश्वर की इच्छा के अनुसार यदि मैं आज भी यह दुनिया छोड़ गया तो भी दीनदयाल शोध संस्थान के कार्य में तनिक भी कमी नहीं आएगी, ऐसा विश्वास है। कारण, मेरे बाद की दो पीढ़ियां तैयार हैं।

गुजरात में प्रारंभ किए जानेवाले एकात्म मानव विकास विश्वविद्यालय की रूपरेखा बनाने का कार्य युवा वर्ग ही कर रहा है। वह क्रमशः ही विकसित होगा। जो लोग इस विश्वविद्यालय को चलानेवाले हैं, वे ही चिंतन, मनन कर एक-एक चीज की मेरे से चर्चा करते हैं। उसका जो आधार है, वह दीनदयालजी के द्वारा दिए गए चार भाषण हैं, जो एक पुस्तिका के रूप में छाप दिए हैं। वह पुस्तिका आपकी जानकारी के लिए प्रेषित कर रहा हूं। उन भाषणों को आप जानते है किंतु सबने उन्हें भुला दिया है।

---

22 *युवाओं की भागीदारी से समाज परिवर्तन का कार्य संभव।*

यह जो विश्वविद्यालय बन रहा है, वह संभवतः विश्व में पूर्णतः भिन्न तरह का होगा। कारण, मानव मानवीयता से शून्य होकर काम कर रहा है। प्रचलित शिक्षा का ऐसा ही रूप है। मानव को मानवीय बनाने का कहीं भी प्रयास हो रहा है यह दिखाई नहीं देता। न उस दिशा में किसी को सोचने की आवश्यकता ही अनुभव हो रही है। जिन बड़े-बड़े लोगों का आपके पत्र में उल्लेख है, उनका दृष्टिकोण अपनाकर एकात्म मानव का विकास होगा, ऐसा मुझे नहीं लगता। इसका अर्थ यह नहीं है कि आप उन्हें प्रेरित न करें, किंतु मैं स्वयं उस दिशा में प्रयत्न नहीं कर पाऊंगा।। मैं छोटा आदमी हूं। बड़े लोगों के पीछे पड़ने के लिए वैसे भी मेरे पास आयु अधिक होने के कारण समय नहीं है।

23

10 जुलाई, 2002

चि. प्रिय सुदाम,

मैं इस पत्र के साथ तुम्हारी जानकारी के लिए दीनदयाल शोध संस्थान के मार्गदर्शक पहलू संलग्न कर रहा हूं।

गुरुकुल में शिक्षार्थी चौबीसों घंटे साथ-साथ रहते हैं। इस कारण विभिन्न परिवारों से आने के बावजूद गुरुकुल में एक परिवार के रूप में उनका व्यवहार विकसित होगा, यह अपेक्षा है। कुटुंब का अर्थ है—परस्पर आत्मीयतापूर्ण पूरकता! किंतु वर्तमान काल में एक ही आबादी में रहनेवाले सब लोगों में परस्परपूरकता की आदत नहीं रही। हरेक परिवार अपनी ही सुख-सुविधाएं बढ़ाने में लगा रहता है। अपनी सुख-सुविधाएं बढ़ाने में अन्यों का नुकसान होनेवाला हो तो भी उसकी उसे परवाह नहीं रहती। सभी समस्याओं की यही जड़ है। एक ही आबादी में खुशहाली से सराबोर परिवार दिखाई देगा तो दूसरा अभावग्रस्त होकर जिंदगी काटता हुआ परिवार भी मिलेगा। खुशहाल परिवार को अभावग्रस्त परिवार की दुर्दशा देखकर कोई पीड़ा अनुभव नहीं होती। दीनदयाल शोध संस्थान गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त युवाओं को समाज में व्याप्त उपर्युक्त दुर्दशा का निवारण करते हुए अपना जीवन भी सुखमय बनाने का क्रांतिकारी कार्य करना है।

24

07 मई, 2003

चि. प्रिय श्री रामशंकरजी,

जनशिक्षण संस्थान द्वारा गोंडा जिले में विभिन्न केंद्रों पर आपने युवक-युवतियों के लिए स्वरोजगार का प्रबंध किया है। उससे नई पीढ़ी के लोग लाभान्वित होकर स्वावलंबी बन रहे हैं।

मैं उन केंद्रों की प्रारंभ होने के समय से विस्तृत जानकारी चाहता हूं। उनके कार्य करते हुए

23 *शिक्षा में कुटुंब प्रणाली का प्रयोग। सुदाम भोंडवे डीआरआई के कार्यकर्ता रहे।*

अच्छे फोटो भी चाहता हूं। लाभान्वित हो रहे युवक-युवतियों की आयु के साथ उनके नाम व कामों की जानकारी भी मिलेगी ही। उनमें से जिन लोगों की पढ़ाई भी हुई हो तो वह कहां तक हुई है, इसकी जानकारी भी मिलना अपेक्षित है।

25

28 नवंबर, 2003

चिरंजीव प्रिय कार्तिकेय,

यद्यपि तुमने तकनीकी विद्या की उपाधि पाई है फिर भी शिक्षा क्षेत्र में स्वेच्छा से काम करना पसंद किया है। अपनी रुचि के अनुसार काम का चयन करना अति उत्तम होता है। व्यक्ति को उसमें विशेष सफलता मिलती है। यह अनुभव सिद्ध तथ्य है। यह मेरा अपना भी अनुभव है।

आयु के 62 वर्ष तक संघ के आदेश के अनुसार जो भी काम मुझसे करवाया गया, वह मैं मन लगाकर करता रहा हूं, किंतु आयु के 62 वर्ष होने के बाद मैंने संघ से अनुमति लेकर दीनदयाल शोध संस्थान के कार्य में अपना शेष जीवन लगाना प्रारंभ किया है। कारण, यह कार्य मेरी अपनी रुचि का था। मुझे अपने इस कार्य से केवल अधिकाधिक समाधान ही नहीं मिला, अपितु उत्तरोत्तर उत्साह भी बढ़ता गया और समाज भी अधिक लाभान्वित होता गया।

नूतन संतान देश और समाज का भविष्य निर्माण करने में सक्षम सिद्ध हो, यह शिक्षा क्षेत्र का मूलभूत लक्ष्य है। केवल पारिवारिक आजीविका चलाने में नूतन संतान को सक्षम बनाना शिक्षण क्षेत्र का दायित्व नहीं होता। यह बात शिक्षा क्षेत्र में काम करनेवालों को समझ लेनी चाहिए। इसके अभाव में आजादी के 56 वर्ष बेकार हुए हैं। यह कहने के लिए हम लोग विवश हैं। इस अपराध से मुक्ति पाना दीनदयाल शोध संस्थान का लक्ष्य है। इस लक्ष्यसिद्धि के लिए दीनदयाल शोध संस्थान के हम सभी कार्यकर्ताओं को दोहरा दायित्व निभाने की आवश्यकता है।

पहला दायित्व—दीनदयाल शोध संस्थान अविवाहित कार्यकर्ताओं को अपने कार्य में स्थान देना पसंद नहीं करता। अतः दीनदयाल शोध संस्थान का कार्यकर्ता वर्ग अपनी संतान को व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्व के त्रिगुणात्मक नमूने के रूप में विकसित करने की दृष्टि से अपना कौटुंबिक जीवन विकसित करने की प्रेरणा देता है। इस दिशा में पति-पत्नी का व्यवहार पास-पड़ोस में रहनेवालों के लिए अनुकरणीय बने, यह चाहता है।

दूसरा दायित्व—जिस कार्यकर्ता ने शैक्षणिक क्षेत्र को पसंद किया है उस कार्यकर्ता या कार्यकर्त्री विद्यालय के सभी विद्यार्थियों में व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों की त्रिगुणात्मक

24 *कार्य की प्रगति में स्पष्टता महत्त्वपूर्ण है। रामशंकर द्विवेदी डीआरआई के कार्यकर्ता रहे।*

25 *शिक्षा का महत्त्व और लक्ष्य क्या हो? उसे समझाता पत्र। कार्तिकेय द्विवेदी डीआरआई के कार्यकर्ता रहे।*

क्षमता विकसित हो, इसलिए विद्यार्थियों के पालकों का भी सहयोग पाने की अपने में कुशलता बढ़ाएं, यह अपेक्षा करता है।

अगस्त 1947 के पूर्व देश में आजादी पाने का संघर्ष चल रहा था। उस समय बलिदान की भावना का सर्वाधिक महत्त्व था। अतः हर कदम, हर घोषणा, हर भाषण, हर गीत और हर चर्चा बलिदानपूर्ण पराक्रम की भावना से परिपूर्ण होना आवश्यक था, किंतु 15 अगस्त, 1947 के बाद अर्थात् स्वतंत्र भारत में नवरचना का युग प्रारंभ होना चाहिए था। नूतन संतान की मानसिकता नवरचना की दिशा में विकसित करने की आवश्यकता थी। हर छोटी-बड़ी आबादी एक अभिन्न परिवार के रूप में कार्यरत कराने की दिशा में गतिशील बनाने की आवश्यकता थी। आबादी की हर गली, हर रास्ता, हर मकान और हर विद्यालय साफ-सुथरा विकासशील एवं आकर्षक बनाने में आबादी के सभी लोगों को संलग्न करने का वातावरण निर्माण करने की जरूरत थी। आबादी में होनेवाले पारिवारिक समारोह में सबके सम्मिलित होने की प्रथा दोबारा प्रचलित करने की जरूरत थी। गांव में हर खेत का उत्पादन बढ़ाने की दिशा में परस्पर सहयोग का वातावरण निर्माण करने में नेतृत्व की सजगता कदम-कदम पर प्रगट होने की जरूरत थी।

आबादी का कोई भी परिवार विपन्नावस्था में न रहे अपितु गांवों के सभी लोग मिलकर सबकी खुशहाली के लिए प्रयत्नशील हो, इस दिशा को प्रशस्त करने की आवश्यकता थी। बेकारी की बीमारी पैदा न हो, इसलिए नए-नए रोजगार खड़े करना समय का काम था। आज भी हमें इन्हीं लक्ष्यों की प्राप्ति पर अपने हर कार्य को केंद्रित करने की आवश्यकता है।

26

20 जनवरी, 2005

चि. प्रिय गायत्री,

तुम्हारा हिंदी में लिखा हुआ पत्र मिला। प्रथम प्रयास होते हुए भी तुमने हिंदी में अपने विचार स्पष्ट रूप से प्रकट किए हैं। वस्तुतः हिंदी भाषा इतनी सरल है कि वह प्रयास करनेवालों को सहज में ही सफल बना देती है।

अब तुम एक वर्ष इन्टर्नशिप करने जा रही हो। यह वस्तुतः डॉक्टर बननेवालों के लिए महत्त्वपूर्ण वर्ष रहता है। जिन लोगों को सुयोग्य डॉक्टर बनने की महत्त्वाकांक्षा रहती है, वे इस वर्ष में अनवरत काम करने के लिए आतुर रहते हैं। वे केवल ड्यूटी पूरी करने के लिए काम नहीं करते। मैंने कुछ डॉक्टर्स ऐसे पाए हैं, जिन्होंने अपने अधिकारियों से आग्रह कर अपनी ड्यूटी एमरजेंसी वार्ड में लगवा ली है और वे चौबीसों घंटे ड्यूटी देने में तत्पर रहते हैं। परिणामस्वरूप, वे प्रत्यक्ष डॉक्टरी के क्षेत्र में नामी डॉक्टर बन गए हैं। ऐसे कई डॉक्टरों से मेरा व्यक्तिगत संबंध है।

26 *नानाजी भाषा बंधन मुक्त समाज के हिमायती थे। गायत्री देशमुख डीआरआई के कार्यकर्ता रहीं।*

चित्रकूट के वातावरण में एक सप्ताह रहकर तुम्हारे मन में सामाजिक दायित्वबोध की भावना अंकुरित हुई है, किंतु इस भावना को टिकाए रखना तथा तदनुसार अपना जीवन ढालना आसान नहीं हैं। अभी तो तुम्हें सुयोग्य डॉक्टर बनने का ही प्रयास मन लगाकर करना चाहिए। इसी एक वर्ष में यह भी निश्चित करना चाहिए कि पोस्ट-ग्रेजुएशन किस विषय में करना है। यदि उस विषय का अभी से चयन किया तथा तदनुसार इस एक वर्ष का उपयोग किया तो उसका बहुत लाभ हो सकता है।

27

29 अगस्त, 2006

चि. प्रिय रत्नाताई,

बीड़ जिला सह्याद्रि के पूर्व में होने के कारण वर्षा ऋतु में वर्षा प्रदान करनेवाले बादल सह्याद्रि से टकराकर महाराष्ट्र के पश्चिमी समुद्र तट पर ही वर्षा करते हैं। सह्याद्रि के पूर्व का इलाका साधारणत: वर्षाहीन बना रहता है। इस कारण बीड़ का पाटोदा जिला वर्षा के अभाव से और भी त्रस्त है। जमीन पथरीली है, जो कुछ वर्षा होती है, वह बह जाती है। परिणामस्वरूप, सरकार ने 'परकोलेशन टैक्स' की स्कीम हाथ में ली थी, किंतु 'परकोलेशन टैक्स' में वर्षा में पानी के साथ मिट्टी बहकर सिल्ट जमा होकर तालाबों में पानी का संचय आवश्यकता पूर्ति की दृष्टि से शून्य हो जाता है। किसान सपरिवार बैलगाड़ी से चीनी मिलों (साकर कारखानों) के क्षेत्र में चला जाता है और लगातार छह महीने मिल के लिए गन्ना काटकर पहुंचाने में कमाई करता है। परिणामस्वरूप, उनके बच्चों की पढ़ाई नहीं हो पाती। अपनी बैलगाड़ियां लेकर चीनी मिलों के क्षेत्र में जानेवाले किसानों की बैलगाड़ी में जानेवाले परिवारों से मैंने स्वयं बात की।

इन बच्चों को शिक्षित करने के लिए 'गुरुकुल' की कल्पना उदित हुई और प्रिय दादा जोशी ने इस कल्पना को 'सोनदरा गुरुकुल' के रूप में बड़े परिश्रम के साथ प्रारंभ किया। डोमरी गांव का महत्त्व मेरे दिमाग में इस कारण था कि स्व. अच्युत पटवर्धन ने डोमरी गांव में कुछ दिन रहकर सन् 1942 का स्वातंत्र्य संग्राम लड़ा था। मेरी कल्पना थी कि इन अभावग्रस्त किसानों के बच्चे मैट्रिक या इंटर तक शिक्षा पाएं और साथ में उनको ग्रामीण उद्योगों का प्रशिक्षण देकर स्वावलंबी जीवन का मार्ग अपनाने के लिए आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराएं। दीनदयाल शोध संस्थान नहीं चाहता कि 'सोनदरा गुरुकुल' में पढ़नेवाले बालक चाकरी की याचना करते घूमते रहे, अपितु स्वयं रोजगार द्वारा स्वावलंबी और स्वाभिमानी जीवन अर्जित कर सकें।

□

27 *सोनदरा गुरुकुल की परिकल्पना। रत्ना ताई हसेगांवकर डीआरआई की कार्यकर्ती रहीं।*

भक्ति की शक्ति
उसके बिना विकास अधूरा है

मानव केवल शरीर, मन और बुद्धि तक ही सीमित नहीं है। आत्मा उसका अभिन्न अंग है। उसके पूर्ण विकास का अर्थ है शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास के साथ-साथ आत्मिक विकास की लक्ष्य-सिद्धि। संसार के ऋषि-मुनियों व साधु-संतों ने आध्यात्मिक विकास को सर्वाधिक महत्त्व दिया है, अतः समाज-रचना का प्रयास केवल शरीर की आवश्यकताओं व इंद्रिय सुखों तक ही सीमित रहा तो एकांगी है, अपूर्ण है। अंततोगत्वा वह न व्यक्ति के लिए सुखदायी होता है, न समाज के लिए।

आध्यात्मिक विकास में 'भक्ति' का बहुत बड़ा स्थान है। भक्ति भावना ही मानव-मन की सांसारिक वासनाओं से ऊपर उठाती है। वह आत्मा को परमात्मा की ओर बढ़ाती है। अपने यहां कहा गया है कि सच्ची भक्ति नर को नारायण बनाती है। मानव धनी हो या निर्धन, शिक्षित हो या अशिक्षित, गुणी हो या दुर्गुणी, उसके हृदय में भक्ति भावना अवश्य रहती है। स्वयं को नास्तिक कहलानेवाले भी विपदा की घड़ी में उसी का सहारा खोजते देखे गए हैं। विज्ञान एवं तकनीकी के इस युग में भी भक्ति की परंपरा कायम है। गत तीन शतकों से पश्चिम से विज्ञान एवं औद्योगिक क्रांति की जो लहर चल पड़ी है, उसने अध्यात्म और विज्ञान के बीच दीवार सी खड़ी की है। इस लहर ने व्यक्तिगत, पारिवारिक व सामाजिक जीवन की दिशा ही बदल दी है। रहन-सहन, खान-पान, बोल-चाल सबकुछ बदल डाला है, किंतु भौतिकता की यह प्रबल आंधी भी भक्ति भाव को अपने साथ बहा ले जाने में असमर्थ सिद्ध हुई है। विभिन्न प्रकार के भौतिक सुखों में आकंठ डूबे रहने के बाद भी पश्चिम का मानव भी अपने जीवन में खोखलापन महसूस कर रहा है। उसे अपनी विकसित औद्योगिक सभ्यता में अब सर्वनाश के बीज दिखाई दे रहे हैं, अतः वह भक्ति की ओर दौड़ता दिखाई दे रहा है। भारत से पश्चिमी देशों में जानेवाले साधुओं के पीछे वहां के संपन्न भक्तों की भीड़ लगी रहती है।

भारत में भक्ति का प्रवाह सदा-सर्वदा से बहता चला आ रहा है। साधु-संतों की परंपरा ने जन-मन में भक्ति की गंगा बहा दी है। भक्ति भावना ने भारतभूमि की प्रत्येक नदी और पर्वत को तीर्थ बना दिया है। जहां-जहां भक्तों के चरण पड़े, वहां ही तीर्थ बन गया। ऐसे तीर्थ संपूर्ण देश

जयप्रभा ग्राम में अभिनव तीर्थ, भक्तिधाम की परिकल्पना। सितंबर, 1985

में बिखरे पड़े हैं। इन तीर्थों के लिए जन-मानस में अटूट श्रद्धा है। उनके दर्शन की प्रबल अभिलाषा अनंत काल से अखंड रूप में विद्यमान है। इन तीर्थों में पुरानी व नई पीढ़ी के नर-नारियों का एक तांता सा लगा रहता है। भक्ति की शक्ति इतनी प्रबल है कि उसमें न निर्धनता बाधक बनती है, न वृद्धावस्था। कुंभ का मेला हो या गंगा-स्नान का, रामनवमी का मेला हो या जन्माष्टमी का, बिना प्रचार व पर्चों के, बिना रेडियो व अखबार के, सब प्रकार की असुविधाओं के बावजूद बाल-बच्चों सहित लाखों की संख्या में यात्रियों का महासागर उमड़ पड़ता है।

भक्ति की शक्ति का चिर यौवनपूर्ण प्रवाह भारत के उज्ज्वल भविष्य के निर्माण का प्रभावी माध्यम बन सकता है, किंतु दुर्भाग्य है कि स्वतंत्र भारत के नव निर्माण में भक्ति की इस असीम शक्ति की उपेक्षा हो रही है। प्रगति एवं आधुनिकता के नाम पर विकसित देशों में असाध्य समस्याओं की जननी विशालकाय यांत्रिकी को बिना सर्वांगीण अध्ययन किए ही धड़ल्ले से अपने यहां आयात किया जा रहा है। परिणामस्वरूप, अपने देश में भी मानवीयता एवं सामाजिकता तेजी से घट रही है। व्यक्तिवाद दिन-दूना और रात-चौगुना बढ़ रहा है। एकात्मता के स्थान पर विघटन पनप रहा है। परस्पर सद्भावना व सहयोग का स्थान अविश्वास, विद्वेष व कलह ने ले लिया है। शांति और सदाचार के स्थान पर हिंसा और दुराचार फैल रहा है। आत्मविश्वास के स्थान पर भविष्य के प्रति आशंकाएं बढ़ रही हैं। मानवीय मूल्यों व नैतिकता का उपहास हो रहा है।

भक्ति की शक्ति के बावजूद ऐसा क्यों हो रहा है? गहराई के साथ झांकने पर साफ दिखाई देगा कि भक्ति की अवधारणा में भी बदलाव आया है। भक्ति का पावन प्रवाह प्रवाहित करनेवाले ऋषि-मुनियों एवं साधु-संतों ने अपनी भक्ति-भावना से कण-कण में, प्रत्येक पेड़-पौधे में, जीव-जंतु में, मानव मात्र में भगवान् का दर्शन करने की दृष्टि प्रदान की थी। उन्होंने ही कहा था, 'ना जाने किस भेष में नारायण मिल जाएँ' भक्ति भावना का अर्थ था प्रत्येक दीन दुःखी को भगवान् का रूप मानना, उसी की सेवा को भगवान् की पूजा समझना, अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए जीना। जिन पुराण कथाओं के माध्यम से भक्ति की पावन गंगा भारत के ग्राम-ग्राम, घर-घर तथा हृदय-हृदय में पहुंची उन पुराणों के बारे में जब किसी ने पूछा कि महर्षि व्यासजी इन विशाल अठारह पुराणों के माध्यम से क्या संदेश देना चाहते हैं, तो उत्तर मिला— ''अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनं द्वयं, परोपकाराय पुण्याय, पापाय परपीडनम्।'' अतः व्यासजी ने अठारह पुराणों में केवल दो ही वचन कहे हैं कि परोपकार ही पुण्य है और परपीड़न ही पाप है। गुजरात में नरसी भगत ने भी यही कहा है—''वैष्णव जन तो तेणे कहिये जो पीर परायी जाणे रे।'' गीता में पग-पग पर कहा गया है—'सर्वे भूतहिते रताः' व्यक्ति ही भक्त कहलाने के अधिकारी हैं। प्राणिमात्र के सुख की कामना को ही अपना जीवन व्रत मानकर नित्य नियम से दोहराने का मंत्र है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत।

इन भक्तों के जीवन हमारे पथ-प्रदर्शन के लिए प्रकाश-स्तंभों के रूप में खड़े हैं। वस्तुतः किसी भी सच्चे भक्त ने भगवान् की आराधना व्यक्तिगत स्वार्थ-पूर्ति के लिए नहीं की। भक्तराज प्रह्लाद ने सदा यही कहा कि मुझे अकेले मुक्ति नहीं चाहिए। सभी भक्त मुक्ति प्राप्त करें। भक्त-शिरोमणि हनुमान का आदर्श क्या था? निर्हेतुक प्रभु सेवा। रंतिदेव ने सदा यही कामना की थी कि संसार के दुःख संतप्त आर्त जनों का कष्ट दूर हो। संत एकनाथ तो प्राणिमात्र के प्रेम में विभोर हो गए थे। भक्ति रस के अनन्य उपासक संत सूरदास नेत्रहीन थे, किंतु क्या कभी उन्होंने भगवान् से अपने लिए आंखें मांगीं? तुलसी ने सुख का सपना नहीं संजोया। मीरा ने राजमहलों का ऐश्वर्य ठुकराया।

आज के युग में भक्ति के 'परोपकाराय पुण्याय' के आदर्श को भुला दिया गया है। उसे स्वार्थ साधना का सोपान बनाया है। भक्ति, जो व्यक्ति को मानवीय गुणों और मूल्यों के उच्चतम शिखर पर ले जाने में समर्थ है, उसका उपयोग केवल अपने और अपने कुटुंब के स्वार्थ के लिए ही किया जा रहा है। उसी के अनुसार प्रार्थनाएं एवं कथाएं रची व गढ़ी जा रही हैं। देवालयों में भगवान् की कृपा का खुला व्यापार हो रहा है। स्वार्थांध धनवान के लिए तो देव प्रतिमा के निकटतम पहुंचकर देव-दर्शन की व्यवस्था सुलभ हो जाती है, किंतु निष्काम एवं निर्धन भक्त टकटकी लगाए दूर ही खड़ा रह जाता है। भक्ति के इस अवमूल्यन से मानव के हृदय की संवेदनशीलता व विशालता के विकास की संभावना ही समाप्त हो रही है। इस गलत प्रथा में परिवर्तन न किया गया तो मानवता व नैतिकता (आध्यात्मिकता) ही मिट जाएगी। मानव पशु मात्र रह जाएगा।

भक्ति को स्वार्थ एवं व्यक्तिवाद के गड्ढे से निकालकर पुनः उसके तेजोमय उदात्त रूप में प्रतिष्ठित करना आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। भक्ति-भावना को व्यक्तिगत कामना-पूर्ति की परिधि से निकालकर समाज व मानवता के साथ पुनः जोड़ना जरूरी है। भक्ति की प्राचीन 'सर्वभूतहिते रतः' की उदात्त परंपरा को पुनरुज्जीवित करना होगा।

गोंडा ग्रामोदय प्रकल्प के केंद्र जयप्रभा ग्राम में भक्ति धाम का निर्माण इसी प्रेरणा का परिणाम है। सर्वांगीण ग्राम पुनर्रचना की योजना का यह अभिन्न अंग है। सामाजिक व आर्थिक विकासों के विभिन्न प्रकल्पों के साथ-साथ भक्ति धाम आध्यात्मिक विकास की भावना को सर्वव्यापी बनाएगा। भक्ति धाम प्रेरणा केंद्र होगा। व्यक्ति व्यक्ति को सुसंस्कारित करेगा।

भक्ति धाम का स्वरूप

- भक्ति धाम का स्वरूप पहले से विद्यमान मंदिरों से भिन्न होगा। वहां हर भक्त को अपने इष्ट देवता के दर्शन के साथ-साथ भगवान् के अन्य सब रूपों के भी दर्शन होंगे।
- भारत के चारों कोनों पर स्थित चारों धामों एवं विभिन्न उपासना तीर्थों के दर्शन का पुण्य मिलेगा।
- भक्ति एवं अध्यात्म के प्रवाह को अखंड बनाए रखनेवाले व्यास, वाल्मीकि, ऋषभदेव, पारस नाथ, महावीर, बुद्ध भगवान्, आदि शंकराचार्य, मध्यकाल के गुरु नानक, चैतन्य महाप्रभु,

कबीर, रविदास, तुकाराम, संत ज्ञानेश्वर, तुलसी, नरसी भगत, सूरदास, मीरा, रहीम, रसखान तथा आधुनिक काल के रामकृष्ण परमहंस, स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ, योगीराज अरविंद आदि अवतारी संतों का उनकी वाणी सहित दर्शन सुलभ होगा।

- इस मंदिर में चढ़ावे में आनेवाले धन या धान्य का एक-एक पैसा या दाना-दाना समाज सेवा के पावन कार्य में ही खर्च होगा।
- नित्य प्रात:काल व सायंकाल मंगल स्तवन के साथ आरती होगी।
- भक्ति धाम में एक विशाल सभा मंडप होगा, जिसमें समाजोन्मुखी व्याख्या के साथ-साथ भजन-कीर्तन एवं प्रवचन होते रहेंगे।
- भक्ति धाम द्वारा धार्मिक पर्वों पर आयोजित कार्यक्रमों के माध्यम से भक्ति का संबंध मानव मात्र की सेवा के साथ जोड़ा जाएगा।
- भक्ति धाम का समूचा वातावरण ऐसा होगा कि वहां आनेवाला प्रत्येक भक्त भगवान् के चरणों में बैठकर केवल अपने लिए ही नहीं, अपितु सबके कल्याण के लिए भगवान् की आराधना करेगा।
- भगवान् से प्रेरणा पाकर संकल्प लेगा कि जिस ग्राम या मुहल्ले में वह रहता है, वहां अपने कुटुंब के सभी सदस्यों सहित निम्न सेवाओं में संलग्न होगा—
    - कोई निरक्षर, अशिक्षित या अज्ञानी न रहे।
    - कोई दीन-हीन निर्धन या दु:खी न रहे। सब परिश्रमी-स्वावलंबी व स्वाभिमानी बनें।
    - कोई गंदा और अव्यवस्थित न रहे। पूरा परिसर तथा घर-घर स्वच्छ, सुंदर एवं व्यवस्थितता का नमूना बने।
    - कोई रोग ग्रस्त न हो। रोगी की आवश्यक सेवा व उपचार का समुचित प्रबंध हो। चारों ओर स्वास्थ्यवर्धक वातावरण बना रहे।
    - हर परिवार में नैतिकता, सदाचार व स्नेह का वातावरण सदा बना रहे। घर में आबालवृद्ध संवेदनशील व सेवा भावना से विभूषित हों।

भक्ति धाम किसी एक का नहीं, सभी का है। यह सबके सहयोग का प्रतीक है। धनी और निर्धन, पढ़ा और बेपढ़ा, बूढ़ा और जवान, महिला और पुरुष, बालक और बालिका—सभी इसके निर्माता हैं।

प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार पांच-दस पैसा ही क्यों न हो, भक्ति धाम के निर्माण में अवश्य देगा। उसके साथ ही इस निर्माण कार्य में श्रम साधना के रूप में यथासंभव श्रमदान भी करेगा, अत: भक्ति धाम हर इनसान का है। सबकी पावन भावनाओं का यह अनोखा संगम है।

□

साधारण मानव
ही बनता है महामानव

भक्ति में कितनी संभावनाएं छिपी हुई हैं, यह स्पष्ट होता है गांव की उस घटना से। मैं गोंडा जिले के एक गांव में गया था। गांव की चौपाल पर ग्रामवासियों के साथ सहज ही गपशप हो रही थी। कुछ ही दिनों बाद हरिद्वार में कुंभ का मेला था। उसी एक गांव से चार-पांच परिवार मेले में जाने की तैयारी कर रहे थे। उन परिवारों में से एक परिवार बहुत गरीब था। कुल चार बीघा खेती थी उसके पास। लेकिन कुंभ जाने की बड़ी प्रबल चाह थी। इसके लिए उस परिवार के मुखिया ने तीन सौ रुपया कर्ज ले लिया था। यह जानकर मुझे कुछ परेशानी अनुभव हुई। वह गरीब व्यक्ति पास में ही बैठा था। मैंने सहज में ही उससे कहा, ''भाई, कुंभ-स्नान के लिए कर्ज लेकर तुमने एक बहुत बड़ी मुसीबत मोल ली है।'' उस पर उसने भावुक होकर कहा, ''नानाजी, आदमी की जिंदगी का क्या ठिकाना? इसके बाद तो कुंभ बारह साल बाद आएगा। मन कहता है कि जीते जी बाल-बच्चों समेत एक बार कुंभ का नहान कर लूं तो जिंदगी तर जाएगी।'' इस पर गांव के एक धाकड़ आदमी ने कहा, ''अरे, कुंभ नहान खातिर कर्ज की कौन जरूरत? हजारों जात हैं कुंभ में। सब कोई थोड़े ही लेत हैं टिकस (टिकट)। तुम्हें ही कौन पड़ी है टिकस लेवे की? काहे नाही जात टरेन की छत पर चढ़ के?'' उस पर उस बेपढ़े देहाती ने कहा, ''भैया, कुंभ नहान धर्म का काम है। ये में बेईमानी करे के नाही चाही।''

कितनी अर्थपूर्ण बात सहज में ही निकल पड़ी थी उस देहाती के मुंह से! सच्ची भक्ति नैतिकता व सदाचार का संबल है। क्या इस उदात्त भावना को बेपढ़े देहातियों की अंधश्रद्धा कहकर उपेक्षित किया जा सकता है? क्या इस भक्तिभाव का अभाव ही वर्तमान दुर्दशा का कारण नहीं है? इस प्रश्न से मेरी चिंतन-प्रक्रिया को अलग ही मोड़ मिला।

भारत मां के प्रति हृदय में बसी अनन्य भक्ति ने ही स्वातंत्र्य संग्राम के काल में छाती तानकर गोलियां खाने का दुर्दम्य साहस प्रदान किया था भारतीय संतानों को। अनेकानेक नौजवानों को हंसते-हंसते फांसी के फंदों को चूमने के लिए प्रेरित किया था। देश के असंख्य नर-नारियों को सालो-साल जेल की यातनाएं स्वखुशी से भुगतने के लिए प्रोत्साहित किया था। देश के युवक-युवतियों को अच्छी-से-अच्छी नौकरियों पर ठोकर मारकर स्वातंत्र्य देवता के चरणों में सर्वस्व

मंथन, जनवरी, 1987

लुटाने के लिए आगे बढ़ाया था। उसी ने हमें विश्वव्यापी साम्राज्य की शक्ति के चंगुल से मुक्त कर स्वतंत्र कहलाने का गौरव प्रदान किया है। क्या इस भक्ति की शक्ति का आज कोई उपयोग नहीं है?

सैकड़ों साल बाद आजाद हुए देश के नव-निर्माण के लिए स्वराज्य प्राप्ति से कम लगन, कम समर्पण व कम त्याग नहीं चाहिए। इस काम के लिए तो अधिक संवेदनशीलता, अधिक साहस, अधिक त्याग, अधिक कष्ट सहन करने की शक्ति, अधिक परिश्रमशीलता और अधिक आत्मार्पण की जरूरत है। क्या यह स्वराज्य प्राप्ति के काल की भक्ति भावना के बिना संभव है?

भक्ति व्यक्ति को शारीरिक सुखोपभोग तक सीमित नहीं रहने देती। वह व्यक्ति को संवदेनशीलता की प्रेरणा देती है। संकुचितता, वासना-वृत्ति व स्वार्थ से ऊपर उठाकर हृदय की व्यापकता बढ़ाती है। कायरता को मिटाकर साहस प्रदान करती है। लोभ को दबाकर विवेक को जगाती है। मनन व चिंतन की क्षमता बढ़ाकर व्यक्ति को कार्यक्षम व योग्य बनाती है। अहंकार के चंगुल से छुड़ाकर विनम्र, सहिष्णु व सहृदय बनाती है। मैले-कुचैले, अशिक्षित, पीड़ित व उपेक्षितों में भगवान् के दर्शन कराती है। उसके साथ अभिन्नता अनुभव कराकर उनके सर्वांगीण विकास में जुटाती है। उन्हें स्वावलंबन व स्वाभिमान से विभूषित कराने की लगन लगाती है। अतः आज हमें स्वातंत्र्य संग्राम के काल से भी अधिक आवश्यकता है समाज के प्रति भक्ति-भावना की।

किंतु आजादी के बाद, तथाकथित आधुनिकता के चक्कर में आकर हमने इस प्राणदात्री शक्ति को असामयिक समझा है। उसकी केवल उपेक्षा ही नहीं, उपहास भी किया है। भोगप्रवण औद्योगिक सभ्यता के आकर्षण में हमने अपनी परंपरागत सर्व सुखदायी इनसानियत की उदात्तता को घर बाहर कर दिया है। 'हम दो व हमारे दो' में ही हमने स्वयं को नजरबंद कर लिया है। मानव-मन की स्वाभाविक सामाजिकता को भुला दिया है। न रिश्तेदारों से मतलब, न पड़ोसियों से सरोकार। यह है हमारी आधुनिकता की मानसिकता। इस आधुनिकता ने हमारी प्रतिभा को ही कुंठित कर दिया है। अपने अंदर की प्रभुप्रदत्ता असीम शक्ति को विस्मृत कर डाला है। इस नूतन मानसिकता के कारण छोटे-से-छोटे व बड़े-से-बड़े माने जानेवाले व्यक्तियों की शक्ति अति सीमित मात्रा में काम आ रही है। संपूर्ण विश्व को अपने हृदय में समा सकनेवाली मानव की क्षमता अपने परिवार के दायरे में ही जकड़ गई है। परिणामस्वरूप आजादी के बाद देश में महापुरुषों का अकाल हो गया है।

साधारण मानव ही तो महामानव बनता है। महामानवों के कोई अलग से खानदान नहीं होते। उनकी अपनी कोई खास नस्ल या जाति नहीं होती। उनका कोई विशेष मजहब (संप्रदाय) नहीं होता। अपना इतिहास इसका साक्षी है। महामानव हर प्रकार के वंशों में, हर जाति-बिरादरी में, हर भाषा और संप्रदाय में तथा देश के सभी इलाकों में पैदा हुए हैं। जब किसी के हृदय में प्रभुप्रदत्त असीम शक्ति का साक्षात्कार होता है, जब कभी किसी के हृदय में पीड़ित व उपेक्षितों के लिए करुणा जाग उठती है, जब असहाय व असमर्थ लोगों को समर्थ बनाने की लगन लगती है, केवल निजी संतान के दायरे में सीमित न रहकर मानव मात्र के साथ स्नेह और बंधुभाव जागता है, तो

वह व्यक्ति चाहे किसी खानदान, जाति या क्षेत्र में जनमा हो, वह महामानव बनता है। बिना व्यापक दायित्व की अनुभूति के व्यक्ति में जन्मजात असीम शक्ति प्रस्फुटित नहीं होती। व्यापक दायित्व की अनुभूति की जड़ है—मानव मात्र के प्रति भक्ति। उसे आप व्यक्ति के हृदय की तीव्र संवेदनशीलता कहें, करुणा कहें या प्रभुप्रेरणा कहें। मानव-मन की विशेषता है कि अनुकूलता पाते ही अंत:करण में वास करनेवाली भक्ति की तीव्रता के कारण उसमें प्राणिमात्र के साथ तादात्म्य होने की उत्कंठा अंकुरित होती है। इसे ही विद्वान् व दार्शनिक, अध्यात्म की भूख कहते हैं। आध्यात्मिकता का अर्थ संसार से विरक्ति नहीं है। अध्यात्म विशेष दृष्टि का वरदान देता है, जिससे मानव हर एक वस्तु में मांगल्य का दर्शन कर पाता है। उस मांगल्य में वृद्धि करने में ही वह असीम आनंद अनुभव करता है। हर एक से आत्मीयता का नाता जोड़ता है। उसके सर्वांगीण विकास में रममाण होता है। उसमें उदित विरक्ति उसे वासनाओं से, भोग से दूर करती है—संसार से नहीं। वह पलायनवादी नहीं बनता। यह मानव मन की संवेदना व मस्तिष्क की बुद्धि के समन्वय का परिपाक है। मानव की महानता का मर्म है।

यह अनुभूति संवेदनहीन व शुष्क तार्किक बुद्धि के परे है। केवल तार्किक बुद्धि मानव की कर्तृत्व शक्ति को जाग्रत् नहीं कर पाती। वह कल्पना-जगत् की उड़ानों में ही सार्थकता समझती है। मानव की चतुर्विधा शक्ति के स्रोत अर्थात् शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा के एकात्म रूप को अनुभव नहीं करती। वह एकांगी चिंतन की विधि है। मानव की उपर्युक्त चतुर्विधा शक्तियों में से न किसी एक शक्ति का महत्त्व कम है, न अधिक। सभी का महत्त्व समान है। इन चारों शक्तियों का सम्मिलित व संतुलित रूप ही मानव है। अन्यथा वासना का शिकार होकर मानव ही दानव बन जाता है, विध्वंसक व खतरनाक बनता है। आधुनिक जगत् में मानव ने ही विज्ञान व तकनीक के विस्मयकारी आविष्कार किए हैं, किंतु उनके कारण मानव विनाश की आशंका से भयभीत है। यह मानव के एकात्म रूप की उपेक्षा का परिणाम है। इन आविष्कारों की नींव में मानव मन की संवेदना नहीं है। उसकी नींव में वासनाओं का मसाला भरा पड़ा है।

हमारे स्वातंत्र्य संग्रामकालीन मनीषियों व दार्शनिकों को इन संभावनाओं का अनुमान था। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था, ''भारत इस औद्योगिक सभ्यता की बाढ़ में प्रवाहपतित के समान कदापि नहीं बहेगा। अपने पूर्वजों द्वारा प्रदत्त श्रेष्ठ जीवन-दर्शन, वैज्ञानिक समाज-रचना तथा अखंड अनुभव-परंपरा के प्रकाश में, अपनी मौलिक प्रतिभा से स्थायी मूल्यों पर आधारित तथा विज्ञान के आधुनिक आविष्कारों को ध्यान में रखकर एक ऐसी नवीन, सामाजिक व आर्थिक रचना खड़ी करेगा, जो शेष विश्व के लिए भी अनुकरणीय बन सके। विवेकानंद, अरविंद, तिलक एवं गांधी आदि मनीषियों ने बार-बार दोहराया था कि नियति द्वारा निर्धारित अपने इस जीवन-लक्ष्य की पूर्ति के हेतु ही भारत स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रहा है। अत: भारत की स्वाधीनता केवल उसके अपने हित में नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व के लिए आवश्यक है।

इसे दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि आजादी पाने के बाद हमने इन प्रेरणाओं को भुला दिया है। पाश्चात्य देशों में केवल ढाई-तीन सौ साल में हुई आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक उथल-

पुथल, जो अभी भी प्रयोगात्मक स्थिति में ही है। उनके विज्ञान व तकनीकी के द्रुत गतिमान विकास को सर्वोत्तम, सर्वांगीण व आधुनिक मानकर उसी सांचे में हजारों साल के अनुभव सिद्ध व विश्वमान्य संस्कृति के धनी भारत को ढालने में हम गत चालीस साल का काल बिता चुके हैं। नतीजा यह है कि स्वाधीन बना भारत सर्वथा तथाकथित विकसित देशों पर निर्भर है। हम अपनी सुरक्षा में भी आत्मनिर्भर नहीं हैं। हम लाखों इंजीनियर पैदा कर चुके हैं, किंतु हमें मोटर-कार को अधिक अच्छा बनाने के लिए भी विकसित देशों से 'नोहाऊ' व उनके विशेषज्ञों का आयात करना पड़ता है, चाहे वे सरकारी कारखाने हों या निजी। कर्ज लेकर तथा नित नई मुद्राएं छाप-छापकर हमने इतना धन बाजार में भर दिया कि निरंतर महंगाई बढ़ती जा रही है। अतः साधारण नागरिक कराह रहा है। उनके नन्हे बच्चे कुपोषण से ग्रसित हैं। उनकी दशा देखी नहीं जा सकती।

इस घोर चिंताजनक दारुण दशा के लिए किसी एक व्यक्ति को (नेता को), किसी एक दल को, किसी एक संस्था को या वर्ग को जिम्मेदार मानना गलत होगा। हम सबके होते हुए अपना देश व समाज इस हालत में पहुंचा है। वर्तमान स्थिति के लिए हममें से प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को जिम्मेदार न मानकर दूसरों पर दोष मढ़ता रहेगा तो इस देश को और समाज का भविष्य कदापि न बनेगा। हर बात के लिए दूसरों पर दोष मढ़ना—उस दोष को दूर करने के लिए स्वयं कुछ न करना—अपने समाज का महारोग है। यह रोग नया नहीं, बहुत पुराना है। संत तुलसी अपने युग में भी इसी रोग के कारण बहुत चितिंत थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था—'पर उपदेश कुशल बहुतेरे', किंतु वह रोग बढ़ता ही जा रहा है। आज तो हालत यहां तक पहुंच गई है कि उपदेश देना ही सबका स्वभाव बन गया है। समाज में सुस्थिति का निर्माण करने में यह सबसे बड़ी बाधा है।

आवश्यकता है हमें अपने देश के हर निवासी से जुड़ने की, विशेषतः गरीब, अशिक्षित, पीड़ित व उपेक्षितों से जुड़ने की। वे समाज में अलग-थलग पड़ गए हैं। जरूरत है, उन्हें अपने बलबूते पर खड़ा करने की। उनमें आत्मविश्वास व आत्मसम्मान लगाने की। वे गंदे दिखते होंगे, उनके कपड़े भी अस्वच्छ व फटे पुराने होंगे, भाषा परिष्कृत नहीं होगी, उनकी आदतें भी गड़बड़ होंगी, किंतु वे दिल के बुरे नहीं हैं। उनके जैसा प्रामाणिक मित्र मिलना कठिन है। उनमें कर्तृत्व छिपा पड़ा है। वे बहुत बड़ी शक्ति बन सकते हैं। उसकी उपेक्षा हो रही है। वे बड़े श्रद्धालु हैं। अनेक लोग उनका अपने स्वार्थ-साधन के लिए लाभ उठाते हैं। ये शहरों में भी काफी संख्या में हैं। गांव तो इन्हीं से भरे पड़े हैं।

इन सबसे मिलने का, इनमें घुल-मिल जाने का माध्यम कठिन नहीं है। ये सब बड़े भावुक हैं। भक्तिभाव से ओतप्रोत हैं। उनकी रूढ़ियों को आप न मानें, किंतु उनकी भक्तिभावना को चोट न पहुंचने दें। इसका सर्वाधिक ध्यान रखना जरूरी है। अगर उन्हें अनुभव हुआ कि हमारे मन में इनके लिए अपनत्व की भावना है तो वे पूर्णरूप से हमारे हैं। हजारों साल पहले राम को इनका जो अनुभव हुआ था, वह ही अनुभव हम भी पा सकते हैं। उन्हें उचित दिशा-स्नेह व सहारा दिया तो वे कम समय में अच्छे परिणाम दिखा सकते हैं।

आप राम से लेकर आज तक हुए युग–प्रवर्तकों को देखें। वे ही लोग उनकी शक्ति के रूप में रहे हैं। आज भी वही क्षमता उनमें है। समाज की नवरचना के काम में उनका सहयोग लिया गया तो लक्ष्य सिद्धि में अधिक विलंब नहीं होगा।

देश भर में आप कहीं का मेला देखें, तीर्थ–स्थान देखें, मंदिर देखें या विशेष पर्व पर नदी का दृश्य देखें—मानवों का समुद्र उमड़ा हुआ मिलेगा। महिला–पुरुष, बच्चे, बूढ़े सभी समान रूप में उत्साह से स्नान व दर्शन करने में तल्लीन दिखाई देंगे। इनमें कौन किस जाति का या बिरादरी का है, इसका किसी के मन में प्रश्न उपस्थित नहीं होता। उनमें सहज में ही अभिन्नता का सुखद दर्शन होता है। यहां आने के लिए उन्हें किसी से निमंत्रण नहीं मिलता। दिन और समय की इन्हें कोई सूचना नहीं देता। अपनी गांठ के पैसे खर्च कर स्वप्रेरणा से वे पहुंचते हैं। प्रवास में अनेक प्रकार की असुविधाएं उनके लिए बाधक नहीं बनतीं। जहां पहुंचते हैं, वहां बाल–बच्चों सहित रहने के लिए स्थान की चिंता उन्हें नहीं सताती। खाने–पीने की या शिशुओं के लिए दूध के प्रबंध की भी उन्हें परवाह नहीं रहती। सरकारी कुप्रबंध के कारण कभी–कभी सैकड़ों की तादाद में मौतें होती हैं, किंतु उस कारण दूसरे साल मेले में यात्रियों की संख्या में कमी नहीं होती।

हजारों सालों से यह सिलसिला चलता चला आ रहा है और समान उत्साह से अबाध रूप से चलता ही रहेगा। इसमें संदेह नहीं। इन करोड़ों लोगों की असीम व अटूट भक्ति भावना को आधुनिक सुधारवादी चाहे जो कहें, उसका इन पर न कभी परिणाम हुआ है, न होगा। संसार में अन्यत्र कहीं इसके समान अन्य कोई कार्य नहीं दिखाई देता, जिसने असंख्य मानवों को स्वयं स्फूर्ति से इतने लंबे काल तक समान उत्साह के साथ आकर्षित कर रहा हो।

जो स्थान भक्ति के केंद्र हैं, वहां के अनेक पंडे व पुजारी इन भक्तों की श्रद्धा का अनुचित लाभ उठाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते आ रहे हैं। इतना ही नहीं, इन पंडों व पुजारियों का स्वार्थ इच्छित मात्रा में पूर्ण न हुआ तो वे घृणित हथकंडे तक काम में लाते हैं। इसके बावजूद इन तीर्थस्थानों के प्रति करोड़ों लोगों के अंतःकरण की अविचल श्रद्धा डगमगाई नहीं। यह कम आश्चर्य की बात नहीं है।

भारत के पास यह अद्वितीय धरोहर है। मानवशक्ति का महानतम स्थायी भंडार है। पावन अंतःकरणों का अखंड प्रवाह है। भक्ति के अनेक ठेकेदारों ने अपनी कमाई के लिए लालच भरे स्तोत्र, पोथियां व कथाएं रची होंगी। अनेकानेक मनौतियों के रूप खड़े किए होंगे। करोड़ों अंतःकरणों में विराजमान भक्ति को व्यापार में परिणत करने के स्वार्थवश अनुचित प्रयास किए होंगे, किंतु भक्तिभाव का स्रोत ये हथकंडे नहीं हैं, अन्यथा भक्ति के अखंड प्रवाह का यह रूप टिक नहीं पाता।

विशुद्ध भक्ति की इस सनातन एवं चिरंतन शक्ति को आधार बनाए बिना न समाज की युगानुकूल नवरचना संभव है, न ही देश का शासन व प्रशासन सुधरना। इसी भावना से मानव मानवीयता से परिपूर्ण हो सकता है, नैतिकता और सदाचार से संपन्न हो सकता है और यही मानव समाज के उन्नत जीवन की प्राथमिकता है।

विराट् पुरुष

परिवार के अंग के रूप में रहना स्वीकार करते ही व्यक्ति को स्वयं अपनी वासनाओं पर, अपनी आवश्यकताओं पर व अपनी वृत्ति पर संयम करना अनिवार्य होता है। अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं को स्वयं घटाना पड़ता है, अन्यथा परिवार चल नहीं सकता। उसी प्रकार व्यक्ति व परिवार को समाज का अंग बनकर रहना है तो उन्हें समाज के अस्तित्व के लिए—अन्य सबकी आवश्यकताएं पूर्ण हो पाएं, इसलिए अपनी आवश्यकताओं को घटाना अनिवार्य है, अन्यथा समाज के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। कोई समृद्धि के शिखर पर चढ़ता है, तो कोई भूखों मरता है। कुछ के पास एक से एक बढ़िया अनेक कोठियां हैं तो अनेक फुटपाथों पर जिंदगी काट रहे हैं। यह है अपने समाज का रूप। अपनी जरूरतों को घटाकर समाज के सभी घटकों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने का भाव समाज के पढ़े-लिखे व बुद्धिमान माने जानेवालों में भी देखने को नहीं मिलता। समाज की सुस्थिति के लिए यह अनिवार्य स्वभाव वर्तमान आधुनिकता के पीछे पड़ने से या विद्वान् व तकनीकी के आधुनिकतम उपकरण आयात करने से निर्माण नहीं होता। गत चालीस साल के अनुभवों का यह निष्कर्ष है। अतः इसे अन्य धरातल पर ही संभव करना होगा।

व्यक्ति, परिवार, व्यवसाय व समाज को परस्परपूरक बनाना समाज की प्राथमिकता आवश्यकता है। उसके बिना समाज में सुस्थिति निर्माण करना तो दूर, उसका अस्तित्व बनाए रखना भी कठिन है। विज्ञान व तकनीकी से समृद्ध तथा विकसित कहे जानेवाले देशों में प्रचलित समाज-रचना हमारी आवश्यकता पूर्ण करने में असमर्थ है। समाजवाद के नाम पर संगठित कर्मचारी अपनी आय बढ़ाने के लिए चाहे जितने आंदोलन चलाकर अपनी आर्थिक स्थिति अधिकाधिक सुधार लेते हों, किंतु क्या कभी वे असंगठित देशव्यापी असंख्य मजदूरों की दयनीय दशा दूर करने के लिए अपनी संगठित शक्ति का उपयोग करते हैं? इन विचारधाराओं की नींव मानव मात्र के प्रति संवेदनशीलता पर आधारित नहीं है। व्यक्ति, परिवार, व्यवसाय व समाज ये चार मानव जीवन की चिरस्थायी इकाइयां हैं। मानव मात्र को सुखानंद का जीवन प्राप्त करा देना है तो इन चार इकाइयों में परस्परपूरकता का निर्माण करना अनिवार्य है। आजकल विकसित माने जानेवाले देशों में इस अनिवार्यता की पूर्ति भारत को स्वयं ही करनी होगी। यह स्वातंत्र्य संग्रामकालीन नेतृत्व भलीभांति जानता था। वे इसकी महत्ता भी समझते थे। वे जानते थे कि किसी भी समाज के चिरंतनत्व के लिए यह अनिवार्य है।

यह कार्य संपन्न करने के लिए भारत की आम जनता को सहयोगी बनाना आवश्यक है। आज भी अपने समाज के साधारण वर्ग में, जो 85 प्रतिशत से अधिक है, शहरों में कठिन जीवन-यापन कर रहा है तथा अधिकांश ग्रामों में रह रहा है, नैतिकता अधिक मात्रा में अनुभव करने को मिलती है। वह भक्तिभाव का धनी है। उसका उपर्युक्त कार्य में आवश्यक योगदान पाना तुलनात्मक दृष्टि से सुगम है। उनके अंतःकरण की भक्ति का इस कार्य में बहुत उपयोग हो सकता है। कारण, उनके हृदय की संवेदनशीलता अभी भी जीवंत है। वे दूसरों की पीड़ा से सहज में ही द्रवित होते हैं।

उनमें भक्तों की परंपरागत मालिका के प्रति अटूट श्रद्धा है। भक्त शिरोमणि हनुमान कितने

स्वार्थरहित रहे, यह जानते हैं। मोतियों की माला भी अपनी लक्ष्य सिद्धि में उपयोगी नहीं है, तो हनुमान उसे त्याज्य मानते थे। इससे वे प्रेरणा लेते हैं। तदनुसार बनने की आकांक्षा उनमें सहज में ही जाग्रत् की जा सकती है। संत एकनाथ ने प्रयाग से लाए त्रिवेणी जल को रामेश्वर पर चढ़ाने के बजाय एक प्राणी का जीवन बचाने में उसका उपयोग किया। भक्ति का यह रूप उनकी समझ में आ सकता है। बिना वाचालता के अपना, अपने परिवार का व अपने व्यवसाय का हित साधन करने में समाज या समाज के किसी घटक को आघात न पहुंचे, यह बात वे अपने आचरण में लाने में अधिक कठिनाई नहीं अनुभव करेंगे। कारण, वे संवेदनशील हैं, भक्तिभाव से परिपूर्ण हैं।

समाज के इस अधिकांश वर्ग का भारतीय जीवन-मूल्यों को रोज के जीवन में उतारकर व्यावहारिक रूप देने में उपयोग हो सकता है। जयप्रभग्राम में निर्माणाधीन भक्तिधाम इस प्रयोग के केंद्र के रूप में काम करेगा। गोंडा जिले की अट्ठाईस लाख से अधिक आबादी इस प्रयोगशाला का अंग बनेगी। इस प्रयोगशाला के कार्यक्रमों का संचालन जिले के निवासी ही करेंगे। भक्ति की अनेकविध शक्तियों में विश्वास रखनेवाले अनुभव सिद्ध महानुभावों का इसमें योगदान लेने का प्रयास होगा। अभी तक जिले के हजारों लोगों ने इसके निर्माण में योगदान दिया है। इस कार्य के लिए जिले की आम जनता में भरपूर उत्साह है। प्रभुकृपा से अपेक्षित लक्ष्य की सिद्धि होगी, दीनदयाल शोध संस्थान के कार्य में संलग्न महिला-पुरुष कार्यकर्ताओं का ऐसा विश्वास है।

□

हिंदू समाज सौभाग्यशाली है

समाज की अवस्था, स्थायित्व एवं भवितव्य निर्भर करता है उसके जीवन-दर्शन पर। इस दृष्टि से अपना हिंदू समाज सौभाग्यशाली है। हमारे पुरातन पूर्वजों ने अपने गहन चिंतन एवं अनुभवों के आधार पर सर्वग्राही, सर्वस्पर्शी, सर्वश्रेष्ठ जीवन-दर्शन की धरोहर हमें सौंपी हुई है। आज के विस्मयकारी वैज्ञानिक युग की हर कसौटी पर भी हिंदू जीवन दर्शन खरा उतर रहा है।

'सर्वेपि सुखिनः सन्तु। सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु। मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत।।' इससे अधिक उच्च मानव जीवन दर्शन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' जैसे समान व्यक्ति विकास का पाठ संसार का अन्य कोई दर्शन न दे सका। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसी मानव हृदय के व्यापकता की अनुभूति अन्यत्र कहीं नहीं हुई है। 'चराचर में भगवान्' जैसे हर वस्तु में मांगल्य देखने की पावन प्रेरणा अन्य किसी समाज में विकसित न हो पाई।

किंतु इस अद्वितीय जीवन-दर्शन का धनी हिंदू समाज दयनीय दशा का शिकार क्यों बना हुआ है। इस असामान्य जीवन-दर्शन का अभिमान अपना ही समाज क्यों खो बैठा है? इस जीवन-दर्शन से प्रस्फुटित संस्कृति को मुट्ठी भर लोगों के जीवन विलास की जननी क्यों माना जा रहा है? हिंदू धर्म एवं समाज की सुरक्षा के लिए सर्वस्व का बलिदान करने की परंपरा निर्माण करनेवाला सिख समुदाय अपने पृथक् अस्तित्व की भावना का शिकार क्यों बन रहा है? जो जीवन-दर्शन मानव मात्र के कल्याण का प्रेरक है, वह हिंदुओं में एकात्म भावना प्रेरित करने में असफलता क्यों अनुभव कर रहा है। हर कसौटी पर खरा उतरनेवाला अपना यह जीवन-दर्शन अपने ही समाज बंधुओं के लिए अनाकर्षण का कारण क्यों बन रहा है?

उन प्रश्नों के मूल में बैठने पर स्पष्ट हो जाता है कि अपने हिंदू जीवन-दर्शन का समाज के दैनंदिन जीवन से दूर का भी संबंध नहीं रहा है। हमारा जीवन-दर्शन समाज के व्यवहार में प्रतिबिंबित नहीं होता। सही अर्थ में हम जन्मता हिंदू हैं, कर्मणा हिंदू नहीं रहे। हमारा जीवन-दर्शन कुछ ही लोगों के बुद्धि-विलास का विषय मात्र बनकर जी रहा है। वह प्रवचन का, परउपदेश

मंथन, अक्तूबर 1990

का तथा कुछ लोगों के लिए प्रतिष्ठा एवं धनार्जन का माध्यम बना हुआ है। इस दर्शन के अनुसार स्वयं का जीवन ढालकर सामान्य जन में तदनुसार आचरण की प्रेरणा जगानेवाले नेतृत्व का पूर्णरूप से लोप हो गया है।

'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना हमारे दैनंदिन जीवन का अभिन्न अंग होती तो अपने समाज में हीनता तथा दीनता की, अस्पृश्य एवं उपेक्षित की, गरीब एवं अशिक्षितों की भरमार देखने को नहीं मिलती। विषमता का ऐसा विभच्छ रथ अपने समाज में उपस्थित न होता। घर-घर में विद्वेष एवं कलह का वातावरण न फैलता। सहज में ही समाज के घटकों में परस्पर स्नेह, विश्वास, सहयोग की भावना देखने को मिलती। परिणामस्वरूप समाज में समृद्धि दृष्टिगोचर होती। हमसे कोई बिछुड़ता नहीं, हर मानव हमसे जुड़ता जाता। हम ही नहीं, हर मानव अपने को हिंदू कहने में गर्व अनुभव करता। कारण, हम कर्मणा हिंदू होते।

विचार करने पर सहज में ही निष्कर्ष निकलता है कि हमें ऐसी कार्यशैली का विकास करना होगा, जिससे हमारा सर्वांगपूर्ण जीवन-दर्शन व्यक्तिगत, पारिवारिक व्यावसायिक एवं सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग बन सके। अपने जीवन-दर्शन पर आधारित समाज का जीता-जागता नमूना खड़ा किया जा सके। हिंदू समाज का यह रथ खड़ा होता गया तो केवल अपना ही समाज सुख, शांति, समृद्ध एवं अध्यात्मिक जीवन से अनुप्राणित नहीं होगा अपितु मानव मात्र के लिए ऐसे सामाजिक जीवन का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा। यही हिंदुओं का परंपरागत दायित्व भी है।

उपर्युक्त लक्ष्यसिद्धि के लिए कार्यशैली एवं पद्धति का विचार करते समय हमें प्रचलित कार्यशैलियों के दायरे से निकलकर प्रयोग करने होंगे। स्वराज्य प्राप्ति के बाद की कार्यशैली वह नहीं हो सकती जो स्वराज्य प्राप्ति के लिए अपनाई गई थी, किंतु दुर्भाग्यवश यह अति महत्त्वपूर्ण बात उपेक्षित रह गई है। आज भी देश में संघर्ष, आंदोलन, प्रचार, भाषण, प्रदर्शन एवं घोषणाओं के चंगुल में ही सब कार्यशैलियां जकड़ी पड़ी हैं। व्यक्तिगत एवं सामूहिक संकल्प, सहयोग, पुनर्रचना, आचरण एवं अभिज्ञान के द्वारा पुनर्निर्माण का काल आजादी के पैंतीस साल बाद भी प्रारंभ होना शेष है।

आजादी के बाद समाज सत्ताभिमुखी भावना से ग्रस्त है। परिणामस्वरूप साधारण नागरिक विशेषतः युवजन देश के नवनिर्माण की भावना से शून्य होते जा रहे हैं। परिणामस्वरूप समाज में निराशा एवं हताशा का वातावरण अधिक गहरा हो रहा है।

हिंदू जीवन-दर्शन एवं संस्कृति की विशेषता रही है कि वह सत्ता को पूर्ण मान्यता देते हुए भी कभी सत्ताभिमुखी नहीं रही। अतः अपनी कार्यपद्धति के विकास में हमें इस पहलू के विकास का विशेष ध्यान रखना होगा।

अपना जीवन-दर्शन मानव की मूलभूत भावना संवेदनशीलता पर आधारित है। यह संवेदनशीलता ही 'सर्वेपि सुखिनः सन्तु' जैसे सर्वोच्च जीवन मूल्यों की जननी हैं। अतः अपनी कार्यशैली का आधार होगा मानव की जन्मजात भावना 'संवेदनशीलता'।

संघ के जन्मदाता स्व. परमपूज्य डॉक्टर साहब ने प्रारंभ से ही हमें प्रेरित किया है संपूर्ण हिंदू

समाज को अपना परिवार मानने के लिए। यह उसी दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम है, जो 'सर्वेपि सुखिनः सन्तु' का मार्ग प्रशस्त करता है। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का यह प्रथम पाठ है। संपूर्ण हिंदू समाज देश भर में फैला हुआ है। एक व्यक्ति अपने नित्य जीवन में संपूर्ण हिंदू समाज के साथ पारिवारिकता की अनुभूति नहीं कर सकता, किंतु वह जहां कहीं रहता है, उसके अड़ोस-पड़ोस में रहनेवाले हिंदू समाज को अपने परिवार के रथ में मानकर संपूर्ण हिंदू समाज से तादात्म्य प्राप्त करना संभव हो सकता है।

ध्येयवादी जीवन की जरूरतें

संगठन का कार्य नाजुक कार्य है, अहं पर पड़नेवाली चोट परेशान करती है, शंकाएं पनपने लगती हैं। व्यक्तिनिष्ठा से मुक्ति ही हिंदू जीवन-दर्शन है। पदाधिकारी व सदस्य, यह एक व्यवस्था है, इससे कोई छोटा-बड़ा नहीं होता। आज जो अहंपूर्ण वातावरण बना है, उसमें हमें जीना नहीं है।

प्रबंध समिति के लोगों को अपना जीवन ध्येयानुकूल बनाना होगा। क्षेत्र में अपने पूर्णकालिक समाज शिल्पी कार्यकर्ता, समाज शिल्पी परिवार व वानप्रस्थी कार्यकर्ता हैं, हमारा व्यवहार इन सब के ध्येयवाद को बढ़ानेवाला होना चाहिए। पारिवारिक अपेक्षाओं के बावजूद अपने कार्यकर्ताओं ने सब सामाजिक दायित्व स्वीकार किए हैं। अन्यों की धारणा का हमें ध्यान रखना होगा।

हर एक को अलग-अलग दायित्व बांटे गए हैं, दायित्व पूर्ति के लिए एकाग्रता आवश्यक है, खंडित व्यक्तित्व के लोग अन्यों को नहीं जुटा सकते। हम में ध्येय के प्रति समर्पण चाहिए अन्यथा हम सबके लिए अनुकरणीय नहीं बन पाएंगे। ध्येयवादी लोगों के चरित्र पढ़ने के लिए मैं बराबर आग्रह करता हूं। सब लोग हमें पैनी नजर से देखते हैं, हमारा ध्येयपूर्ण व्यक्तित्व ही वस्तुतः सबके काम का है।

□

राम का आदर्श जीवन में उतारिए

अपना देश तथा समाज सनातन अर्थात् चिरंतन है। अपने समाज के पुरातन मनीषियों ने अपने नश्वर शरीर को ही सर्वस्व नहीं माना था। अंतर्तम में विराजमान परमात्मा के अंश का अर्थात् आत्मा का उन्होंने साक्षात्कार किया था। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की अनुभूति की थी। 'सर्वभूत हितेरतः' को नित्य प्रति के आचरण में उतारा था। हम उन्हीं के वंशज हैं, किंतु वर्तमान काल में अपने प्रचलित जीवन में उपर्युक्त बातों की झलक तक देखने को नहीं मिलती।

इसके लिए किसी एक व्यक्ति या संगठन को दोष देने से भी समस्या का निराकरण नहीं होगा। बीती बातों को समझकर तथा उनका विश्लेषण कर ठीक राह अपनाना, यह आज की आवश्यकता है। दीनदयाल शोध संस्थान उसी दिशा में कार्यरत है।

राममार्ग का अनुसरण

प्रभु राम का अद्वितीय जीवनादर्श देश की वर्तमान अवस्था में हमारा मार्गदर्शन करने में पूर्ण रूप से समर्थ है। प्रभु राम ने अत्यंत विकट अवस्था में, निराशा से ग्रस्त वातावरण में भी जनशक्ति के आधार पर सभी समस्याओं का निराकरण कर दिखाया था। भयभीत लोगों में आत्मविश्वास एवं साहस जगाया था। उन्हें अद्वितीय पराक्रम के लिए प्रेरित किया था। साधनहीन लोगों में दानवीय शक्ति को परास्त करने की क्षमता निर्माण कर दिखाई थी।

अनुकरणीय शासन पद्धति

राज्य-प्राप्ति के बाद शासन किस प्रकार से चलाना चाहिए, इसका आदर्श भी प्रभु राम ने प्रस्तुत किया था। सत्ता अपने सुखोपभोग के लिए नहीं होती, इसका व्यावहारिक रूप प्रकट किया था। सत्ता स्वयं की सुरक्षा के लिए नहीं, देश एवं समाज की सुरक्षा के लिए ही होती है, नागरिकों को अविलंब न्याय सुलभ कराने के लिए तथा समाज में शांति एवं व्यवस्था निर्माण करने के लिए होती है, इसका अनुकरणीय रूप प्रस्तुत किया था। यही रामराज्य की विशेषता

चित्रकूट में रामदर्शन प्रकल्प की रूपरेखा। मई, 2000

थी। प्रभु राम के जीवन के इन प्रसंगों का सजीव दर्शन वर्तमान परिस्थिति में सबके लिए प्रेरक एवं मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

वनवास काल का चित्रकूट ही प्रभु राम का प्रथम पड़ाव था। जनशक्ति का प्रभावी एवं सफल रूप प्रकट करने के कार्य का शुभारंभ प्रभु राम ने यहीं से किया था, अतः इसी पुण्य भूमि में वर्तमान काल में आवश्यक प्रेरणा प्रदान करनेवाला 'राम दर्शन' प्रकल्प निर्माण करने का दीनदयाल शोध संस्थान ने संकल्प किया है।

चित्रकूट की महत्ता

चित्रकूट की नन्ही सी आबादी मां मंदाकिनी के सुरम्य तट पर विराजमान है। प्रभु राम की तपोभूमि होने के कारण यह विशेष लोकप्रिय तीर्थ बना है। नित्य प्रति सैकड़ों तीर्थ यात्री यहां आते हैं। प्रति माह अमावस्या के दिन एक डेढ़ लाख यात्री मां मंदाकिनी में स्नान एवं पावन कामदगिरि की परिक्रमा करने आते हैं। सोमवती अमावस्या को यात्रियों की संख्या दस लाख से अधिक हो जाती है। दीपावली के दिन मां मंदाकिनी के मंद प्रवाह में दीपदान पर्व मनाया जाता है। उसमें सम्मिलित होने के लिए बीस-पच्चीस लाख यात्री पहुंचते हैं। फलस्वरूप 'राम दर्शन' प्रकल्प के निर्माण के लिए चित्रकूट ही सर्वोपयुक्त स्थान है।

प्रकल्प का रूप

इस प्रकल्प के लिए गुफाओं के रूप में प्राकृतिक सौंदर्य से युक्त भवनों का निर्माण किया जाएगा। इसमें छोटे-छोटे मनोरम जल प्रपातों के दृश्य होंगे। बीच-बीच में फूल-पौधों से युक्त नन्ही-नन्ही वाटिकाएं होंगी। विभिन्न प्रेरणादायी मनोरम दृश्य देखते-देखते थके लोगों को इन वाटिकाओं में बैठने की व्यवस्था होगी।

'राम दर्शन' चार प्रकार की कलाकृतियों द्वारा सुसज्जित किया जाएगा। कला की विशेषता होगी उसकी सजीवता। दृश्यों के माध्यम होंगे—चित्रकला, रिलीफ वर्क, डायोरामा एवं श्रव्य-दृश्य रूप। प्रकाश एवं ध्वनि का सुमधुर एवं मनभावन संगम इस प्रकल्प का अनोखा रूप प्रकट करेगा।

यह प्रकल्प पढ़े या बेपढ़े, शहरी या देहाती, विद्यार्थी या शिक्षक, समाजसेवी या राजनेता, महिला या पुरुष, लेखक या विचारक, चित्रकार या कवि, व्यापारी या उद्योगपति, निवासी या प्रवासी—सभी के लिए समान रूप से रुचिपूर्ण, प्रेरक एवं आकर्षक होगा, इस प्रकल्प की यही विशेषता होगी।

।। जय श्री राम ।।

(रामदर्शन प्रकल्प)

☐

1

19 सितंबर, 1985

श्रद्धेय स्वामीजी,

वर्तमान राजनीति से स्वयं को पूर्णत: अलिप्त कर हिंदू जीवन-दर्शन के आधार पर सामाजिक पुनर्रचना के प्रयोगों में एकाग्र चित्त से संलग्न हूं। दीनदयाल शोध संस्थान ने नेपाल की सीमा पर स्थित अयोध्या से सटे हुए गोंडा जिले को प्रयोगशाला के रूप में अपनाया है। इस प्रयोग में संलग्न हुए अब सात साल हो रहे हैं। एक लाख से अधिक परिवार खुशहाली की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति कर पाए हैं, किंतु उनमें अपेक्षित नैतिकता एवं सदाचार की वृत्ति में वृद्धि नहीं हो पाई है।

यद्यपि सभी में भक्ति-भावना की कमी नहीं है, किंतु उनकी हृदय की भक्ति और दैनंदिन के व्यवहार में कोई तालमेल देखने को नहीं मिलता। अत: उनकी भक्ति-भावना का सदुपयोग करने की प्रेरणा हृदय में जाग्रत् हुई। परिणामस्वरूप 'भक्तिधाम' के नाम से अपने ग्रामोदय प्रकल्प के केंद्र जयप्रभाग्राम में एक मंदिर बनाने का संकल्प लिया है। उसका निर्माण-कार्य गत 11 जून को प्रारंभ हुआ है।

'भक्तिधाम' की अवधारणा एवं कार्यक्रमों को प्रारूप के रूप में लिपिबद्ध किया है। वह आपकी सेवा में प्रेषित कर रहा हूं। आपसे सविनय प्रार्थना है कि आप कुछ समय निकालकर मार्गदर्शन करने की कृपा करें। आपका गहन अध्ययन, मौलिक चिंतन एवं व्यापक अनुभव इस कार्य में विशेष लाभदायक सिद्ध होंगे। इसी विश्वास से आपको कष्ट देने का साहस कर रहा हूं। अपेक्षा है कि कष्ट के लिए क्षमा कर अपने मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद से अनुगृहीत करें।

2

11 मई, 1986

प्रिय श्री जोशीजी,

सर्व साधारण लोगों का आर्थिक विकास करना तथा उनके स्वास्थ्य एवं शिक्षा में वृद्धि करना ही पर्याप्त नहीं है। इन तीनों कामों के साथ-साथ उनमें सदाचार पनपाने की आवश्यकता है तथा सामाजिक दायित्व की अनुभूति कराकर उस दिशा में भी उन्हें गतिशील किए बिना अपने समाज की युगानुकूल नवरचना संभव नहीं है। इस प्रयोग के लिए मैंने सात साल पूर्व 'नेपाल' की

1 *स्वामी प्रभुदत्तजी (झूंसी, अलाहाबाद) से 'भक्तिधाम' के लिए मार्गदर्शन का आग्रह। यह पत्र स्वामी ब्रह्मचारीजी, (गोरेगांव), स्वामी विश्वेश्वरजी (पेजावर मठ, उडीपी) एवं स्वामी सत्य मित्रानंदजी गिरी (समन्वय कुटीर, हरिद्वार) को भी भेजा गया।*

2 *भक्तिधाम के साथ जन-जन को जोड़ने का आग्रह। सी.जी. जोशी बॉम्बे हॉस्पिटल के जनरल मैनेजर रहे हैं।*

सीमा पर राम की अयोध्या से सटा हुआ गोंडा जिला प्रयोगशाला के रूप में अपनाया है।

आप जानते हैं, अपने देश में अनंत काल से भक्ति की अखंड परंपरा विद्यमान है। पाश्चात्य सभ्यता के प्रवाह में अनेक बातें बह चली हैं, किंतु भक्ति की शक्ति अभी भी अविचल है। नई-पीढ़ी में भी भक्ति की भावना अनुभव करने को मिलती है। आप बंबई में ही देखते होंगे कि सिद्धि विनायक के दर्शन के लिए कतार में खड़े हुए आधुनिक युवक-युवतियों की संख्या कम नहीं रहती, किंतु भक्ति की इस महान् शक्ति का उपयोग व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन में सदाचार लाने की दृष्टि से नहीं हो रहा है, न इसका उपयोग राष्ट्र के नवनिर्माण में करने की दिशा में ही कोई प्रयास हो रहा है। मुझे कुछ काल से अनुभव हो रहा है कि इस भक्ति की शक्ति का उपयोग जीवन में सदाचार एवं सामाजिक नवरचना के लिए करना संभव है। तदनुसार में प्रयास में लगा हूं।

उपर्युक्त कार्य को क्रियान्वित करने के लिए माध्यम के रूप में जयप्रभाग्राम, गोंडा जिला के ग्रामोदय केंद्र में 'भक्तिधाम' के नाम से एक मंदिर बनवा रहा हूं।

'भक्तिधाम' के इस प्रकल्प में मैं आपका सक्रिय सहयोग चाहता हूं। आप महालक्ष्मी टेंपल के ट्रस्टी भी हैं। महालक्ष्मी टेंपल एक पुराना एवं संपन्न भक्ति स्थान है। जयप्रभाग्राम के भक्तिधाम में महालक्ष्मी टेंपल का आर्थिक योगदान कराने की कृपा आप कर सकते हैं। बंबई अस्पताल में देश भर से धनाढ्य मरीज आते हैं। अपने स्वास्थ्य के लिए हजारों रुपया खर्च करते हैं। यदि उन्हें 'भक्तिधाम' में कुछ दान कर पुण्य-कार्य की प्रेरणा दी गई तो वे अपनी शक्तिनुसार इसमें कम-अधिक योगदान कर सकते हैं।

पत्र काफी लंबा हो रहा है। पत्र पढ़ने के लिए भी मैं आपका काफी समय ले रहा हूं, किंतु मैं विवश हूं। आपके प्रति मन में जो भावना है, उसी कारण आपको यह कष्ट देने का साहस कर रहा हूं।

3

29 मार्च, 1987

प्रिय श्री जी.पी. बाबू,

एक विशेष कारणवश यह पत्र लिख रहा हूं।

आपने तथा आपके परिवार ने देश भर में बहुत अच्छे-अच्छे एवं विशाल मंदिर बनवाए हैं। यह एक बहुत बड़ी एवं एक परिवार द्वारा की गई इतनी व्यापक धार्मिक सेवा संभवतः अन्य किसी परिवार ने नहीं की है।

भौतिकता प्रधान इस युग में भी अपने देश में भक्ति की असीम शक्ति कायम है, किंतु इस शक्ति का उपयोग सामाजिक पुनर्रचना के या राष्ट्र नवनिर्माण के कार्य में नहीं किया जा रहा है।

इस अपार शक्ति का उपयोग केवल व्यक्तिगत समाधान व सुख शांति तक ही सीमित है।

3 *भक्ति की शक्ति के माध्यम से सामाजिक पुनर्रचना के प्रयोग का चिंतन करनेवाला जी.पी. बिरला को पत्र।*

इसी भक्ति की शक्ति को पहचानकर लोकमान्य तिलक व महात्मा गांधी ने स्वराज्य-प्राप्ति के काल में इसका भरपूर उपयोग किया था। उसका स्वातंत्र्य-प्राप्ति में व्यापक पैमाने पर पल प्राप्त हुआ था, किंतु स्वराज्य प्राप्ति के बाद भक्ति की शक्ति पूर्णतः उपेक्षित पड़ी है। मैं अनुभव कर रहा हूं कि इस अपार शक्ति के उपयोग के बिना न अपने जीवन-मूल्यों के आधार पर समयानुकूल सामाजिक पुनर्रचना हो पाएगी, न राष्ट्र में शांति और व्यवस्था ही कायम हो सकेगी।

इस परंपरागत अखंड शक्ति का सामाजिक व आर्थिक पुनर्रचना के काम में उपयोग करने का मैं उत्तर प्रदेश के गोंडा जिले में एक प्रयोग कर रहा हूं। दीनदयाल शोध संस्थान के द्वारा 'भक्तिधाम' नाम से एक मंदिर बनवा रहा हूं। ईश्वर कृपा से इस दिशा में मुझे बड़ी सफलता प्राप्त होती जा रही है।

गोंडा जिला बहुत पिछड़ा हुआ है। गांव-गांव में भीषण गरीबी फैली हुई है। अशिक्षा भी उतनी ही व्यापक है। इसके बावजूद भक्ति की भावना बड़ी प्रखर है। अभी तक जिले के तेईस हजार परिवारों ने इस भक्तिधाम निर्माण में दस पैसे से लेकर इक्यावन रुपयों तक का धन प्रदान किया है। इसके अतिरिक्त इस मंदिर निर्माण में इन परिवारों के महिला-पुरुष अपने परिश्रम का योगदान भी कर रहे हैं।

इतना ही नहीं, वे सामूहिक रूप से शराब न पीने का स्वयं होकर निश्चय करते जा रहे हैं। हर परिवार यह तय करता जा रहा है कि हमारे परिवार में कोई निरक्षर नहीं रह पाएगा। बूढ़ा और बुढ़िया भी कम-से-कम अपने भगवान का नाम लिखना सीखने लगे हैं। थोड़े-बहुत पढ़े-लिखे जवान सबको लिखना-पढ़ना सिखाने का काम उत्साह से कर रहे हैं। वे इस बात को महसूस कर रहे हैं कि इसके बिना उन्हें रामायण पढ़ना संभव नहीं होगा। इस वातावरण की परिणति नैतिकता का वातावरण फैलाने में भी होगी। मंदिरों को इन सब बातों का प्रेरणा-केंद्र बनाया गया तो वे सब बातें लोगों के व्यवहारों में प्रतिबिंबित होना कठिन नहीं है।

4

19 सितंबर, 1991

प्रिय श्री महेशजी,

आगामी ग्यारह अक्तूबर को (इस दिन 1916 में शरद पूर्णिमा थी) मैं अपने जीवन के पचहत्तर वर्ष पूर्ण कर रहा हूं। मैंने अपने लिए कुछ मान्यताएं अपना रखी हैं। उनके प्रतिकूल अपने से आचरण न हो, इसका मैं सतत प्रयास करता आ रहा हूं। मेरे जीते जी और देहावसान

4 *अपने जीवन के 75 वर्ष पूरे करने पर नानाजी ने संस्थान के सचिव डा. महेश चंद्र शर्मा को पत्र लिखकर स्पष्ट निर्देश दिया कि उनकी स्मृति को बनाए रखने का प्रयास तक न हो क्योंकि उनके कार्य अधूरे रह गए थे। और अधूरे जीवन की स्मृति का कोई अर्थ नहीं है। आध्यात्मिक पक्ष को नानाजी सामाजिक, राजनीतिक अथवा आर्थिक पक्ष से अलग नहीं मानते थे।*

के बाद भी मेरे साथी मुझे निमित्त बनाकर मेरी मान्यताओं के विपरीत कुछ न करें, यह मेरी सबसे अपेक्षा है। इसी मंतव्य से मैं आपको यह पत्र लिख रहा हूं।

प्रचलित प्रथा के कारण सार्वजनिक, सामुदायिक या पारिवारिक रूप से मेरा यह जन्म-दिन मनाने की बात किसी के मस्तिष्क में आ सकती है। ऐसा करना मेरी मान्यता के सर्वथा विपरीत है। यदि किसी ने ऐसा प्रयास किया तो मैं ऐसे किसी भी कार्यक्रम में सम्मिलित न हो सकूंगा।

यह विषय तर्क का नहीं, व्यक्तिगत मान्यता का है। मैं आस्तिक अवश्य हूं किंतु पूजा-अर्चना का अभ्यस्त नहीं। तथापि रोज प्रातः जगते ही और रात में सोते समय ईश्वर से एक ही प्रार्थना करता आया हूं कि वह मेरे मन में कभी भी स्वयं के लिए कुछ पाने की या बनने की इच्छा अंकुरित न होने दे। यह क्रम 1960 से अखंड रूप से चलता चला आ रहा है तथा ईश्वर ने मेरा साथ दिया है, अतः मेरा सभी साथियों से सविनय अनुरोध है कि वे मेरे जीते जी और मरणोपरांत भी मेरी उपर्युक्त भावना की अवहेलना न करें।

मेरा देहावसान जहां कहीं हो, वहां ही मेरे शव का दाह-संस्कार किया जाए। भारत मां का हर एक अंग मेरे लिए समान रूप से प्यारा व पूजनीय है। दाह-संस्कार से अधिक अच्छा होगा, मेरा मृत शरीर मेडिकल कॉलेज के विद्यार्थियों को सौंपना, जिससे वे मानव शरीर रचना का सूक्ष्मतम अध्ययन कर सकें।

मेरे देहावसान के बाद किसी भी रूप में मेरी स्मृति बनाए रखने का प्रयास तक न हो। ऐसा करना मेरी मान्यता के प्रतिकूल होगा। वैसे भी मैं अपने जीवन में जो कुछ समाज-कार्य करना चाहता था, उसका शतांश भी न कर पाया, न कर पाऊंगा। ऐसे अधूरे जीवन की स्मृति कोई अर्थ नहीं रखती।

जो महापुरुष स्मृति योग्य रहे और जिनकी स्मृति को स्थूल रूप प्रदान किया गया, उन स्मृति-चिह्नों से किसी ने ठीक प्रेरणा ली, ऐसा दिखाई नहीं देता। मेरी धारणा के अनुसार मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जीवन अर्थात् उनके जीवन में प्रगट हुए सभी सद्‌गुण हर युग में सभी मानवों के लिए समान रूप से अनुकरणीय हैं, किंतु वे कितने लोगों के व्यवहार में प्रगट हो रहे हैं?

उन्हें भगवान् का अवतार मानकर उनकी पूजा होती है। उनके जीवन के विभिन्न प्रसंगों के आधार पर हजारों सालों से प्रतिवर्ष अखंड रूप से रामलीलाओं के समारोह होते हैं। किसी की भी शवयात्रा में 'राम नाम सत्य है' की धुन का उच्च स्वर में घोष होता आ रहा है, किंतु उनके मार्गदर्शन का या गुणों का जीवन में अवलंबन करने की चिंता इने-गिने लोगों ने ही की होगी।

अयोध्या में रामजन्म स्थान पर प्रभु राम की मूर्ति विराजमान है। वहां नियमित रूप से पूजन आदि कार्य बिना रोक-टोक होता आ रहा है। व्यावहारिक रूप से वह राम-मंदिर ही है। वहां भव्य मंदिर बनाने की योजना लेकर सरकार पर दबाव डालने के लिए देशव्यापी आंदोलन छेड़ा गया है। इतिहास के पन्ने पलटे जा रहे हैं। हिंदू-मुसलमानों में विद्वेष बढ़ता जा रहा है। इस लक्ष्य-सिद्धि के लिए अनुकूल सरकारें बनाने का काम किया जा रहा है। इन उपायों से वहां नया मंदिर कब बनेगा, कहना कठिन है।

वस्तुतः प्रभु राम के मंदिर के निर्माण का और सरकार का नाता-रिश्ता क्या है? राम का जीवन कभी भी सत्ताभिमुखी नहीं रहा। फिर भी राम की स्मृति उनके अनुयायी कहलानेवालों को सत्ताभिमुखी होने से बचा नहीं पा रही है। वे जीवन की हर समस्या का निराकरण या

आवश्यकताओं की पूर्ति सत्ता के माध्यम से करने के अतिरिक्त उपायों को अपनाने की मन:स्थिति में नहीं हैं। इसके बावजूद वे स्वयं को राम के अनुयायी कहलवाना चाहते हैं।

प्रभु राम ने अपने आचरण से दिखा दिया था कि हर समस्या का निराकरण एवं आवश्यकता की पूर्ति जन-शक्ति के द्वारा ही स्थायी रूप से संभव है। उन्होंने प्रतिकूल स्वभाव के, विपरीत परंपरा के तथा भिन्न संस्कारों में पले व बढ़े लोगों को मानव मानकर एक साथ जोड़ने का कार्य कर सफलताएं अर्जित की थीं। यदि सत्ता में कौन है, इसकी चिंता किए बिना जन्मभूमि-विवाद से संबंधित सभी लोगों से संपर्क किया गया होता। परस्पर भावनाओं की एक-दूसरे को अनुभूति कराई गई होती, इसी में व्यापक स्तर पर शक्ति व समय लगाया गया होता तो कभी का मंदिर बन गया होता तथा समाज में परस्पर ही भावनाओं का आदर बढ़ता, स्नेह और विश्वास पनपता और इस कार्य में संलग्न सभी लोग राम के सही अर्थ में अनुयायी सिद्ध होते। राम की स्मृति सफल सिद्ध होती। यदि राम की स्मृति ही हमें ठीक राह पर चलने में सक्षम नहीं है तो मेरे जैसे निरर्थक व्यक्ति की स्मृति का विचार करना हास्यास्पद होगा।

किसी की स्मृति कायम रखने की किसी की इच्छा हो तो वह उनके अधूरे काम को पूर्ण करने में जुटे तथा अपनी संतान भी उसी कार्य में संलग्न हो, ऐसे अपनी संतान में संस्कार डालें। कारण, अपनी लक्ष्य-सिद्धि में कुछ पीढ़ियां खपानी होंगी।

मेरे नाम से बैंक में या प्रिय श्रीकांत के पास अलमारी में कुछ पैसे होंगे। वे मेरे अपने नहीं हैं। मेरे परम मित्र श्री आर. वी. पंडित नहीं चाहते कि मैं अपने व्यक्तिगत जीवन पर संस्थान के काम के लिए एकत्रित धन खर्च करूं, अत: वे अपनी कमाई में से मेरे व्यक्तिगत खर्चों के लिए धन देते आ रहे हैं। जो कुछ भी धन होगा, वह उसी धनराशि में से बचा हुआ धन है। उसे वे वापस नहीं लेंगे, अत: वह धन दीनदयाल शोध संस्थान के हिसाब में जमा किया जाना चाहिए।

स्व. पंडित दीनदयालजी की जयंती का दिन निकट आ रहा है। मैंने आप सबसे स्पष्ट शब्दों में सूचित किया है कि 1992 की 25 सितंबर तक दीनदयाल शोध संस्थान के अध्यक्ष पद के लिए किसी अन्य व्यक्ति का चयन कर लें। कारण, मैं अपने जीवन के 76 साल पूर्ण करने के बाद अध्यक्ष पद पर बना नहीं रहूंगा। इस बात को ध्यान में रखकर आवश्यक व्यवस्था करने के लिए आपके पास पर्याप्त समय है। 12 अक्तूबर, 1992 से मैं शोध संस्थान का एक साधारण कार्यकर्ता मात्र बना रहूंगा।

5

07 मई, 1992

माननीय मुख्यमंत्री महोदय,
प्रिय श्री कल्याण सिंहजी,

चित्रकूट एक ऐसा तीर्थ है, जो मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश के प्रशासन के अंतर्गत आता है, अत: इस तीर्थस्थान का विकास तभी संभव है जब दोनों प्रदेशों के मुख्यमंत्री मिलकर इस तीर्थ-

स्थान के विकास की परस्परपूरक एवं एकात्म योजना बनाकर उसे कार्यान्वित करने का प्रयास करें। प्रभु राम की कृपा से दानों प्रदेशों के मुख्यमंत्री ऐसे बने हैं, जिनकी प्रभु राम के प्रति अनन्य श्रद्धा है तथा एक ही ध्येय के पथिक हैं।

इसी कारण मैंने आपको तथा प्रिय श्री सुंदरलालजी को 10 मई को यहां आने के लिए अनुरोध किया है। ग्रामोदय मेले के उद्‌घाटन की औपचारिकता तो केवल एक माध्यम बनाया है। चित्रकूट में रोज सैकड़ों तथा प्रति अमावस्था के दिन लाख, डेढ़ लाख यात्री नियमित रूप से आते हैं। यात्रियों में गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार, आंध्र एवं महाराष्ट्र के निवासी होते हैं। दीपावली के त्योहार के दिन तो लोग अपने घर पर त्योहार न मनाकर यहां पंद्रह-बीस लाख की संख्या में दीपदान के लिए पहुंचते हैं।

उनके श्रद्धा के बिंदु दो हैं। एक है—मंदाकिनी गंगा में स्नान करना तथा दूसरा-कामदगिरि, जहां वनवास काल में प्रभु राम टिके थे तथा भरत ने इसी स्थान पर आकर प्रभु को अयोध्या लौट चलने का आग्रह किया था, की परिक्रमा करना। इन दोनों श्रद्धा-केंद्रों की हालत दयनीय है।

मंदाकिनी नदी के जल में सतत प्रदूषण बढ़ रहा है। प्रशासकों को इसकी कोई चिंता नहीं है। कारण, शासकों को इन कार्यों के लिए अवकाश नहीं मिल पाता, अतः लाखों लोगों के श्रद्धा-केंद्रों की पवित्रता बनाए रखने का कार्य पूर्णतः उपेक्षित है। प्रदूषित होने के बाद गंगा को शुद्ध करने पर अरबों रुपया व्यय किया जा रहा है, किंतु उसे शुद्ध करना कितना संभव होगा, यह कहना कठिन है। मंदाकिनी की स्थिति उतनी बिगड़ी हुई नहीं है। इस कारण समय से उचित एवं कारगर कदम उठाए गए तो इस पावन नदी के जल को पवित्र बनाए रखना संभव है।

अतः आप दोनों मुख्यमंत्रियों को नाव द्वारा इस नदी में एक-डेढ़ किलोमीटर घुमाकर वस्तुस्थिति के निरीक्षण का कार्यक्रम रखा है।

कामदगिरि परिक्रमा करना तो बहुत समय का कार्य है। उस विषय में आप दोनों से चर्चा करना ही पर्याप्त माना है।

यात्रियों के आवागमन की परेशानी का भी एक विषय है। दोनों प्रदेशों की सीमाएं यहां मिलती हैं। चित्रकूट तीर्थस्थल का कुछ भाग उत्तर प्रदेश में तथा कुछ भाग मध्य प्रदेश में है। हर एक प्रशासन ने जगह-जगह पर अपने-अपने बैरियर्स लगा रखे हैं, जो यात्रियों के आवागमन में अत्यधिक परेशानी पैदा करते हैं। वस्तुतः यहां अंतरराज्यीय बस अड्‌डा बनाकर इस समस्या का निराकरण सहज संभव है, अतः दोनों मुख्यमंत्री मिलकर यह निर्णय तत्काल ले सकते हैं। चित्रकूट की दृष्टि से तो दोनों सरकारों ने इससे भी बहुत अधिक सोचा हुआ था, किंतु प्रशासन की ऐसी प्रक्रिया है कि अच्छी बातों का कार्यान्वयन कम ही होता है। उस विचार का एक डॉक्यूमेंट आपकी सरकार के दफ्तर के साथ में संलग्न है। उसे पढ़कर आपको उसकी जानकारी हो सकेगी।

5 *चित्रकूट तीर्थस्थान में विकास के लिए आग्रह।*

उपर्युक्त बातों के लिए आप दोनों का यहां साथ-साथ आना व कुछ काल रहना इस तीर्थ की दृष्टि से बहुत ही लाभदायी सिद्ध होगा।

6

08 फरवरी, 1995

माननीय श्री राजाभाऊजी,

यह पत्र लिखने का विशेष कारण है। संभवतः आपको पता चला होगा कि मैं अपना केंद्र चित्रकूट धाम में बनाए हुए हूं। मेरा अधिकांश समय अब चित्रकूट में ही व्यतीत होता है। चित्रकूट प्रभु राम का वनवासकालीन एक स्थान रहा है। फलस्वरूप चित्रकूट प्रभु राम भक्तों का बहुत लोकप्रिय तीर्थ-स्थान बना है। यहां प्रति अमावस्या के दिन डेढ़-दो लाख यात्री मां मंदाकिनी के पावन प्रवाह में स्नान करने तथा प्रभु राम जिस पहाड़ी पर वास करते थे, उस कामदगिरि की लगभग पांच किलोमीटर की परिक्रमा करने के लिए आते हैं। सोमवती अमावस्या के दिन इन यात्रियों की संख्या 10 लाख के ऊपर पहुंचती है और दीपावली के दिन तो 20-25 लाख महिला-पुरुष एवं बाल-वृद्ध इस तीर्थ-स्थान पर अथाह भक्तिभाव से एकत्रित होते हैं। यह क्रम अखंड रूप से कब से प्रारंभ हुआ, इसका ज्ञान संभवतः इतिहास को भी नहीं है।

चित्रकूट में मंदिरों एवं मठों की कोई कमी नहीं है, किंतु इन लाखों यात्रियों को वर्तमान काल में प्रभु राम के जीवन से क्या प्रेरणा लेकर अपना एवं अपने बच्चों का जीवन ढालना चाहिए, इस दृष्टि से यात्रियों को कोई उपलब्धि नहीं होती। इस कारण दीनदयाल शोध संस्थान को ऐसी प्रेरणा मिली है, जिसमें चि. प्रिय आनंद का सक्रिय सहयोग नितांत आवश्यक है।

कामदगिरि परिक्रमा की दूरी पौने पांच किलोमीटर है। यहां आनेवाला प्रत्येक यात्री यह परिक्रमा अवश्य करता है। चित्रकूट के श्रद्धालु नागरिक तो नित्य-प्रति कामदगिरि की परिक्रमा कर अपने जीवन को सार्थक बनाने की अनुभूति करते हैं।

दीनदयाल शोध संस्थान का विचार है कि इस पौने पांच किलोमीटर के परिक्रमा-पथ पर जगह-जगह प्रभु राम के जीवन के वर्तमान काल के लिए प्रेरणादायी प्रसंगों की मूर्तियों के रूप में प्रस्थापित किया जाए। ये प्रसंग कम-से-कम 51 होंगे। हरेक प्रसंग में केवल एक ही मूर्ति नहीं रहेगी अपितु उस प्रसंग में संबंधित मूर्तियां रहेंगी। यह बहुत बड़ा काम है। इस काम का अन्य किसी को सुअवसर देने के स्थान पर चि. प्रिय आनंद के द्वारा ही यह काम करवाया जाए। यह मेरा मत है।

यह काम दो प्रकार से संभव हो सकता है। प्रथम प्रकार—*प्रिय आनंद यहां आकर प्रथमतः प्लॉस्टर ऑफ पेरिस में मॉडल्स तैयार करें अर्थात् उसके लिए प्रथमतः मिट्टी में ही मूर्तियां

6 *कामदगिरि परिक्रमा स्थल पर प्रभु राम के जीवन संबंधी झांकियों के निर्माण की चर्चा। रायगढ़ के मूर्तिकार श्री राजाभाऊ देवधर जी को पत्र।*

बनानी होंगी, जिनका आकार छोटा होगा। जिसमें आवश्यक परिवर्तन की गुंजाइश रहेगी और सब दृष्टियों से जो प्रसंग उपयुक्त सिद्ध होगा, उसे मानव आकार में उन मूर्तियों को तैयार किया जाएगा तथा ये मूर्तियां तीनों मौसम को आसानी से सह सकें, ऐसे माध्यम में तैयार की जाएंगी, जिसका एक नमूना हम लोगों ने यहां तैयार कर खुले में लगाया है। उसे खुले में ही रखा है। 15 माह से ऊपर का समय बीत गया है किंतु मूर्ति जैसी थी वैसी ही बनी हुई है।

प्रिय आनंद गणेशोत्सव के दो-ढाई माह पूर्व से ही गणपति की मूर्तियां बनाने में व्यस्त रहता है, उसमें यदि साल में नौ महीने के लिए यहां आकर यह काम करना स्वीकार किया तो उसे हम मासिक पारिश्रमिक दे सकते हैं। दूसरा प्रकार—प्रिय आनंद इन प्रसंगों के मॉडल्स पुणे में रहकर ही बनाए और उन्हें हम यहां लेकर अंतिम रूप प्रदान करें, किंतु यह दूसरा प्रकार हमें कम व्यावहारिक लगता है। प्रत्येक मॉडल का अंतिम रूप तैयार करने में मुझे कई बार पुणे आना पड़ेगा, जो मेरे लिए संभव नहीं है, उसमें समय भी बहुत लगेगा। अतः मैंने जिस प्रथम प्रकार का उल्लेख किया है, वह ही अधिक व्यावहारिक अनुभव होता है।

7

05 नवंबर, 1997

आदरणीय श्री बाबाजी,

ईश्वर कृपा से आपकी भाषा, भाव एवं प्रतिभा का त्रिवेणी संगम प्रतिपादित विषय को सहज में ही हृदयंगम बनाता है। आपको प्राप्त यह वरदान भारत का भविष्य उज्ज्वल बनाने की क्षमता रखता है।

भारत की जीवन-परंपरा विश्व में अद्वितीय है। उसकी सनातनत्व की विशेषता मानवमात्र के अस्तित्व का आधार है। रामकथा उसका अखंड प्रेरणास्रोत है। विभिन्न कालखंडों में तत्कालीन प्रतिभा-संपन्न रामभक्तों ने आवश्यकता के अनुसार रामकथा का प्रतिपादन कर अपने समाज का सनातनत्व कायम रखा है। फलस्वरूप वर्तमानकालीन उपभोगवाद के नग्न तांडव के बावजूद रामकथा का आकर्षण घटा नहीं है। रामकथा के प्रवचनकार आज भी लोकप्रियता एवं प्रतिष्ठा के शिखर पर पहुंच पाते हैं, किंतु जनजीवन में रामजीवन की शुचिता तथा कर्तृव्यतत्परता प्रतिबिंबित नहीं होती। यही अत्यधिक चिंता का विषय है।

स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद भी प्रभुराम की भूमि में सर्वसाधारण युवक-युवतियों का जीवन स्वावलंबन से वंचित है। पारिवारिक जीवन-यापन के लिए भी वे शासन पर अपना बोझ डालते हैं। ऐसी अवस्था में भारत के भविष्य का क्या होगा?

श्री राम शेवालकर रचित सचित्र रामकथा (रामदर्शन) इस युग की आवश्यकता पूर्ति कर

7 *रामकथा की महिमा पर विहंगम दृष्टि। बाबाजी शेवालकर रामदर्शन प्रकल्प के मार्गदर्शक एवं प्रवचनकार थे।*

सकती है यह मेरी धारणा है। वही प्रचलित वक्तृत्व के गतिमान प्रवाह को कर्तृत्व की दिशा में मोड़ सकती है। आधार बाल्मीकि रामायण ही रहेगा, किंतु राम जीवन की घटनाओं का प्रतिपादन नई पीढ़ी में वर्तमानकालीन एवं भविष्यकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति का सामर्थ्य संचारित करेगा।

सामूहिक चिंतन के समय हम लोगों ने अनुभव किया था कि वनवासकाल में अर्थात् रावण के साथ हुए युद्ध के पूर्व राम, सीता एवं लक्ष्मण ने वनवासी महिला-पुरुषों का मार्गदर्शन किया था। परिणामस्वरूप प्रचंड लोकशक्ति खड़ी हुई थी। युद्ध के लिए आवश्यक शास्त्रस्त्रों का निर्माण करवाया था। युद्धकाल में जीवनावश्यक सामग्री का अथाह भंडार संगृहीत करवाया था। अन्यथा कदम-कदम पर हुए संघर्ष में विजय-प्राप्ति संभव नहीं होती। इस सिद्धता की विशेषता को अंगीकार कर नई पीढ़ी बिना सत्ता के सहारे स्वावलंबन की प्रेरणा प्राप्त करें, यह आवश्यक है। इन घटनाओं का चित्रों, रिलीफों अथवा डायग्राम के माध्यम से परिणामजनक प्रस्तुतीकरण करना कठिन है। अतः यह प्रेरणास्प्रद कार्य प्रिय अरुण द्वारा निर्मित वीडियो के माध्यम से ही करने का विचार हुआ था। उन दृश्यों का उल्लेख प्रस्तुत आलेख में दिखाई नहीं देता।

इंद्र की विषयवासना तृप्ति के लिए अहिल्या की अनुकूलता दर्शाना आवश्यक नहीं दिखता। रामदर्शन संपूर्ण रामायण का प्रस्तुतीकरण नहीं है। अतः यह दृश्य टाला जा सका तो अधिक अच्छा होगा।

अनुकरणीय सहायक के रूप में राम का चरित्र-दर्शन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उसके लिए गर्भवती सीता को वनांचल में छोड़ते समय लक्ष्मण और सीता का संवाद बहुत प्रभावी बना है। उसके पूर्व राम-लक्ष्मण का संवाद जोड़ना उपयोगी होगा। सीता को वनवास में छोड़ने का दायित्व निभाने के लिए लक्ष्मण को समझाते हुए राजा राम ने कहा, ''लक्ष्मण, सीता के चरित्र पर मुझे तनिक भी संदेह नहीं है। वह पावित्र्य की प्रतिमा है। मेरे लिए वह प्राणसमान प्रिय है, किंतु लक्ष्मण, अब मैं केवल राम नहीं हूं—राजा राम हूं। राजा के लिए प्रजा प्राण से भी अधिक प्यारी होती है। अतः प्राण के मोह में प्रजा के प्रति कर्तव्य की अवहेलना करना उचित नहीं है।

सीता भी सामान्य स्त्री नहीं है। वह केवल मेरी पत्नी ही नहीं अपितु राजा राम की रानी है। रानी के नाते उसका भी प्रजा के प्रति कर्तव्य है। प्रजा के जीवन में नैतिकता बनाए रखना राज परिवार का आद्य कर्तव्य है। अन्यथा शासन सुशासन का रूप ग्रहण न कर सकेगा, अतः प्रजा की रानी का जीवन सुखभोग के लिए नहीं हुआ करता। वह अपने ऐश्वर्य या अधिकार का दिखावा करने के लिए भी नहीं होता। कर्तव्य-कठोरता राजा-रानी के जीवन का अभिन्न अंग हुआ करता है। वही शासकों का धर्म होता है।'' यह भाव वर्तमान एवं भविष्यकालीन शासकों के लिए मार्गदर्शक बन सकता है, अतः इस संवाद को जोड़ना उपयोगी होगा, ऐसा लगता है।

रावण-वध के बाद सीता को स्वीकारने के पूर्व उनकी अग्नि-परीक्षा जनमानस में सीता की पवित्रता प्रस्थापित करने के लिए पर्याप्त है। राम की राजसभा में लव-कुश के रामायण गान के बाद सीता की फिर से परीक्षा का दृश्य आवश्यक दिखाई नहीं देता। उससे वर्तमान एवं भविष्य

की पीढ़ियों के लिए अनुकरणीय प्रेरणा प्राप्त होने की संभावना भी नहीं है।

रामराज्य के वर्णन का उल्लेख तुलसी रामायण में भी आया है। उसका उपयोग करने से बाल्मीकी रामायण के आधार में बाधा नहीं आती। उससे राज्य का दायित्व अधिक उभरकर आ सकता है। उसकी वर्तमान या भविष्यकालीन शासकों के लिए आवश्यक प्रेरणा प्राप्त हो सकती है।

रामराज्य की निम्न विशेषताएं उजागर की जा सकेंगी तो रामदर्शन संसार के शासकों के लिए अधिक मार्गदर्शक हो सकेगा—

- जनजीवन में नैतिकता एवं प्रामाणिकता संवर्धन की रामकालीन शैक्षणिक व्यवस्था।
- सामाजिक जीवन में परस्परपूरकता की वृत्ति को प्रोत्साहन।
- प्रशासकों के अर्थात् नौकरशाही के जीवन में समाजसेवा की भावना को प्राधान्य।
- गुप्तचर विभाग की निपुणता।
- न्यायदान में निष्पक्षता तथा अविलंबता।

उपर्युक्त कुछ बातों का उल्लेख किया है। वस्तुतः रामदर्शन द्वारा दो बातें प्रमुख रूप से वर्तमान वातावरण में प्रभावी और प्रेरणादायी बनानी हैं—

- ■ स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद राष्ट्रजीवन का अर्थात् सामाजिक जीवन का सर्वांगीण विकास केवल सत्ता के माध्यम से संभव नहीं है। स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिए जिस प्रकार समाज की नई पीढ़ी के अधिकांश सदस्य किसी-न-किसी रूप में प्रयत्नशील रहे हैं, उसी प्रकार स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद विशेषतः हजार वर्ष गुलामी में बिताए हुए नव स्वतंत्र देश के प्रत्येक नागरिक को विशेषतः युवक-युवतियों को राष्ट्र नवनिर्माण में स्वप्रेरणा से सक्रिय योगदान करना चाहिए। यह प्रेरणा स्वतंत्र भारत के नागरिकों में जगाने का काम रामदर्शन करें, यह अपेक्षित है।
- ■ स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद देश के शासन का दायित्व देश के कर्णधारों के कंधों पर आया है, अतः शासकों को शासक के नाते किस प्रकार अपना शासन धर्म निभाना चाहिए, इसकी प्रेरणा भी रामदर्शन के द्वारा लोगों को मिले।

उपर्युक्त दो प्रेरणाओं के रूप में रामजीवन की घटनाएं हमें प्रस्तुत करनी हैं। संपूर्ण रामकथा प्रस्तुत करना रामदर्शन का गंतव्य नहीं है, अतः चित्रों, रिलीफ दृश्यों तथा डायग्राम एवं वीडियो द्वारा उपर्युक्त दो प्रेरणाएं परिणामजनक बनें, यही राम शेवालकर रचित सचित्र रामकथा की (रामदर्शन की) विशेषता अपेक्षित है।

□□□